# प्रकाशकका वक्तव्य।

बन्धुओं! बडे हर्षका विषय है कि आज स्वर्गीय काकाजी शेठ चन्दनमलजी मुथाकी सदिच्छासे आगम-प्रकाशन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य करनेका मुझे सुअवसर मिला। गतवर्ष दशवैकालिक सूत्रका हिन्दी व मराठी भाषान्तर टीकाके साथ प्रकाशित किया, उसके बाद द्वितीय वर्षमें नन्दीसूत्रका प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, इसका संशोधन आदि कार्य पूज्यश्रीने सातारामेंही प्रारम्भ कर दिया था जो इस तीसरे वर्षमें अहमदनगर चातुर्मासके समय सामग्री संकलनसे पूर्ण हुआ, यद्यपि पूज्यश्रीका विचार इस समय लिखवाकर रखनेका था, तो भी हमारी विशेष प्रार्थनासे यह संशोधित पुस्तक हमको मिली और हमने कई प्रेसोंमें पूछताछ करनेके बाद पूनाके आर्यभूषण प्रेसमें छपवानेका प्रबन्ध किया।

मुद्रणकार्य कार्तिक पूर्णिमासीतक पूर्ण होसके इस विचारसे आश्विन विजयादशमीमें नन्दीसूत्रकी हस्तलिखित प्रति प्रेस मैनेजरको देदी गई, किन्तु पसन्दयोग्य कागज मिल नहीं सका, कागजके तलासमें विलम्ब होनेसे कार्तिक शु० ५ से मुद्रण कार्यका आरम्भ हुआ, प्रूफके आने जानेमें विशेष विलम्ब देखकर प्रेस मैनेजरने कहा कि इसतरह यह मुद्रणकार्य १ मासमें पूर्ण होना अशक्य है, एक संशोधक पूनामें रखिए, तदनुसार मार्गशीर्ष वद पञ्चमीसे प्रूफ संशोधनके लिये व्यवस्था पूनामें की गई, फिरभी पूज्यश्रीकी दृष्टिमें प्रूफ एकवार आना अनिवार्य होनेसे १ मासके स्थानमें १ माससे अधिक समय लगा।

प्रस्तुत संस्करण अनेक संस्करणोंके निरीक्षण करके तथा अनेक विद्वान मुनिओंसे शङ्का समाधान करके परिश्रमके साथ सम्पन्न किया गया है, तथापि इसकी उपयोगिता व श्रमोंकी सफलता तो पाठकोंके सन्तोषसेही समझी जायगी।

प्रार्थी—

नम्र—मोतीलाल मुथा.

सातारा सिटी.

# नन्दीसूत्रके सम्पादन आदि कार्यमें संगृहीत ग्रन्थ.



| ग्रन्थनाम | प्रकाशक या प्राप्तिस्थान. |
| --- | --- |
| १ श्री नन्दीजी सूत्र. मलयगिरि वृत्ति व बालावबोध | श्रीराय धनपतिसिंह बहादुरका आगमसंग्रह-अजीम गंज ( भा. ४५ ) |
| २ श्रीमन्नन्दिसूत्रम् चूर्णि. हारि. वृत्ति | विजयदानसूरिसंशोधित, इन्दौरसे मुद्रित |
| ३ नन्दीसूत्र मूलपाठ | छोटेलाल यति, जीवनकार्यालय अजमेर |
| ४ नन्दीसूत्र पू. अमोलकऋषिजीकृत हिन्दीभाषानुवादसहित | लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी जव्हेरी, दक्षिण हैदाबाद |
| ५ नन्दीसूत्रम्-मलयगिरिकृत टीका | आगमोदय-समिति, सूरत |
| ६ नन्दीसूत्रवृत्ति मूलसहित वृत्तिकार मलयगिरि सं. १४७४ | भाण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मंदिर पूना. |
| ७ बृहत्कल्पसूत्रम् सभाष्य (प्र. विभाग) | जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर |
| ८ भगवती सूत्र तृ. भा. | पण्डित भगवानदास सम्पादित गुजरात विद्यापीठ, अमदाबाद |
| ९ अर्धमागधी कोष | शतावधानी मुनिश्री रत्नचंद्रजी महाराज सम्पादक-बम्बई स्था. कॉन्फरन्स |
| १० अभिधानराजेंद्र | रतलाम |
| ११ श्रीमदावश्यकनिर्युक्ति-दीपिका प्र. विभाग | गुलाबचंद लल्लुभाई, भावनगर |
| १२ आवश्यक-सूत्रम् मलयगिरिवृत्ति तृतीय भाग | देवचंद लालभाई, मुंबई |
| १३ पाइअसद्दमहण्णवो | पण्डित हरगोविंददास टी. सेठ, न्याय-व्याकरणतीर्थ, कलकत्ता |
| १४ रायपसेणइय-सुत्त टीका टिप्पणिसमेत | गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अमदाबाद |
| १५ समवायांग अभयदेवसूरिकृत टीका | आगमोदय समिति, सूरत |
| १६ गोम्मटसार जीवकाण्ड | परमश्रुत प्रभावक मण्डल जव्हेरी बजार मुंबई |
| १७ स्थानांग | आगमोदय समिति, सूरत |
| १८ अणुयोगद्वार | " " " |

| | |
|---|---|
| ११ वीरनिर्वाण संवत और जैन कालगणना | कल्याणविजय शास्त्रसमिति जालोर (मारवाड) |
| १० आर्हत आगमोनुं अवलोकन याने जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास | हीरालाल रसिकदास कापडिया, सूरत |
| ११ चतुर्थ कर्मग्रन्थ | पं. सुखलालजी सम्पादित, रोसन मुहल्ला, आगरा, प्राप्तिस्थान-शेठ हिरालालजी कापडिया, बम्बई. |



## नन्दीसूत्रके प्रकाशित संस्करण.

| | |
|---|---|
| १ रायधनपतिसिंह बहादूरकी ओरसे- | मलयगिरि वृत्ति व बालावबोधसहित मलयगिरिकृत टीका- |
| २ आगमोदय समिति सूरत | नन्दीसूत्र सटीक |
| ३ रतलाम-श्वेताम्बरसंस्था | श्रीनन्दीसूत्रस्य चूर्णि हारिभद्रीया वृत्तिश्च |
| ४ लाला सुखदेवसहाय ज्वाला-प्रसाद दक्षिण हैद्राबाद | नन्दीसूत्र हिन्दीभाषा टीकासहित पूज्यश्री अमोलकऋषिजी कृत |
| ५ इन्दोरसे मुद्रित | श्रीमन्नन्दीसूत्रम्, चूर्णि हारिभद्रीय वृत्तिसहितम् |
| ६ शेठीया ग्रन्थमाला, विकानेर | मूलपत्राकार |
| ७ जैन पुस्तकप्रकाशक समिति, रतलाम | „ पुस्तकाकार |
| ८ फलोदी— | „ „ |
| ९ जीवन कार्यालय, अजमेर | „ „ |
| १० जैनसिद्धान्त स्वाध्यायमाला जामनगर | „ „ |
| ११ जीवन श्रेयस्कर पाठमाला, विकानेर | „ „ |
| १२ श्रीमहावीर जैन भाण्डार, दिल्ली | „ „ |

# प्रबन्धकके दो शब्द।



करीब १८ वर्षसे मुझे जैन मुनिओंकी सेवा करनेका अवसर मिलरहा है, यह स्व० शेठ चन्दनमलजी व रा. ब. मोतीलालजी साहबकी उदारताकाही परिणाम है। सौभाग्यवश आगमसेवाके कार्यमें भी उनकी सदिच्छासे मैं नियुक्त किया गया। पूज्यश्रीजीके साथ पुस्तकान्तरसे पाठ मिलाना, छाया व अनुवादकी प्रेस-कॉपी करना, और पूज्यश्रीजीको दिखाकर प्रेसमें देना यह मेरा कार्य है, अतः प्रस्तुत नन्दीसूत्रके सम्पादन, प्रकाशन आदि कार्यका परिचय देना मेरा कर्त्तव्य है।

## नन्दीसूत्रकी आवश्यकता एवं कार्य-परिचय।

आज मुद्रण-सामग्रीकी सुलभता है। इस युगमें जो थोडा भी शिक्षित हुआ चटसे दो चार पुस्तकोंका संग्रह कर उनमें कुछ घटा बढाके लेखक या संशोधक बन जाता है। किन्तु संशोधनके लिये पर्याप्त साधन व शक्ति नहीं मिलानेके कारणही उनसे अभ्यासिओंकी आवश्यकता पूर्ण नहीं होती। प्रस्तुत सूत्रके भी मूल, टीका, चूर्णि और अनुवादके मिलकर सब १२ प्रकाशन हो चुके है, परन्तु उनमें मूल संशोधनका पर्याप्त प्रयत्न दृष्टिगोचर नहीं होता। वैसाही स्थविरावलीक विषयमें भी बहुतसी पुस्तकोंमें ५० गाथाएँ और कईमें ४३ गाथाएँ प्रकाशित हुई हैं, किन्तु इसपर किसीने विशेष ऊहापोह नहीं किया। ऐसेही दृष्टिवादके वर्णनमे भी बहुतसा पाठभेद मिलता है। इन सबपर पर्यालोचन करते हुए नन्दीसूत्रका कोई संस्करण आजतक नहीं निकला, अतः ऐसा कोई संस्करण निकले यह चिरकालसे मेरी इच्छा थी। इधर बम्बई प्रेसिडेन्सीमें अर्धमागधी शिक्षणके कोर्समें नन्दीसूत्रको भी रक्खा है। विद्यार्थी समितिसे प्रकाशित टीकावाले नन्दीसूत्रकी पुस्तकसे प्रायः अपना काम चलाते थे किन्तु अभी वह भी अप्राप्यसी हो गई, इससे विशेषतया विद्यार्थिवर्गकी ओरसे यह मांग होने लगी कि नन्दीसूत्रके अनुवादका एक शुद्ध संस्करण निकाला जाय। उपरोक्त आवश्यकतासे हमने पूज्यश्रीजीसे प्रार्थना की, जिसके फलस्वरूप साताराके चातुर्मासमेंही पूज्यश्रीने नन्दीसूत्रका कार्य प्रारम्भ करदिया और भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिरकी हस्तलिखित प्रतिसे तथा आगमोदय समितिमुद्रित पुस्तकसे संशोधन व छायानुवाद सम्पन्न किया। चातुर्मासके बाद ८ मासतक यह कार्य बिल्कुल बंद रहा। गुलेदगुड्ड चातुर्मासमें रा. सा. लालचन्दजी मुथाके सहयोगसे फिर इस कार्यको प्रारम्भ किया और मूल व छायाकी कापी तय्यारकर हिन्दी अनुवाद शुरू किया। पं० शशिकान्तजीने तीनोंको फिर लिपिबद्ध किये और दिपावलीतक यह लेखनकार्य पूर्ण

किया। स्थविरावलीकी सात गाथाओंके बाबत उपाध्याय श्री आत्मारामजी, युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी, शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी और पंजाब केसरी पू० काशीरामजी महराजसे पूछा गया है कि टीकाओंमे इनकी व्याख्या नहीं की है, समितिकी पुस्तकमे भी ये नहीं हैं अत आपका इस विषयमें क्या मत है?

सभीकी ओरसे एकही उत्तर मिला कि ये परम्परासे. मान्य हैं, रखनी चाहिये। इसकी अन्वेषणामे भी खासा प्रयत्न किया गया, किन्तु चातुर्मासकी समाप्तिपर्यन्त कोई योग्य प्रमाण नहीं मिला। चातुमार्सके बाद साधनोंके विघटन होने और पू के विहारसे फिर यह कार्य रुका रहा। नगरके चातुर्मासमें पुन टिप्पण, परिशिष्टके अलावा उस लिपिबद्धका संशोधन किया। उस समय स्थविरावलीकी गाथाओंके बाबत भी समाधानजनक प्रमाण मिले, उसपरसे इनको मूल क्रमसेही रखनेका निश्चय किया और साथ यह टिप्पण भी लगादिया कि अमुक २ पुस्तकमें ये गाथाएँ नहीं हैं।

इसप्रकार नन्दीसूत्रको पूर्ण अन्वेषणके साथ तय्यार करना और परिशिष्ट आदिसे भी सुसज्जित कर रखना, जो समयपर प्रकाशमे लाया जा सके इसतरह पू का विचार इस समय केवल नन्दीसूत्रको साङ्गोपाङ्ग लिख रखवानेकाही था किन्तु रा व साहबकी सम्मति यह हुई कि पूज्यश्री मारवाड पधार जाँयगे तब फिर अधिक विलम्ब होगा, अत इसको तो इस वर्ष प्रकाशित करवालेना चाहिये।

शेठजीकी इस विनतिपर पूज्यश्रीने भी यह संशोधित पुस्तक हमारे स्वाधीन की।

## कार्यमें बाधा।

इसी बीचमें महायुद्धका बोझ विशेषतया आनेसे कागजकी कीमतमें महर्घता आगई, इतनाही नहीं बल्कि कागज मिलनाही दुस्साध्य होगया। बहुत कुछ खोजनेपर जो भी सन्तोषजनक नहीं तो भी साधारणतया उपयोगी कागज लिया गया। अनेकविध बाधाओंको पार करके आज इस कार्यको पूर्ण कर रहा हूँ यह प्रेसके कार्यकर्ताओंके सौहार्द और सहायकोंके योग्य सहायकाही परिणाम है।

---

१ आवश्यक सूत्रकी दीपिकाके प्रारम्भमें ५० गाथाकी व्याख्या की है। जैन कालगणनामें मुनिश्री कल्याणविजयजीने लिखा है कि—'जिसप्रकार वल्लभी वाचनाके अनुयायिओंने युगप्रधान गण्डिकाप्रभृति प्रकीर्णक ग्रन्थोंमें अपनी परम्परागत युगप्रधानावलीका क्रम दिया है, इसी प्रकार देवर्द्धिजीने भी इस थेरावलीमें माथुरी वाचनानुयायी युगप्रधान थेरावलीका वर्णन किया है। इसमें कुल ३१ युगप्रधानोंका क्रम वर्णित है, किन्तु जबसे देवर्द्धिको २७ वां पुरुष माननेकी दन्तकथा प्रचलित हुई तबसे इस थेरावलीमें धर्म, भद्रगुप्त, वज्र, आर्यरक्षित और गोविन्दके वर्णनकी गाथाएँ प्रक्षिप्त समझी जाकर निकाल दी गई। वस्तुत उक्त गाथाएँ नन्दीकीही है' जैन कालगणना–पृ १२५

## धन्यवाद।

प्रस्तुत कार्यमें जिन २ महानुभावोंने लेखन, प्रूफ-संशोधन व पुस्तक प्रदान आदिसे सहाय किया है उनके शुभनाम धन्यवादके साथ नीचे दिये जाते हैं—

इसमें स्वयं पूज्यश्रीका परिश्रम विशाल है. शीघ्रताके चलते जिन अंशोंमें पूज्यश्रीके श्रमोंका उपयोग नहीं किया जासका, उन्हीं अंशोंमें त्रुटियाँ रहीं. यह हमारा स्पष्ट कहना है।

१ अमोलकचन्दजी सुरपुरिया, एम्. ए. एलएल्. बी—अपने वकालत आदि आवश्यक कामोंको एकतरफ रखकर अन्तःकरणसे प्रेमपूर्वक परिश्रम किया है।

२ पूनमचन्दजी मेहेर—आपने पूज्यश्रीजीके लेखकी पक्की कॉपी व प्रूफ-संशोधनमें श्रम किया है।

३ आत्मानन्द जैन लायब्ररी, पूना—यहांसे नन्दीसूत्र टीकाकी पुस्तकें मिली हैं।

४ भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना-यहांसे नन्दीसूत्रकी अतिप्राचीन प्रति प्राप्त हुई जिसपर कि प्रस्तुत प्रकाशन आधार रखता है।

जिन २ पुस्तकोंसे सहाय लिया है, उनके लेखकोंका भी हम सादर संस्मरण करते हैं।

## अभ्यर्थना।

इतना परिश्रम उठानेपर भी त्रुटियाँ रहजाना सम्भव है। सुज्ञ पाठक इनके लिये हमें क्षमा प्रदान करें व सुजनतासे इनकी हमें सूचना करें ताकि आगामी संस्करणमें उनका उपयोग किया जाय। सुज्ञेषु किं बहुना-इत्यलम्।

निवेदक—दुःखमोचन झा।

॥ श्रीः ॥

# श्रीनन्दीसूत्रकी भूमिका



" नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स "

लेखक—जैनधर्मदिवाकर पण्डितप्रवर उपाध्याय श्रीआत्मारामजी महाराज

इस अनादि संसारचक्रमें आत्माने अनेकवार जन्म-मरण किए। किन्तु अपने स्वरूपको भूलकर परगुणोंमें रत होनेसे यह जीव दुःखोंका ही अनुभव करता रहा। श्रुत, श्रद्धा और संयमसे पराङ्मुख होकर पुद्गल द्रव्योंको अपनाता हुआ मनुष्य अपने गुणोंको भूलगया। इसीसे अज्ञानवश होकर यह शारीरिक व मानसिक दुःखोंका अनुभव कर रहा है। उन दुःखोंसे छूटनेके लिये सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्रकी आराधनाही एकमात्र उपाय है। गुणमय होनेपर भी ज्ञान द्रव्यको मङ्गलमय बनादेता है। जैसे-पुष्पोंकी प्रतिष्ठा सुगन्धिसे होती है, ठीक इसीप्रकार आत्मद्रव्यकी पूजा प्रतिष्ठा ज्ञानसे होती है।

ज्ञान और नन्दीसूत्र—

" सव्वसुतखंधतादीणं मंगलाधिकारे नंदित्ति वचव्वा–णंदणं णंदी, णंदंति वा णेण त्ति नंदी, नंदी–पमोदो–हरिसो कंदप्पो इत्यर्थः। तस्स य चउव्विहो णिक्खेवो, णयाओ णामट्ठवणाओ, दव्वणंदी–जाणगो अणुवउत्तो,

अहवा–जाणग–भविय–सरीर–वतिरित्तो वारसविह तूरसंघातो इमो—

भंभा, मुकुंद, मद्दल, कडम्ब, झल्लरि, हुडुक कंसाला।
काहल, तिलिसा, वंसो, पणवो, संखो य वारसमो॥

भावणंदी–णंदिसद्दोवउत्तभावो, अहवा–" इमं पंचविहणाणपरूवगं णंदित्ति अज्झयणं "।

यहाँपर श्रीहरिभद्रसूरि भी इसीप्रकार लिखते हैं। अतः नन्दी शब्द आनन्दजनक होनेके कारण ज्ञानका वाचक है, नतु साहित्यम आए हुए नन्दी या नान्दीका। भावनन्दीशब्द पञ्चविध ज्ञानकाही बोधक है, ये पांच ज्ञान क्षयो पशम या क्षायिकभावके कारणसे उत्पन्न होते हैं। जैसे-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान व मन पर्ययज्ञान ये चारों ज्ञान क्षयोपशम भावपर निर्भर हैं, और केवलज्ञान क्षायिक भावसे उत्पन्न होता है। जब ज्ञानावरणीय कर्म दर्शना वरणीय कर्म, मोहनीय कर्म और अन्तराय कर्मोंकी प्रकृतियाँ क्षीण हो जाती हैं तब आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे युक्त अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है। इस नन्दीसूत्रम उन पांच ज्ञानोंका विषय सविस्तर प्रतिपादित किया गया है।

## यह सङ्कलित है या रचित ?

आचार्य श्रीदेववाचक क्षमाश्रमणने आगमग्रन्थोंसे मङ्गलरूप पञ्च ज्ञानोंका प्ररूपक श्रीनन्दीसूत्रका उद्धार किया है, जैसे कि उपाध्याय समयसुन्दरजी लिखते हैं[1]–' एकादशाङ्ग गणधरभाषित हैं। उन अङ्गशास्त्रोंके आधारपर क्षमा श्रमणने उत्कालिक आदि आगमोंका उद्धार किया है। " नन्दीशास्त्र जिन जिन आगमोंसे सङ्कलित है, उनकी चर्चा नीचे की जाती है—नन्दीसूत्रके मूलकी गवेषणा करते हुए प्रथम स्थानाङ्ग सूत्रके द्वितीयस्थान प्रथम उद्देश के ७१ वें सूत्रपर दृष्टि जाती है। वहाँ नन्दीसूत्रके लिये निम्नोक्त आधार मिलता है। देखें वह पाठ—

---

१ देखिए समाचारीशतक दूसरा प्रकाश, आगमस्थापनाधिकार पत्र ७७। विशेष–हमने आगमोदयसमिति प्रकाशित आगमोंकोही प्रमाण माना है, अत पत्रसंख्या उसीमें देखें।

"दुविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा–पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव। पच्चक्खे नाणे दुविहे प० तं०–केवलनाणे चेव १, नोकेवलनाणे चेव २। केवलनाणे दुविहे प० तं०–भवत्थकेवलनाणे चेव, सिद्धकेवलनाणे चेव। भवत्थकेवलनाणे दुविहे प० तं०–सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव। सजोगिभवत्थकेवलनाणे दुविहे प० तं०–पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव। अहवा–चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव। एवं अजोगिभवत्थकेवलनाणे वि। सिद्धकेवलनाणे दुविहे प० तं०–अणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव परंपरसिद्धकेवलनाणे चेव। अणंतरसिद्धकेवलनाणे दुविहे प० तं०–एकाणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव, अणेकाणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव"। (पूर्णपाठ)

इनके व्याख्यास्वरूप सूत्रभी आगममें मिलते है। अनुयोगद्वार सूत्रमें[1] इन्द्रियप्रत्यक्ष नोइन्द्रियप्रत्यक्ष-ये दोनो भेद प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रतिपादित किए गए हैं। अवधिज्ञानके भवप्रत्यय और क्षायोपशमिक ये दोनों भेद एवं इसकी व्याख्या भी विस्तारसे मिलती है। स्थानाङ्ग आदिमे[2] अवधिज्ञानके छ भेद प्रतिपादित किए गए हैं। इन भेदोंके नाम और मध्यगत-अन्तगत आदि विषय प्रज्ञापनासूत्रमें[3] आते हैं। अवधिज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपसे चार भेदोंका सविस्तर वर्णनभी भगवतीसूत्रमें[4] देखा जाता है।

मन पर्ययज्ञानके अधिकारका पाठ नन्दीसूत्र और प्रज्ञापनासूत्रमें[5] समान रूपसे ही आता है। भेद केवल इतनाही है कि यह प्रज्ञापनासूत्रमे आहारक शरीरके प्रसङ्गमें वर्णित है। इस सूत्रमें मन पर्ययज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपसे जो चार भेद प्रदर्शित किए गए हैं, इनका सम्बन्ध भगवतीसूत्रसे[6] मिलता है।

केवलज्ञानका वर्णन जिस रूपसे हम यहाँ पाते हैं, वहभी प्रज्ञापना[7] सूत्रसे उद्धृत किया ज्ञात होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूपसे केवलज्ञानके जो चार भेद प्रतिपादित किए हैं, वेभी भगवतीसूत्रसे[8] सङ्कलित है।

---

१ अनुयोगद्वारसूत्र–जीवगुणप्रत्यक्षाधिकार पत्र २११। २ स्थानाङ्ग स्थान ६, सूत्र ५२६, पत्र ३७०। ३ प्रज्ञापनासूत्र पद ३३ सू० ३१७ पत्र ५३६। ४ भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देश २, सू० ३२३, पत्र ३५६। ५ प्रज्ञापना पद २१, सू० २७३, प ४२३। ६ देखिए चौथी पादटिप्पणी। ७. पद १, सू० ७०८, पत्र १८। ८ देखिए चौथी पादटिप्पणी।

मतिज्ञानके विषयका मूल (बीजरूप) स्थानाङ्गसूत्र स्थान १, उद्देश १, सूत्र ७१ में साधारणरूपसे आचुका है, किन्तु उसके अट्ठाइस भेदोंका वर्णन समवायाङ्गसूत्रमें मिलता है। सम्भव है कि नन्दीसूत्रमें मतिज्ञानका जो सविस्तर वर्णन आया है, वह किसी अन्य (अधुना अप्राप्य) जैन आगमसे सङ्ग्रहीत हुआ हो। मतिज्ञानकेभी चारों (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) भेद भगवतीसूत्रसे उद्धृत किए हुए ज्ञात होते हैं। किन्तु भगवतीसूत्रमें केवल 'पासइ' है और नन्दीमें 'न पासइ' ऐसा पाठ आता है, शेष पाठ समान है।

श्रुतज्ञानका विषयभी यहाँ भगवतीसूत्रसे उद्धृत किया गया है—

"कइविहे णं भंते! गणिपिडए प०? गोयमा! दुवालसंगे गणिपिडए प० तं०—आयारो जाव दिट्ठिवाओ। से किं तं आयारो? आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयारगोय० एवं अंगपरूवणा भणियव्वा, जहा नंदीए जाव—

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे॥१॥"

इन सबोंके अतिरिक्त नन्दीसूत्रके कितनेही स्थल स्थानाङ्गसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र, दशाश्रुतस्कन्धसूत्र आदि अनेकों आगमग्रन्थोंके कितनेही स्थानोंसे मिलते हैं। इसप्रकारकी समानतासे यह बात भली भाँति प्रमाणित हो जाती है कि देववाचक क्षमाश्रमणका यह ग्रन्थ विविध आगमोंसे सङ्कलित है, निर्मित नहीं है।

नन्दीसूत्रकी प्रामाणिकता—

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमणने भगवान् महावीर स्वामीके ९८० वर्ष पश्चात् अर्थात् ४५४ ई० (५११ वि०) में वल्लभी नगरीमें साधुसङ्घको एकत्र किया। तबतक सारा आगम कण्ठस्थही रक्खा जाता था। देववाचक क्षमाश्रमणके प्रधानत्वमें साधुसङ्घके उस महान् अधिवेशनमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि तबतक कण्ठस्थ चले आये आगमोंको साधुओंने लिपिबद्ध करलिया। एक स्थानमें बैठकर एकही समयमें साधुओंद्वारा लिखे होनेके कारण हम आजभी इन विभिन्न अङ्गोंमें सामञ्जस्य पाते हैं और इसीलिये एक ग्रन्थका प्रामाण्य अथवा निर्देश दूसरे ग्रन्थमें पाते हैं। समवायाङ्गसूत्रमें इस विषयको जिस प्रकारसे स्पष्ट किया है—

"साम्प्रतं वर्तमानाः पञ्चचत्वारिंशदप्यागमाः श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणैः श्रीवीरादशीत्यधिकनवशतवर्षे ९८० जातेन द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षवशात् ? ( जातया द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षतया ) बहुतरसाधुव्यापत्तौ बहुश्रुतविच्छित्तौ च जातायाम्, यदाहुः—"भसद्य श्रीजिनशासनं रक्षणीयम्, तद्रक्षणञ्च सिद्धान्ताधीनम्" इति भविष्यद्भव्यलोकोपकाराय श्रुतभक्तये च श्रीसङ्घाऽऽग्रहान्मृताऽवशिष्ट तत्कालीन ? ( लिक ) सर्वसाधून् वलभ्यामाकार्य तन्मुखाद् विच्छिन्नाऽवशिष्टान् न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽत्रुटितान् आगमाऽऽलापकान् अनुक्रमेण स्वमत्या सङ्कलय्य (ते) पुस्तकाऽऽरूढाः कृताः। ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्सङ्कलनाऽनन्तरं सर्वेषां पञ्चचत्वारिंशन्मितानामप्यागमानां कर्ता श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण एव जातः। तज्ज्ञापकमपीदम्—' यथा श्रीभगवतीसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिकृतम्। प्रज्ञापनासूत्रं च वीरात् पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशतमिते वर्षे जातं श्रीश्यामाचार्यकृतम्। श्रीभगवत्यां च बहुषु स्थानेषु साक्षिः ? लिखितास्ति—' जहा पन्नवणाए' एवमन्येष्वप्यङ्गेषु—उपाङ्गसाक्षिः ? लिखिता, (साक्ष्यं लिखितम्) तद्वचने त्वया उपयोगो देयः"।

इस कथनसे यह भलीभांति सिद्ध हो गया कि देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण सङ्कलयिता थे। एक आगममें दूसरे आगमके निर्देशका कारणभी इसीसे समझमें आजाता है। नन्दीसूत्रका निर्देश अन्य आगमोंमे मिलता है—

जहा नंदीए । जहा नंदीए । जहा नंदीए । जहा नंदीए ।

इस प्रकार अन्यान्य आगमोंमें भी नन्दीसूत्रका उल्लेख पाया जाता है। इससे नन्दीसूत्रकी पूर्ण प्रामाणिकता व प्राचीनता सिद्ध होती है।

**नन्दीसूत्रमें अवतरणनिर्देशकी शैली—**

आगमोंकी प्राचीनशैलीसे पता चलता है कि प्रस्तुत आगमका प्रस्तुत आगममें भी निर्देश किया जाता था, जैसे कि-समवायाङ्गसूत्रमें द्वादशाङ्गके वर्णनप्रसङ्गमें खुद समवायाङ्गका भी नाम आया है। ऐसे व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रमें द्वादशाङ्गका उल्लेख करते समय खुद व्याख्याप्रज्ञप्तिका भी नाम आया है। यही कम अन्य आगमोंमें भी मिलता है। यह प्राचीन परम्परा वेदोंमें भी पाई जाती है, जैसे कि—

१।२ भग. सू. शतक ८ उद्देश २ सू॰ ३२२ पत्र ३५६ पंक्ति ६ और ८।
३. समवायाङ्ग समवाय ८८ सू. ८८ पत्र ८८। ४. रायपसेणियसूत्र पत्र ३००।
५. यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ४।

" सुपर्णोऽसि गरुत्माँ स्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दा॰ृ स्यङ्गानि यजू॰ृषि नाम । "

इसी प्राचीन शैलीको नन्दीसूत्रमें भी स्वीकार किया है। अतएव उत्का लिकसूत्रकी गणनामें नन्दीसूत्रका नाम मिलता है।

अश्रुतनिश्रितज्ञानकी विशेषता—

मतिज्ञानके श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित ये दो भेद प्रतिपादित किये गए हैं। श्रुतनिश्रितका जो विषय नन्दीसूत्रमें प्रतिपादित किया गया है। वह अन्य आगमोंमें विद्यमान है। किन्तु अश्रुतनिश्रितके विषयमें जो गाथायें यहाँ दी गई हैं, वे अन्यत्र नहीं मिलती। सम्भव है देववाचक क्षमाश्रमणने उदाहरणके रूपमें इन गाथाओंका निर्माण स्वयं किया हो।

नन्दीको सूत्र कहना या सूची ?

स्थानाङ्ग सूत्रके द्वितीयस्थान प्रथम उद्देशमें श्रुतज्ञानके दो भेद किये गए हैं जैसे कि–अङ्गप्रविष्टश्रुत और अङ्गबाह्यश्रुत। अङ्गबाह्यके भी आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त ऐसे दो भेद किये गए हैं। आवश्यकव्यतिरिक्तके भी कालिक तथा उत्कालिक ये दो भेद किये गए हैं।

देववाचक क्षमाश्रमणने स्थानाङ्गसूत्र और व्यवहारसूत्रमें आए हुए आगमोंके नाम तथा उनके अपने समयमें जो आगम विद्यमान थे उनमें जो कालिकश्रुतके अन्तर्गत थे उनका वैसा निर्देश करदिया। और जो उत्कालिक श्रुत थे उन्हें उत्कालिक निर्दिष्ट कर दिये जैसे कि चार मूलसूत्रोंमेंसे उत्तराध्ययनसूत्र कालिक है और दशवैकालिक नन्दी, अनुयोगद्वार ये तीनों सूत्र उत्कालिक हैं। इसीप्रकार उपाङ्ग आदि सूत्रोंके सम्बन्धमें भी समझ लेना चाहिए। नन्दीसूत्रमें अनुक्रमणिका अंश गौण है, सूत्र अंशही प्रधान है, अतः इसका सूत्र नामही सार्थक है।

अक्षर आदि १४ श्रुतका आधार कहाँसे लिया ?—

नन्दीसूत्रमें श्रुतज्ञानके १४ भेद वर्णित हैं, जैसे कि—

" से किं तं सुयनाणपरोक्खं ? सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पन्नत्तं, तंजहा–अक्खरसुयं १ अणक्खरसुयं २ सण्णिसुयं ३ असण्णि-

१ " से किं तं आभिणिबोहियनाणं ? आभिणिबोहियनाणं दुविहं पन्नत्तं तंजहा–सुयनिस्सियं असुयनिस्सियं च। से किं तं असुयनिस्सियं ? असुयनिस्सियं चउव्विहं पन्नत्तं, तंजहा–

उप्पत्तिया वेणइया कम्मया पारिणामिया।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता पचमा नोवलब्भइ ॥ १ ॥
अश्रुतनिश्रित नन्दी।

सुयं ४ सम्मसुयं ५ मिच्छसुयं ६ साइयं ७ अणाइयं ८ सपज्जवसियं ९ अपज्जवसियं १० गमियं ११ अगमियं १२ अंगपविट्ठं १३ अणंग-पविट्ठं[1] १४ "।

यह प्रसङ्ग भगवतीसूत्रसे लिया गया है। वहाँपर नन्दीसूत्रकी अन्तिम *गाथा पर्यन्तका निर्देश है। नन्दीसूत्रकी अन्तिमगाथा ९० वीं गाथा है।* किन्तु श्रुतज्ञानके चतुर्दश भेदोंका जो वर्णन विस्तारपूर्वक पहले आ चुका है, उसका पुनः संक्षेपसे ८९ वीं गाथामें वर्णन किया गया है जैसे कि--

" अक्खर, सन्नी, सम्मं, साइयं, खलु सपज्जवसियं च।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्त वि एए सपडिवक्खा ॥ "

अन्तमें निष्कर्ष यह निकला कि अक्षरश्रुत अनक्षरश्रुत आदि विषय भी आगमबाह्य नहीं हैं।

केतुभूतकी द्विरुक्ति---

तीर्थङ्करोंके अन्तरोंमें अर्थात् एकके बाद दूसरे तीर्थङ्करके बीच समयमें दृष्टिवादका व्यवच्छेद होना लिखा है[2]। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके हजार वर्षके बाद १४ पूर्वोंका व्यवच्छेद हुआ। दृष्टिवादका जो प्रसङ्ग समवायाङ्ग सूत्रके द्वादशाङ्ग वर्णनमें आता है वैसाही प्रसङ्ग हम नन्दीमें पाते हैं। केतुभूतका सम्बन्ध इसी व्यवच्छिन्न (विच्छेद पाये हुए) दृष्टिवादसे है, अतः 'केउभूयं' के दो बार आनेका कारण ज्ञात करना असम्भव है। वृत्तिकार भी इस व्यवच्छिन्न दृष्टिवादकी व्याख्याके सम्बन्धमें लिखते हैं--

" सर्वमिदं प्रायो व्यवच्छिन्नम्, तथाऽपि लेशतो यथागतसम्प्रदायात् किञ्चिद् व्याख्यायते.......... "

और चूर्णिमें भी-" तं च सव्वं समूलुत्तरभेदं सुत्तत्थओ वोच्छिण्णं जहागतसंपदायं वा वच्चं " (पृ० ५५) ऐसाही लिखा है। हरिभद्रसूरि भी इससे सहमत थे। तभी तो उन्होंने अपनी वृत्तिमें पृ १०६ पर चूर्णिका उक्त वाक्य उद्धृत किया है। *" यथाऽऽगत सम्प्रदाय " के अतिरिक्त और क्या आलम्बन था।* इस स्थितिमें 'केउभूयं' की द्विरुक्तिका कारण समझना बड़ा ही कठिन है।

भारत रामायण आदिका उल्लेख---

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके समयमें गणधरोंने सूत्ररूपसे द्वादशाङ्गीकी रचना की। उनके समयमें भारत, रामायण आदि ग्रन्थ विद्यमान थे,

---

१. नन्दीसूत्र, श्रुतज्ञान भेद, सूत्र ३८। २. भगवती सूत्र, पत्र ८६६, सूत्रसंख्या ७३२, ३. भगवती सूत्र, पत्र ७९२ (सू ६७७) ४. भगवती सूत्र, पत्र ७९२ (सू. ६७८)

अतः उनका नाम आना असङ्गत नहीं है। पश्चात् देववाचक क्षमाश्रमणने भारत और रामायणके साथ अन्य शास्त्रोंका भी उल्लेख अपने नन्दीसूत्रमें कर दिया, जैसे कि–कोडिल्ल (कौटिल्य चाणक्य) आदि।[1]

नन्दीसूत्रके अध्ययनकी विशिष्टता—

नन्दीसूत्रमें पांच ज्ञानोंका विस्तृत स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। कारण कि "पढमं नाणं तओ दया" अर्थात् दयाकी अपेक्षा ज्ञानका महत्त्व अधिक है, इसलिए नन्दीसूत्रका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अङ्गसूत्रोंसे प्रायः उद्धृतकर सङ्कलयिता श्रीदेववाचक क्षमाश्रमणने इसको उत्कालिक सूत्रोंके अन्तर्भूत कर दिया, जिससे केवल अनध्यायको छोड़कर सदैव इसका स्वाध्याय किया जा सकता है। ज्ञानका प्रतिपादक होनेसे इसका माङ्गलिक होना भी स्वतः सिद्ध है। ज्ञानकी आराधनासे जब निर्वाणपदकी भी प्राप्ति हो सकती है तो फिर और वस्तुओंका तो कहनाही क्या! इस बातका साक्ष्य भगवतीसूत्रमें है—

"उक्कोसियं णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति। अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति, अत्थेगइए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जंति।

मज्झिमियं णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति, तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ।

जहन्नियण्णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव अंतं करेइ, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ"।[2]

अर्थात् जघन्य सम्यग्ज्ञानकी आराधनासे भी जीव अधिकसे अधिक ७-८ भव करके सिद्ध हो जाता है। इससे ज्ञानमय नन्दीसूत्रकी विशिष्टता सहज मालूम हो सकती है।

इत्यलं विद्वत्सु।

दीपावली १९९८ }

जैनमुनि आत्माराम,
लुधियाना (पंजाब)

---

१. नन्दीसूत्र मिथ्याश्रुताधिकार। २. भग. श. ८ उ. १० [ ] ३५५।

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

# प्रस्तावना



प्रस्तुत शास्त्रका नाम नन्दीसूत्र है। निर्युक्तिकारने नन्दी शब्दके निक्षेप करते हुए कहा है कि 'भावंमि नाणपणगं' अर्थात् भावनिक्षेपमें पांच ज्ञानको नन्दी कहते हैं। नाट्यशास्त्रमें और १२ प्रकारके वाद्य-अर्थमें भी नन्दी शब्दका प्रयोग आता है। किन्तु यहां पांच ज्ञानरूप भावनन्दीका वर्णन करने एवं भव्य जनोंके प्रमोदका कारण होनेसे यह शास्त्र नन्दी कहाता है। पांच ज्ञानकी सूचना करनेसे यह सूत्र है, विशेष जाननेके लिये इसी सूत्रकी भूमिका देखें।

**अङ्गादि आगमोंमें नन्दीका स्थान**

अङ्ग, उपाङ्ग, मूल व छेद इस प्रकार जैनागमोंके प्रसिद्ध जो चार विभाग हैं उनमें प्रस्तुत नन्दीसूत्रका मूल आगममें स्थान पाता है, क्योंकि इसमें आत्माके मूल गुण ज्ञानका वर्णन किया गया है। [अङ्ग, उपाङ्ग, मूल व छेदकी विशेष जानकारीके लिए सातारासे प्रकाशित दशवैकालिक सूत्रकी भूमिका देखें ]

**विषय**

नन्दीसूत्रका विषय है आत्माके ज्ञानगुणका वर्णन करना, इसमें ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले संस्थान आदि सब बातोंको नहीं कहके पांचों ज्ञानके मुख्य भेदोंका स्वरूप और उनके जाननेका विषय दिखाया गया है।

**नन्दीसूत्रका विषय परिचय**

नन्दीसूत्रमें आचार्य श्रीदेववाचकने सर्व प्रथम अर्हदादि आवलिकारूपसे ५० गाथाओंमें मङ्गलाचरण किया है। फिर आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, आदि ज्ञानके ५ भेद करके प्रकारान्तरसे प्रत्यक्ष व परोक्ष संज्ञासे ज्ञानके दो प्रकार किये हैं। प्रत्यक्षके इन्द्रियप्रत्यक्ष व नोइन्द्रियप्रत्यक्ष ऐसे दो भेद करके प्रथम ५ प्रकारका इन्द्रियप्रत्यक्ष कहा है। जिसको जैन न्यायशास्त्रकी परिभाषामें सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। तदनन्तर नोइन्द्रियप्रत्यक्षमें अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान व केवलज्ञानका अवान्तर भेदोंके साथ वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रधानत्वकी दृष्टिसे प्रत्यक्षका वर्णन करके फिर परोक्षज्ञानमें आभिनिबोधिक ज्ञानके अश्रुत-निश्रित व श्रुत-निश्रित ऐसे दो भेद किए गए हैं। तथा औत्पत्तिकी आदि ४ बुद्धियोंके उदाहरणपूर्वक वर्णनसे अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान कहा गया है, एवं अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा भेदसे भिन्न श्रुतनिश्रित मतिज्ञानका प्रभेदोंसे वर्णन करके प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्तसे

अवग्रह, ईहा आदिमें परस्पर भेद समझाया गया है। इसके बाद उत्तरार्धमें श्रुतज्ञान परोक्षके १ अक्षर २ अनक्षर ३ संज्ञि ४ असंज्ञि ५ सम्यक् ६ मिथ्या ७ सादि ८ अनादि ९ सावसान १० निरवसान ११ गमिक १२ अगमिक १३ अङ्गप्रविष्ट १४ और अनङ्गप्रविष्ट श्रुत ऐसे १४ भेदोंका उद्देश करके क्रमश उनका स्वरूप बताया गया है। अङ्गबाह्यश्रुतमें आवश्यकके ६ अध्ययन और उत्कालिक व कालिक श्रुतोंकी परिगणना की गई है। बाद अङ्गप्रविष्टमें ११ अङ्गोंका विषय परिचय व श्रुतस्कन्ध, अध्ययन आदिका परिमाण एवं उद्देशन समुद्देशन कालका निर्देश किया गया है। फिर १२ वें अङ्ग दृष्टिवादके परिकर्म १, सूत्र १, पूर्वगत ३ अनुयोग ४, व चूलिका ५, इन पाचों प्रकारोंका अवान्तर भेदोंके साथ वर्णन किया गया है। अन्तमें द्वादशाङ्गीके विराधनाका संसारमें भ्रमणरूप और उसकी आराधनाका संसार तारणरूप फल बताया है। उपसंहारमें पञ्चास्तिकायकी तरह द्वादशाङ्गीकी नित्यता दिखाकर श्रुतज्ञानके भेदोंका दो गाथासे सग्रह किया है। आगे अनुयोग श्रवण एवं अनुयोग दानकी विधि कही गई है। इसप्रकार श्रुतज्ञान परोक्षके साथ नन्दीसूत्रकी समाप्ति होती है।

**रचनाका मूल-आधार**

इसकी रचनाका मूल आधार पाचवाँ ज्ञानप्रवाद पूर्व सम्भव होता है, क्योंकि उसमें ज्ञानसम्बन्धी वर्णन है। वर्तमानके अङ्गोपाङ्ग आदि शास्त्रोंमें भी इसका आधार मिलता है, जिसका उपाध्यायजीने भूमिकामें दिग्दर्शन कराया है। अत विशेष जाननेके लिये भूमिका पढ़ें।

**रचना शैली**

नन्दीसूत्रकी रचना सूत्र और गाथा उभयरूपसे है। इसकी सूत्ररचना प्रश्नोत्तरके रूपमें होनेसे प्राय सुगम है। प्रत्येक प्रश्न वाक्यके अन्तिमपदको उत्तर वाक्यमें भी दुहराया गया है। प्राचीन आगमोंमें बहुधा यह शैली दृष्टिगोचर होती है (देखो भगवतीसूत्र आदि अङ्गशास्त्र) यहा पाठकोंको शङ्का होगी कि शास्त्र तो अल्पाक्षर और बहु अर्थवाले होते हैं। फिर इस सूत्रमें एकही पदकी अनेक बार आवृत्ति क्यों की? क्या इससे पुनरुक्ति दोष नहीं होगा? उत्तरमें पुनरुक्ति सर्वत्र दोषही होता है या कहीं गुण भी? यह समझना चाहिये। आचार्योंने कई प्रसङ्ग ऐसे माने हैं जिनमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता, देखो—

पुनरुक्तिर्न दुष्यते

उपरोक्त श्लोकमें आदरार्थ किये गये पुनरुक्तको भी निर्दोष माना है, इसके सिवाय कहीं २ सुबोधार्थ भी शाब्दिक या आर्थिक पुनरुक्ति की गई है, जैसे—आयविज्जद, पण्ण० आदि, इसके लिये आचार्यने 'शिष्यबुद्धि-वैशद्यार्थम्' ऐसा उत्तर दिया है।

भगवती सूत्रकी तरह नन्दीसूत्रकी मूलभाषा प्राचीन प्राकृत है। प्राकृत साहित्यमें थोडा भी अभ्यास रखनेवाला इसपरसे सहज

भाषा और ग्रन्थ-परिमाण

बोध कर सकता है। ग्रन्थ-परिमाण सातसौका कहा जाता है। जैसे १४७४ की हस्तलिखित प्रतिमें ग्रन्थाग्र ७०० लिखा है। किन्तु 'जयइ' पदसे अन्तिम 'से त्त नन्दी' इस पदतकके पाठको अक्षरगणनासे गिननेपर २०६८६ अक्षर होते हैं, जिनके ६४६ श्लोक १४ अक्षर होते है। अगर कहा जाय कि ७०० की गणना आणुन्नानन्दीको लेकर पूरी की गई है, तो उसमे बहुत श्लोक बढते हैं, अत ऐसा मानना भी सङ्गत नहीं। प्रचलित नन्दीसूत्रका मूलपाठ यदि कौंसके पाठोंको मिलाये तो भी ६५० करीब होता है, सम्भव है कालक्रमसे कुछ पाठकी कमी हो गई हो, या लेखकोंने अनुमानसे ७०० लिखा हो।

नन्दीसूत्रके कर्ता श्रीदेववाचक आचार्य माने जाते हैं। चूर्णिकार श्री जिनदासगणि आपका परिचय देते हुए लिखते हैं कि

कर्ता

'देववायगो साहुजण-हियट्ठाए इणमाह'-नन्दीचूर्णि (पृ २०।१९) इसकी पुष्टीमे वृत्तिकार श्री हरिभद्रसूरिका उल्लेख इस प्रकार है-"देववाचकोऽधिकृताऽध्ययनविषयभूतस्य ज्ञानस्य प्ररूपणां कुर्वन्निदमाह' फिर-'न नु देववाचकरचितोऽयं ग्रन्थ इति' नन्दी हा वृ (पृ ३७)

उपरोक्त उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्दीसूत्रके लेखक श्रीदेववाचक आचार्य हैं किन्तु यह विचारना आवश्यक हो जाता है कि आचार्य श्रीने इसको मौलिक निर्माण किया है या प्राचीन शास्त्रोंसे उद्धरण किया है?

टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरिने मनःपर्यवज्ञानकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ देववाचकरचित है तब अप्रासङ्गिक गौतमका आमन्त्रण क्यों? इस शङ्काके उत्तरमें आप कहते हैं कि "पूर्वसूत्रोंके आलापकही अर्थके वशसे आचार्यने रचे हैं" देखो 'पूर्वसूत्रालापका एव अर्थवशाद्विरचिता'-श्रीमन्नन्दी-हा वृ (पृ ४१)

उपाध्याय समयसुन्दर गणि भी लिखते है-'अङ्गशास्त्रोंके सिवाय अन्य शास्त्र आचार्योंने अङ्गोंसे उद्धरण किये हैं' देखो-'एकादश अङ्गानि गणधरभाषितानि, अन्यागमा सर्वेऽपि छद्मस्थै अङ्गेभ्य उद्धृता सन्ति'-पृ ७७, समाचारीशतक।

श्रीदेववाचक आचार्य प्रस्तुत सूत्रके सङ्कलनकर्ता है। इन्होंने इसका सङ्कलन किया है, नूतन निर्माण नहीं। उपाध्यायश्रीने

सङ्कलनकर्ता व निर्माता

अपनी भूमिकामे इस विषयको सप्रमाण सिद्ध किया है। टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरिजी भी मनःपर्यय ज्ञानकी व्याख्या करते हुए 'पूर्व सूत्रोंके आलापकोंकोही आचार्यने अर्थवशसे रचे हैं' ऐसा लिखते हैं, देखो टीका पृ ४१।

दूसरी बात यह है कि नन्दीसूत्रमें आये हुए 'तेरासिय' पदका अर्थ चूर्णिकार व वृत्तिकारोंने 'आजीविक सम्प्रदाय' ही किया है। देखो-'ते चेव आजीविया तेरासिया भणिया' चूर्णि-पृ- १०६ पं- ९ और 'त्रैराशिकाश्चाजीविका एवोच्यन्ते' हा वृ- पृ १०७ पं ७। यदि देववाचककोही नन्दीसूत्रका मूल कर्ता माना होता तो चूर्णि और वृत्तिमे 'तेरासिय' पदका अर्थ भी आचार्य त्रैराशिक सम्प्रदाय करते क्योंकि वी- नि- ५४४ मे रोहगुप्त आचार्यसे त्रैराशिक सम्प्रदायका आविर्भाव हो चुका था। फिर भी 'तेरासिय' पदसे आजीविक ही कहे जाते हैं, ऐसा आचार्यश्रीका निश्चयात्मक वचन यही सिद्ध करता है कि नन्दीसूत्रकी मौलिक रचना गणधरकृत है, क्योंकि देववाचकका सत्ता-समय दूष्यगणिके बाद माना गया है, वी नि ५४४ के पूर्वका नहीं। इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि 'देववाचक' आचार्य नन्दीसूत्रके सङ्कलनकर्ता ही हैं।

**देववाचक और देवर्द्धिगणी**

नन्दीसूत्रके सङ्कलनकर्ता श्रीदेववाचक और देवर्द्धिगणि दोनों भिन्न भिन्न हैं या एकही आचार्यके ये दो नाम हैं? इस विषय-में श्रीमन्नन्दीसूत्रके उपोद्घातमें इस प्रकार लिखा है-"देववाचकका दूसरा नाम श्री देवर्द्धिगणी है, किन्तु नन्दीसूत्रके सङ्कलनकर्ता देववाचक आगमोंको पुस्तका-रूढ करनेवाले देवर्द्धिसे भिन्न हैं"। स्थविरावलीकी मेरुतुङ्गीया टीकामें भी 'दूसगणिणो य देवड्ढी' लिखकर देववाचकका दूसरा नाम देवर्द्धि माना है। 'गच्छमतप्रबन्ध अने सङ्घ प्रगति' के लेखक बुद्धिसागर सूरीने पृ- ५१६ की पट्टावलीमें भी देववाचक और देवर्द्धिको भिन्न भिन्न माने हैं।

उपरोक्त मान्यतामें नन्दी व कल्पसूत्रकी स्थविरावली प्रमाण समझी जाती है, क्योंकि नन्दीसूत्रके रचयिता देववाचकको वृत्तिकारने दूष्यगणिका शिष्य कहा है, और कल्पकी स्थविरावलीके निर्माता देवर्द्धि गणी शाण्डिल्यके शिष्य माने गये हैं, देवर्द्धि जो पूर्ववर्ती हैं वे शास्त्रोंको पुस्तकारूढ करनेवाले माने जांयगे और दूष्यगणिके शिष्य देववाचक नन्दीसूत्रके लेखक होंगे। अर्थात् शास्त्रलेखनके बाद नन्दीसूत्रका निर्माण मानना होगा, जो सर्वथा विरुद्ध है।

**देवर्द्धिका परिचय**

प्रस्तुत सूत्रके सङ्कलयिता श्री देवर्द्धि कब और कहां जन्म धारण किये तथा उनको किस समय मुनि व सूरिपद प्राप्त हुआ? आदि विषयोंका स्पष्ट उल्लेख आज अनुपलब्ध है। तथापि स्थवि-रावली आदि साहित्यमें इनका कुछ परिचय मिलता है, जैसे-दशाश्रुतस्कन्धके अष्टमाध्ययनकी—

'सुत्तत्थरयणभरिए, खमदमगद्दवगुणेहिं संपन्ने।
देवड्ढि खमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि' ॥ १४ ॥

इस गाथासे मालुम होता है कि देवर्द्धि जन्मसे काश्यपगोत्री थे।

**देवर्द्धिगणिकी शाखा**

वृत्तिकार श्री मलयगिरीजीने प्राचीन व्याख्याकारोंकी व्याख्याके आधारपर नन्दीसूत्रमें आई हुई स्थविरावलीको देवर्द्धिकी गुर्वावली मानी है और इसीलिये उन्होंने देवर्द्धिको महागिरिशाखीय दूष्य माने है। इस विषयमें उनका लेख इस प्रकार है-'नन्दीसूत्रके प्रारम्भमें भगवान देवर्द्धिगणिजीने जो स्थविरावली दी है वह हमारे मतसे माथुरी वाचनानुगत युगप्रधान स्थविरावली है'। पर आचार्य्य मलयगिरिजी मेरुतुङ्गसूरि-प्रभृति आचार्योंका कथन है कि नन्दीकी थेरावली महागिरिशाखीय देवर्द्धिगणिकी गुरुपरम्परा मात्र है। इस विषयका मलयगिरि सूरिका उल्लेख इस प्रकार है- "तत्र सुहस्तिन आरभ्य सुस्थितसुप्रतिबुद्धादिक्रमेणावलिका विनिर्गता सा यथा दशाश्रुतस्कन्धे तथैव द्रष्टव्या, न च तयेहाधिकारः, तस्यामावलिकायां प्रस्तुताध्ययनकारकस्य देववाचकस्याभावात्, सत [redacted] महागिर्यावलिकयाऽधिकारः"-नन्दीसूत्र टीका, पत्र ४९।

मेरुतुङ्गसूरि भी स्थविरावली टीकामें इस प्रकार लिखते हैं-'अत्र चाऽयं वृद्धसम्प्रदायः-स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्-आर्य्यमहागिरिः, आर्य्यसुहस्ती च। तत्र आर्य्यमहागिरेर्या शाखा सा मुख्या, सा चैवं स्थविरावल्यामुक्ता'-

सूरि बलिस्सह साई, सामज्जो संडिलो य जीयधरो।
अज्जसमुद्दो मंगू, नंदिलो नागहत्थी य॥
रेवई सिंहो खंदिल, हिमवं नागज्जुणा य गोविंदा।
सिरिभूइदिन्न-लोहिच्च, दूसगणिणो य देवड्ढी॥

(मेरुतुङ्गी थेरावली टीका ५)

चूर्णिकार व श्री हरिभद्रसूरिने भी इनको दूष्यगणिके शिष्य लिखकर महागिरीय शाखाके आचार्य माना है, जो इस प्रकार है-'एवं कयमंगलोवयारे थेरावलिकमे य दंसिए अरिहेसु दूसगणिसीसो देववायगो साधुजणहियट्ठाए इणमाह'-चूर्णि पृ. १०। 'दूष्यगणिशिष्यो देववाचकः'-हारि. वृ. पृ. २०।

इस प्रकार प्राचीन आचार्योंके लेख और प्रसिद्धिमें देवर्द्धिगणी महागणी शाखाके आचार्य्य माने गए हैं किन्तु मुनि कल्याणविजयजीने अपने 'जैन कालगणना' नामक लेखमें इसका विरोध ८ कारणोंसे किया है। उन्होंने देवर्द्धिको सुहस्ति परम्पराकी जयन्ती शाखाके आचार्य माने हैं। उनके लेखका यह अंश निम्न प्रकार है—'आजपर्यन्त जो जो उल्लेख हमारे दृष्टिगत हुए हैं उनसे तो यहि साबित होता है-देवर्द्धिगणि आर्य्यमहागिरीकी शाखाके नहीं, किन्तु

१. जिनदास गणि चूर्णिकार और वृत्तिकार श्री हरिभद्रसूरि।

आर्य्यसुहस्तीकी परम्परागत जयन्ती शाखाके स्थविर थे'। टीकाकारोंने नन्दीकी स्थविरावलीको देवर्द्धिकी गुर्वावली मानी है परन्तु श्रीकल्याण विजयजीका कहना है कि 'नन्दीके आदिमे उन्होंने जिन जिन स्थविरोंका उल्लेख किया है वे सब गुरुशिष्यपरम्परागत नहीं परन्तु युगप्रधान-परम्परागत स्थविर थे-उनके भिन्न भिन्न गच्छ और गुरुओंके शिष्य होनेपर भी एक दूसरेके पीछे युगप्रधान पद प्राप्त होनेसे देवर्द्धिने उनको क्रमश एक आवलि बद्ध किया है' फिर-'देवर्द्धिने सम्भूतविजयके बाद भद्रबाहु और महा-गिरिके बाद सुहस्तिको स्थविर माना है, इससे ज्ञात होता है कि यह थेरावली गुरुक्रमवाली थेरावली नहीं पर युगप्रधान क्रमवाली है'। उपरोक्त विवरणपर विशेष विचार करनेसे देवर्द्धिको सुहस्तिकी परम्पराम माननाही विशेष सुसङ्गत दिखता है।

ऊपर हम लिख आए कि श्रीदेवर्द्धि सुहस्तीकी परम्पराके आचार्य हैं।

**देवर्द्धिगणिके दीक्षागुरु**

अब इस बातका विचार करना आवश्यक है कि उनके दीक्षागुरु कौन थे। चूर्णिकार, वृत्तिकार आदि प्राचीन आचार्योंने दूष्यगणिको इनके दीक्षागुरु माने हैं। मुनि कल्याण-विजयजीने शाण्डिल्यको देवर्द्धिके दीक्षागुरु माना है। उनका कहना निम्न प्रकार है—

'आचार्य मलयगिरिजी इनको दूष्यगणिके शिष्य लिखते हैं-'दूष्यगणि-शिष्यो देववाचक'। प्रसिद्धिमें भी देवर्द्धिगणि दूष्यगणिकेही शिष्य कहलाते हैं। पर हम समझ सकते हैं कि मलयगिरिजीका उल्लेख और उक्त प्रसिद्धि नन्दी थेरावलीको देवर्द्धिकी गुरुक्रमावली लेनेकाही फल है। और जब हम यह देख चुके हैं कि नन्दीथेरावली देवर्द्धिकी गुरुपट्टावली नहीं है तब उसके आधारपर यह कैसे मानलें कि देवर्द्धिगणि दूष्यगणिके शिष्य थे। कल्पथेरावलीमें भी दूष्यगणिका नामनिर्देश नहीं है पर वहां अन्यनाम शाण्डिल्यका है। इससे जाना जाता है कि देवर्द्धिगणिके दीक्षागुरु आर्य शाण्डिल्यही होने चाहिए। नन्दीमें देवर्द्धिके पहले दूष्यगणिका नाम होनेका अर्थ यह हो सकता है कि वे देवर्द्धिगणिके पुरोगामी युगप्रधान होंगे'।

**देवर्द्धिगणिका समय**

आचार्यश्री देववाचकने वी नि ९८० म शास्त्रलेखन किया ऐसा प्रसिद्ध है, देखो-जैन कालगणना पृ ११७ का टिप्पण। माथुरीकी गणनाके अनुसार आर्यरक्षितजी १० व स्थविर थे; वे वी नि स ५८४ म स्वर्गवासी हुए। और इनके पीछे ३९६ वर्षम देवर्द्धिसहित ११ युगप्रधान हुए। और देवर्द्धिने ९८० में पुस्तकोद्धार किया, इसपरसे यह निर्णय कर सकते हैं कि वी नि दशमी शताब्दीके अन्तिम चरणमें आचार्य श्री वर्तमान थे।

## श्रीमन्नन्दीसूत्रकी प्रस्तावना

भगवान् महावीरके बाद शास्त्रोंकी मुख्य तीन वाचनाएँ हुई जो १ पाटलिपुत्रीया २ माथुरी तथा ३ वालभीक नामसे प्रसिद्ध हैं।

आगमवाचना और देवर्द्धिगणी

१ पाटलिपुत्रीया—यह वाचना नन्द राजाके शासनकालमें वीर नि १६० के आसपास पाटलिपुत्र नगरमें हुई, अत यह पाटलीपुत्रीय कहाती है। इस वाचनामें श्रमण सङ्घने एकत्र होकर दुर्भिक्षके कारण छिन्न-भिन्न हुए आगमोंको पुन व्यवस्थित किये, यह वाचना श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयम हुई थी।

२ माथुरी वाचना—इसके सम्बन्धमें आचार्य श्रीमलयगिरिजी नन्दी-सूत्रकी टीकामें लिखते हैं-स्कन्दिलाचार्यके समयमें बारह वर्षका दुर्भिक्ष पड़ा, उस महान् दुर्भिक्षके समयमें साधुओंको भिक्षाकी प्राप्ति असम्भव हो गई। इससे अपूर्व सूत्रार्थका ग्रहण और पठितका परावर्तन प्रायः सर्वथा नष्ट हो गया। बहुतसा अतिशययुक्त श्रुत भी इसीसे विनष्ट हो गया तथा परिवर्तन नहीं करनेसे यह अङ्ग-उपाङ्गगत भी भावसे नहीं रहा। यह बारह वर्षका दुर्भिक्ष मिटकर जब सुभिक्ष हुआ तब मथुरामें स्कन्दिलाचार्य प्रमुख श्रमण सङ्घने एकत्र मिलकर जिसको जो याद था उसने वह कहा, इसप्रकार कालिकश्रुत और पूर्वगतको अनुसन्धान करके सङ्घटित किया। मथुरामें यह सङ्घटना हुई इसलिये इसको माथुरी वाचना कहते है, और वह उस समयके युगप्रधान स्कन्दिलाचार्यकी मान्य थी व अर्थ-रूपसे उन्होंनेही शिष्योंको उसका अनुयोग दिया, इसलिये यह अनुयोग स्कन्दिलाचार्यका कहाता है। दूसरे आचार्य इस विषयमें ऐसा कहते है—दुर्भिक्षसे कुछ भी श्रुत नष्ट नहीं हुआ, किन्तु उस समयमें उतनाही श्रुत रहा था। केवल दूसरे प्रधान अनुयोग करनेवाले आचार्य सभी दुर्भिक्ष समयमें कालके ग्रास होगये, एक स्कन्दिलाचार्यही रहे थे, उन्होंने दुर्भिक्षके अन्तमे फिर मथुरामे अनुयोग किया, इसलिये यह माथुरी वाचना कहाती है। पाठकोंके अवलोकनार्थ हम वह टीकाका अंश यहा उद्धृत करते है—

"इह स्कन्दिलाचार्य्यप्रतिपत्तौ दुष्षमसुषमाप्रतिपन्थिन्या तदुद्गतसकलशुभभावप्रसनैकसमारम्भाया दुष्षमाया साहायकमाधातु परमसुहृदिव द्वादशवार्षिकं दुर्भिक्षमुदपादि, तत्र चैवरूपे महति दुर्भिक्षे भिक्षालाभस्याऽसम्भवादवसीदता साधूनामपूर्वार्थग्रहणपूर्वार्थस्मरणश्रुतपरावर्तनानि मूलत एवापजग्मु श्रुतमपि चातिशायि प्रभूतमनेशत्। अङ्गोपाङ्गादिगतमपि भावतो विप्रणष्टम्, सापरावर्तनाविरभावात्। ततो द्वादशवर्षानन्तरमुत्पन्ने सुभिक्षे मथुरापुरि स्कन्दि

लाचार्यप्रमुखश्रमणसङ्घेनैकत्र मिलित्वा यो यद् स्मरति स तत्कथयतीत्येवं कालिकश्रुतं पूर्वगतं च किञ्चिदनुसन्धाय घटितम्। यतश्चैतन्मथुरापुरि सङ्घटितमत इयं वाचना 'माथुरी'त्यभिधीयते, सा च तत्कालयुगप्रधानानां स्कन्दिलाचार्याणामभिमता, तैरेव चार्थतः शिष्यबुद्धिं प्रापितेति तदनुयोगः तेषामाचार्याणां सम्बन्धीति व्यपदिश्यते। अपरे पुनरेवमाहुः—न किमपि श्रुतं दुर्भिक्षवशादनेशत्, किन्तु तावदेव तत्काले श्रुतमनुवर्तते स्म। केवलमन्ये प्रधाना येऽनुयोगधराः ते सर्वेऽपि दुर्भिक्षकालकवलीकृताः, एक एव स्कन्दिलसूरयो विद्यन्ते स्म, ततस्तैर्दुर्भिक्षापगमे मथुरापुरि पुनरनुयोगः प्रवर्तित इति वाचना 'माथुरीति' व्यपदिश्यते, अनुयोगश्च तेषामाचार्याणामिति " मलयगिरि-वृत्ती।

उपरोक्त वाचनाके समयबावत 'जैनकालगणना'में निम्न उल्लेख है—' यह वाचना वीरनिर्वाणसे ८२७ और ८४० के बीचमें किसी वर्षमें युगप्रधान आचार्य स्कन्दिलसूरिकी प्रमुखतामें मथुरा नगरीमें हुई थी।'-( पृ. १०४ )

२ वालभी वाचना-वलभीपुरमें की हुई वाचना वालभी कहाती है, इसके सम्बन्धमें परम्परासे यह मान्यता चली आरही है कि देवर्द्धिगणिके प्रमुखत्वमें वलभीपुरमें जो शास्त्रलेखन हुआ वही 'वालभी' वाचना है। लोकप्रकाश व समाचारी-शतकमें यह पक्ष मिलता है, किन्तु जैनकालगणनामें योगशास्त्र व कथावली आदिके आधारसे नागार्जुनको वालभी वाचनाके प्रवर्तक माना है। वहांका यह लेख इस प्रकार है—

' जिस कालमें मथुरामें आर्य स्कन्दिलने आगमोद्धार करके अपनी वाचना शुरू की उसी कालमें वलभी नगरीमें नागार्जुनसूरिने भी श्रमणसङ्घ इकट्ठा किया और दुर्भिक्षवश नष्टावशेष आगम सिद्धान्तोंका उद्धार शुरू किया। वाचक नागार्जुन और एकत्रित सङ्घको जो जो आगम और उनके अनुयोगोंके उपरान्त प्रकरण, ग्रन्थ याद थे वे लिख लिए गए और विस्मृत स्थलोंको पूर्वापर सम्बन्धके अनुसार ठीक करके उसके अनुसार वाचना दी गई' (पृ ११०)

योगप्रकाशका उल्लेख भी इसी प्रकार है, देखें-जिनवचनं च दुष्षमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्यप्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्-[ तृतीय प्रकाश प १०७ ]

वाचनाओंके इस विवरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि महावीरनिर्वाणके बाद एक हजार वर्षमें ३ वाचनायें हुईं, जिनमें प्रथम वाचनामें अङ्गशास्त्रोंकी सङ्कलना की गई और माथुरी व वालभी वाचनामें शास्त्रोंकी संङ्कलनाके सिवाय उनका लेखन भी करवाया गया। ये दोनों वाचनायें देवर्द्धिसे करीब १००-१२५ वर्ष पूर्वमें हो चुकी थीं।

वालभी वाचना जो कि माथुरीके समकालमें हुई है, देवर्द्धिगणिकी

देवर्द्धिगणीका आगमलेखन

वाचना नहीं किन्तु नागार्जुनकी है क्योंकि देवर्द्धिगणिने अपने नन्दीसूत्रमें स्कन्दिलाचार्यका 'अनुयोग-प्रवर्तक' और नागार्जुन आचार्यका 'वाचक' इस विशेषणसे वन्दन किया है। इससे नागार्जुनाचार्य ही वालभी वाचनाके प्रवर्तक सम्भव होते हैं। हां! नागार्जुन और स्कन्दिलाचार्यकी वाचनामें समन्वय करके श्री देवर्द्धिगणिने शास्त्रोंको सर्वमान्य एकरूप दिया तथा उन सबको लिपिबद्ध कराये इस दृष्टिसे यदि इनको वाचक कहें तो कह सकते हैं। अन्यथा वाचनाके मुख्य प्रवर्तक स्कन्दिलाचार्य और नागार्जुनही हैं। इस विषयमें 'जैनकालगणना'का उल्लेख इस प्रकार है—

" स्कन्दिलाचार्यके समयमें वलभीमें मिले हुए सङ्घके प्रमुख आचार्य नागार्जुन थे और उनकी ही हुई वाचना ही वालभी वाचना कहलाती है"— [ पृ० ११२ टि. ]

देवर्द्धिगणिकी अध्यक्षतामें वलभीमें जो श्रमणसङ्घ इकट्ठा हुआ उसमें दोनों वाचनाओंके सिद्धान्तोंका परस्पर समन्वय किया गया, और यथा शक्य भेद मिटाकर उनको एकरूपमें किये, तथा जो भेद महत्वपूर्ण दिखे उनको पाठान्तरके रूपसे टीका- चूर्णियोंमें संगृहीत किये अतएव देवर्द्धिके इस कार्यको आगमलेखन कहते हैं, 'सिद्धान्त पुस्तकीकृत' ऐसी उक्ति भी प्रसिद्ध है। मेरुतुङ्गीय थेरावलीमें इस विषयका निम्न उल्लेख है–' श्रीवीरादनु सप्तविंशतितम पुरुषो देवर्द्धिगणी सिद्धान्तान्-अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधिरूढा-नकार्षीत्'। सुबोधिका टीकामें भी इस विषयका एक पद्य है, जैसे—

वलहिपुरम्मि णयरे, देवड्ढिपमुहसयलसंघेहिं॥
पुत्थे आगम लिहिओ, नवसय असियाओ वीराओ॥ १॥

उपरोक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्री देवर्द्धिगणिने वी. नि ९८० के समय वलभीपुरमें आगमलेखन सम्पन्न किया।

देवर्द्धिगणीकी विशेषता

जब आचार्य श्रीदेवर्द्धिने आगमका लेखन करवाया है तब आगमोंमें जिनवाणीविरुद्ध भी स्वार्थवश या अज्ञानवश लिखा गया होगा, ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि आचार्य श्री भवभीरु और ११ अङ्गोंके सिवाय १ पूर्वका ज्ञान रखते थे, जिनवाणीका उच्छेद न होजाय इसी परमार्थबुद्धिसे उन्होंने शास्त्रोंको लिपिबद्ध किये हैं, किन्तु अपनी मान-पूजाके लिये नहीं। इसलिये जहां मतभेदका भी प्रसङ्ग आया तो बहुमतके सिद्धान्तको मुख्य मानकर दूसरेको भी पाठान्तररूपसे रखलिया, जो आगमोंमें आज भी वाचनान्तरके नामसे उपलब्ध है, और उनकी उत्सूत्र-भीरुताका यह खास प्रमाण है। भगवती सूत्रमें वीर निर्वाणसे १००० वर्षतक

पूर्व-ज्ञान रहनेका प्रमाण मिलता है, देखें-' जंबूदीवे २ भारहे वासे इमीसे उस्सप्पिणीए देवाणुप्पियाणं एगं वाससहस्सं पुव्वगए अणुसज्जिस्सइ '— ( श २०, उ. ८, सू. ६७८ )

उपरोक्त प्रमाणसे आचार्यश्रीकी पूर्वधारिता सच्ची सिद्ध होती है। पूर्वज्ञानके ज्ञाता और भवभीरु होनेके कारण आचार्यश्रीके लिये जिनवाणीविरुद्ध लिखनेकी शङ्का नहीं हो सकती, आचार्यश्रीकी इस विशेषताको दिखानेवाली कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें एक गाथा मिलती है, जो इस प्रकार है—

" सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने।
देवड्ढि खमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि " ॥ १४ ॥

उपरोक्त गाथामें आचार्यश्रीके सूत्रअर्थरूप विविध रत्नोंसे पूर्ण और क्षमदममार्दव गुणोंसे सम्पन्न ऐसे दो विशेषण दिये हैं, इससे उनके ज्ञानबल व चारित्रबलका परिचय मिलता है। ज्ञानबलके साथ चारित्र और आत्मार्थिता आचार्यश्रीकी खास विशेषता है।

आचार्यश्रीकी अन्य रचना और शिष्यपरिवार आदिका परिचय नहीं मिलता।

देवर्द्धिगणीकी गुर्वावली

देवर्द्धिगणीके गुरु और शाखाका उपलब्ध सामग्रीके अनुसार हम पहले परिचय करा आये है, उसके आधारसे देवर्द्धिगणी शाण्डिल्यके शिष्य सिद्ध होते हैं, ऐसी परिस्थितिमें उनकी गुर्वावली श्रीनन्दीसूत्रस्थ स्थविरावली नहीं होकर कल्पसूत्रकी स्थविरावली होनी चाहिये, क्योंकि नन्दीसूत्रकी स्थविरावलीमें १४ वें नम्बरपर शाण्डिल्यको लिखकर फिर १७ नाम अन्य आचार्योंके लिखे हैं। देखें नन्दीसूत्रकी स्थविरावली—

नन्दीसूत्रस्थ स्थविरावली

| | |
|---|---|
| १ आर्य श्री सुधर्मा | ११ आर्य श्री बलिस्सह |
| २ „ „ जम्बू | १२ „ „ स्वाति |
| ३ „ „ प्रभव | १३ „ „ श्यामार्य |
| ४ „ „ शय्यम्भव | १४ „ „ शाण्डिल्य |
| ५ „ „ यशोभद्र | १५ „ „ समुद्र |
| ६ „ „ सम्भूतविजय | १६ „ „ मङ्गु |
| ७ „ „ भद्रबाहु | १७ „ „ धर्म |
| ८ „ „ स्थूलभद्र | १८ „ „ भद्रगुप्त |
| ९ „ „ महागिरि | १९ „ „ वज्र |
| १० „ „ सुहस्ती | २० „ „ रक्षित |

| | |
|---|---|
| २१ आर्य श्री नन्दिल (आनन्दिल) | २७ आर्य श्री नागार्जुन |
| २२ " " नागहस्ती | २८ " " श्रीगोविन्द |
| २३ " " रेवतीनक्षत्र | २९ " " भूतदिन्न |
| २४ " " ब्रह्मद्वीपकसिंह | ३० " " लौहित्य |
| २५ " " स्कन्दिलाचार्य | ३१ " " दूष्यगणी |
| २६ " " हिमवन्त | ३२ " " देवर्द्धिगणी |

अगर यह स्थविरावली देवर्द्धिगणीकी गुर्वावली होती तो शाण्डिल्यके बाद देवर्द्धिगणीका नाम होता, किन्तु यहाँ वैसा नहीं है। कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें शाण्डिल्यका नाम अन्तिम लिखकर फिर देवर्द्धिगणीका नाम लिखा है, इसलिये इसको देवर्द्धिकी गुर्वावली मानना सङ्गत दिखता है, वह इसप्रकार है—

कल्पसूत्रीय स्थविरावली

| | |
|---|---|
| ५ आर्य यशोभद्र | २० आर्य नक्षत्र |
| ६ " सम्भूतिविजय | २१ " रक्ष |
| ७ " स्थूलभद्र | २२ " नाग |
| ८ " सुहस्ती | २३ " जेहिल |
| ९ " सुस्थितसुप्रतिबुद्ध | २४ " विष्णु |
| १० " इन्द्रदिन्न | २५ " कालक |
| ११ " दिन्न | २६ " सम्पलितभद्र |
| १२ " सिंहगिरि | २७ " वृद्ध |
| १३ " वज्र | २८ " संघपालित |
| १४ " श्रीरथ | २९ " श्रीहस्ती |
| १५ " पुष्यगिरि | ३० " धर्म |
| १६ " फल्गुमित्र | ३१ " सिंह |
| १७ " धनगिरि | ३२ " धर्म |
| १८ " शिवभूति | ३३ " शाण्डिल्य |
| १९ " भद्र | ३४ " देवर्द्धिगणी |

नन्दीसूत्रकी विशेषता

श्रीनन्दीसूत्र और श्री देवर्द्धिगणीके विषयमें संक्षिप्त परिचय देकर हम प्रस्तुत सूत्रकी विशेषतापर विचार करते हैं। स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवती व राजप्रश्नीय आदि अङ्ग और उपाङ्ग शास्त्रोंमें प्रसङ्गोपात्त ज्ञानका वर्णन मिलता है किन्तु इसप्रकार विशद रीतिसे पांच ज्ञानोंका एकत्र वर्णन नन्दीसूत्रमेंही उपलब्ध होता है, श्रुतनिश्रित मतिज्ञानके अवग्रह आदि भेदोंको प्रतिबोधक व मल्लकके उदाहरणसे समझाना और चार बुद्धिओंका उदाहरणके साथ परिचय देना यह नन्दीसूत्रकी खास विशेषता है। पूर्व-

वर्णित विषयका गाथाओंके द्वारा संक्षेपमें उपसंहार कर दिखाना यह इस सूत्रकी दूसरी विशेषता है।

**नन्दीसूत्रपर टीकाएँ**

नन्दीसूत्रपर प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती ऐसी चार भाषाओंमें टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनमें प्रथम टीका जो चूर्णि कहाती है, यह जिनदासगणि महत्तरकृत प्राकृत भाषामें है, दूसरी टीका श्रीहरिभद्रसूरिकृत संस्कृतभाषामें है, यह टीका बहुत अच्छी है, प्राय चूर्णिके आदर्शपर निर्माण की गई मालुम होती है तीसरी श्रीमलयगिरि टीका है, इसमें श्रीमलयगिरि आचार्यकृत विस्तृत विवेचन है चौथी गुजराती बालावबोध नामकी टीका रा धनपतसिंह बहादुरकी तरफसे प्रकाशित है, पाँचमी पूज्यश्री अमोलक-ऋषिजीकृत हिन्दी अनुवाद है। सभी मूलके साथ मुद्रित हैं। देखें-नन्दीसूत्रके मुद्रित संस्करणोंका परिचय जो इसी प्रतिमें अन्यत्र प्रकाशित है।

**शास्त्रान्तरके साथ नन्दीसूत्रका भेद**

जब हम नन्दीसूत्रके विषयको अन्य शास्त्रोंमें देखते हैं, तब उनमें कहीं कहीं भेद भी मिलता है, जिसमें कुछ भेद तो विशेषता दर्शक हैं और कुछ मतभेदसूचक भी। यहां हम उनका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराते हैं—

१ अवधिज्ञानके विषय, संस्थान, आभ्यन्तर और बाह्य, तथा देशावधि, सर्वावधि आदि विचार पन्नवनाके ३३ वें पदमें मिलते हैं।

२ मतिसम्पदाके नामसे दशाश्रुतस्कन्धके चतुर्थ अध्ययनमें अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके-क्षिप्र ग्रहण करना १, एकसाथ बहुत ग्रहण करना २, अनेक प्रकारसे और निश्चल रूपसे ग्रहण करना ३-४, विना किसीके सहारे तथा सन्देहरहित ग्रहण करना ५-६, ये छ प्रकार है, प्रतिपक्षके ६ प्रकार मिलानेसे अवग्रह आदिके १२-१२ भेद होते हैं। ये दोनों भेद विशेषता-दर्शक हैं।

३ पाँच ज्ञानमें प्रथमके ३ ज्ञान मिथ्यादृष्टिके लिये मिथ्याज्ञान कहाते हैं। नन्दीसूत्रमें मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञानका उल्लेख मिलता है किन्तु भगवती आदि शास्त्रोंमे मिथ्यादृष्टिके अवधिज्ञानको भी विभङ्गज्ञान कहा है ( श० ८, उ० २ )

४ मतिज्ञानका विषय—नन्दीसूत्रमें मतिज्ञानका विषय दिखाते हुए कहा है कि मतिज्ञानी सामान्य रूपसे सब द्रव्योंको जानता है किन्तु देखता नहीं। परन्तु भगवती सूत्रके श० ८ उ० २ और सू० १०२ में कहा है कि "मति ज्ञानी सामान्य रूपसे सब द्रव्योंको जानता और देखता है"। उपर्युक्त दोनों उल्लेखोंमें महान् भेद दिखता है, भगवती सूत्रमें टीकाकारने इसको वाचना

न्तर माना है, उनका यह उल्लेख इस प्रकार है—" इदं च सूत्रं नन्द्यामिहैव वाचनान्तरे 'न पासइ' इति पाठान्तरेणाधीतम् ", दोनों वाचनाओंका टीकाकारने इस प्रकार समन्वय किया है। 'आदेश' पदका 'श्रुत' अर्थ करके श्रुतज्ञानसे उपलब्ध सब द्रव्योंको मतिज्ञानी जानता है, यह भगवती सूत्रका आशय है। नन्दीसूत्रमें 'न पासइ' कहनेका आशय इस प्रकार है—

आदेशका मतलब है प्रकार, वह सामान्य और विशेष ऐसे दो प्रकारका है, उनमें द्रव्यजाति इस सामान्य प्रकारसे धर्मास्तिकायादि सब द्रव्योंको मतिज्ञानी जानता है और धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकायका देश इस विशेष रूपसे भी जानता है, किन्तु धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्योंको नहीं देखता केवल योग्य देशमें स्थित शब्दरूप आदिको देखता है, देखें-यह टीकाका अंश—" आदेशः-प्रकारः, स च सामान्यतो विशेषतश्च, तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति, विशेषतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि न पश्यति सर्वान् धर्मास्तिकायादीन्, शब्दादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपीति "।

श्रुतज्ञान-द्वादशाङ्गीका परिचय समवायाङ्ग सूत्रमें नन्दीसूत्रसे कुछ भिन्न मिलता है। परिशिष्टमें समवायाङ्गका पाठ दिया है, जिसको पढकर पाठक सहजमें भिन्न अंशको समझ सकते हैं। उसमें बहुतसा अंश विशिष्टतासूचक है, किन्तु आठवें, नवमें और दशमें अङ्गके परिचयमें जो भेद है वह विशेष विचारणीय है।

आठवें अङ्गके ८ वर्ग और उद्देशनकाल हैं परन्तु समवायाङ्गमें दस अध्ययन, सात वर्ग और १० उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल कहे हैं। टीकाकारने इसका समाधान ऐसा किया है-१ प्रथमवर्गकी अपेक्षाही दश अध्ययन घटित होते हैं, २ प्रथमवर्गसे इतरकी अपेक्षा ७ वर्ग होते हैं। उद्देशनकालके लिये लिखते हैं कि-' नास्याभिप्रायमवगच्छामः ' अर्थात् इसका अभिप्राय हम नहीं समझते, सम्भव है यह वाचनान्तरकी दृष्टिसे लिखा गया हो।

नवम अङ्गके तीन वर्ग और तीन उद्देशनकाल हैं, किन्तु समवायाङ्गमें दश अध्ययन, तीन वर्ग और उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल १० लिखे हैं टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि इसके विवेचनमें लिखते हैं कि-' वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यते, इत्यतस्त्रय एव उद्देशनकाला भवन्तीत्येवमेव च नन्द्यामभिधीयन्ते, इह तु दृश्यन्ते दशेत्यत्राभिप्रायो न ज्ञायत इति "-सम.।

अर्थात्-वर्गका एकसाथही उद्देशन होता है इसलिये तीनही उद्देशनकाल होते हैं, और ऐसाही नन्दीसूत्रमें कहा जाता है। यहां दश उद्देशनकाल दिखते हैं, किन्तु इसमें अभिप्राय क्या? यह मालुम नहीं होता।

प्रश्नव्याकरणके ४५ उद्देशनकालके लिये भी टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि ' वाचनान्तरकी अपेक्षा ' ऐसा उत्तर देते हैं।

उपरोक्त भेदोंके सिवाय भी जो भेद हो उसके लिये वाचनाभेदको कारण समझना चाहिये।

मलयगिरि आचार्यने अपनी टीकामें यही कारण दिखाया है, देखें— "इह हि स्कन्दिलाचार्य-प्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्। ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः सङ्घयोर्मेलापकोऽभवत्, तद्यथा-एको वलभ्यामेको मथुरायाम्। तत्र च सूत्रार्थ-सङ्घटने परस्परवाचनाभेदो जातः। विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयो स्मृत्वा सङ्घटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः"। समयसुन्दर उपाध्यायने अपने समाचारीशतकमें भी लिखा है—

"तर्हि कथमेतावन्तो विसंवादा लिखितास्तेन? उच्यते-एकं तु कारणमिदं यथा १ यस्मिन् १ आगमे मृतावशिष्टसाधुभिर्यद् यदुक्तम् तथा १ तस्मिन् १ आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेनाऽपि पुस्तकारूढीकृतम्, न हि पापभीरवो महान्त 'इदं सत्यम्' 'इदं तु-असत्यमिति' एकान्तेन प्ररूपयन्तीति, द्वितीयं तु कारणमिदं यथा वलभ्यां यस्मिन्काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता तथा तस्मिन्नेव काले मथुरानगर्यामपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गताऽऽगमालापकेषु सङ्कलनायां विस्मृतत्वाद्विशेष एव वाचनाविसंवादकारको जातः"-पृ ८०।

दुर्भिक्षके बाद बचे हुए साधुओंने जिस १ आगममें जैसा कहा वैसा देवर्द्धिगणीने पुस्तकारूढ करलिया, क्योंकि पापभीरु आचार्य यह सत्य यह असत्य ऐसा एकान्तसे प्ररूपण नहीं करते। दूसरा वलभी और मथुरामें एक समय दो वाचनाएँ हुई थी, जिसमें मृतावशिष्ट साधुओंके मुखसे निकले हुए आलापकोंकी सङ्कलनामें विस्मृतत्व आदि दोषही वाचनाके विसंवादका कारण हुआ। उपरोक्त उल्लेखसे वाचनाभेद व मतभेदका कारण स्पष्ट हो जाता है, इसलिये शङ्का करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

**प्रस्तुत संस्करण और सूचना**

इसका परिचय 'प्रबन्धकके दो शब्दके' अन्तमें पं० जीने कराया है, अत उसके पुनरावर्तन करनेकी यहां आवश्यकता नहीं रहती। केवल यह मालुम कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत सूत्रका अनुवाद मलयगिरि और हारिभद्रीय वृत्तिके आधारसे किया है। अत स्थविरावलीके भी अनुवादमें गुरुशिष्यका सम्बन्ध उसके अनुसारही लिखा गया है। ११-२१ आदि गाथाओंका क्षेपकत्व भी उसी दृष्टिसे लिखा था, किन्तु उपलब्ध सामग्रीसे इनको क्षेपक माननेकी बात भ्रमपूर्ण दिखती है, जिसका प्रस्तावनामें पहले विवेचन कर आये हैं।

# श्रीनन्दीसूत्रकी विषयानुक्रमणिका



# श्रीनन्दीसूत्रकी विषयानुक्रमणिका



इति समाप्ता ।

# पूज्यश्रीहस्तिमल्लजिन्महाराजानां सन्निधौ सविनयं निवेदनम्–

प्रथमं तदीय कर्तव्यकथनम्—

मेधामन्थानकेनाऽभिहितजिनगवीगव्यमव्यग्रचेता ।
ग्रन्थेऽमग्रे चिरत्ने विततगुणनिभैरुध्यमैरभ्यमग्रात् ॥
यत्नादुन्नीतवान् सत्सुमतिसमुदये हारि हैयङ्गवीनं ।
पूज्यः श्रीहस्तिमल्लो मुनिरुपहरते नन्दिसूत्रं नवीनम् ॥ १ ॥

तदनु तद्गुणवर्णने मौनोपक्रमः—

दीपे देदीप्यमाने तिरयति तिमिरे द्योतिते द्योतकं चेत् ।
कोऽपि ब्रूयात्तदीयं गुणमुपहसितः स्यात्सभेयैः स नूनम् ॥
पूज्ये श्रीहस्तिमल्ले मुनिगुणमहिते कीर्तिवित्तेऽभिधेये ।
मौनं स्यात्तु प्रशस्ति प्रवचनमनसं मां निरुक्तो विमर्शः ॥२ ॥

अथापि भवान्—

चिरञ्जीवतु जीवातुभूतस्तीर्थानि संनयन् ।
वृत्तिं परिहरन् यत्नादुपक्रोशमलीमसाम् ॥ ३ ॥
हस्तं भवास्तं जिनशासनस्थो,–भतौ सदा सङ्गमपत्नयंश्च ।
दयोदयं दीनजने विभर्तु निजाऽन्यतन्त्राऽपरतन्त्रभावम् ॥ ४ ॥

–चिरानुचरस्य कस्यचित्–

॥ ऐं नमः ॥ श्री जिनाय। जयति भुवनैककर्त्ता सर्वज्ञो विहितकर्मनाशकः। नित्योदितः शिवसत्पदलीनो वर्द्धमान जिनः ॥ अयति जगदकमल
भास्कर इति तीर्थकर इव दरितथन तिमिरैः ॥ २ ॥ विविलमिव यथा स्थित वस्तु विकाशं जितेन्द्र वचनं अर्हद् सर्वज्ञ वसुसारसर्वार्थ सीनर्जनतानारक तिर्यग्नरा
मराणां निवसन विधि धृजारीरमानसानेकदुःखोपनिपात पीडित नर्पीडानिर्विघ्न संसारपरिहरन्ती धर्म्याजन्मजरामरण रोगशोकाद्युपद्रव वास
स्वरूप परमानन्दरूपं गान्यस्य पदमक्षिराद्भुकास्मन्नात दयासत्य स्वपर समानन सहित सर्वपापाधिकारायय तितय तथापि मदत्यामार्ग निश्चितं पू
राप इति कर्त्तव्यात् स्वाग्रय विशुद्धि प्रकर्ष संपादनताय चिन्तापन्न धर्मप्रकार ग्रंथ न्यासश्चयः पारप्रकारस्थ द्विधा दृष्यता तावत् अन्तरङ्ग तावत्
वात्सल्य धनकावना दिप्रदानं जनितः सचातिकातकाकदा [illegible] जिनमार्गविमुक्तिकाशिवा सम्यवन्तनप्रकाशन तत्वावानु नायात्व तिकाकि
यत्नवान् माश्चना विज्ञाप्ता वाता जिनशासनमर्म संपादन [illegible] जनितः संविकाशिकां द्वादशविद्यानिता प्रयारानवान् आवंति निश्चय परपर
यथा शान्ति कामानां स्थ समादरजनात् जिनप्रणीता विश्व [illegible] द्विधा धर्म अति रूथमर्थ्या निराकृततथमाः सा धर्मा श्राविकधर्मः प्रान
सिद्धान्तात् अग्रमणर्धर्मान्नाचा प्रथम ज्ञानं वा [illegible] समागमा तन्त्र धर्मसंपन्नमुक्तिताप्रवर्धायकस्थाने पवित्र
साधुकपान मया वत्यरियालन समर्था नवनीता प्रथमतस्तदानमवस्थाप्यः तत्परमाद्वैत्यमद्दिमाय प्रातिनृताधवहमानप्रातिनिविदृतमवंध
याग तत्पुस्तकस्य दितात संतान वृत्ति निस्थापिर पिक्षवप्रदानमत्यात्नवसर्वात्र्यवेज्ञानार्थं द्विरिलविताय गृहिरूपतायतातत आरनणीय
प्रवचनाद्याया समवपरमद्यदृशाह्नावानुयायाव [illegible] आसिरवदद्विश्रा निसर्वनित्य तत्त्वज्ञः ॥ प्रथमा मि [illegible] विधा निर्वर्ति तिगृहता मपि [illegible] य
सिद्धहमानोत्पत्ति वीति किमाद् आडति ॥ तात्तरसाधारे नगुवसकलप्रपुण्य [illegible] समताय नरालाधिकारतदिवकथा स्थपल दिरितिकशब्दाथै ॥
तथ्यमहतउसद्या नित्यठधातागदियातानमिति तामविदितमंदमंगदिः [illegible] ज्ञानप्रकाशियथकाम्यथ

संआसीविसलावणाणं दिठीविसलावणाणं मदासमणलावणाणं वारणसमणलावणाणं तयजुत्तिसयाणं साध सिंपिएणसं ३ आह
तासवर्दासाणुमाद्याणु तम्मापुवसउ अतिसयपहिरसामदसाउकिसाय्रसस्यगडस्सा हा समसमवायस्स विवाहपसतीय णाया
धम्मकहाणं उवासगदसाणं अंतगडदसाणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पण्हावागरणाणं विवागसुयस्स साव सिंपिपपसिंदासम
सुहासाणुत्ता आणुआ ॥ वनइरमसमणपहवणा पडवस्त्र आयरस्माहसासदीज्जणुमानंदीपवत्तजरवमाससमणाणं द्वावमाण स्व
णाश्चावणानइतागपसपुत्राणाणिहाढायसायवपपतंदीनत्माला ॥ शिवमस्तु ॥ श्री श्रमण संघस्य ॥ मे शुभं भवतु [illegible] दिगु
णामार्थसायसूत्ररासहताता ति ह वि सदिंनउ तयं ॥ पाउपसत्तं ॥ [illegible]
[illegible] श्री [illegible] ॥ [illegible] पर्पमहोपाध्यायश्री [illegible]
निर्मीतमाग [illegible] ॥ [illegible] आचार्य [illegible] ॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥

卐 ॐअर्हं वन्दे 卐

# श्रीमन्नन्दीसूत्रम्



## अथ देवर्द्धिगणिविरचिताऽर्हदाद्यावलिका—

मङ्गलार्थं अर्हत्स्तुति

मूल—जयइ जगजीवजोणी,-वियाणओ जगगुरू जगाणंदो।
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं॥ १॥

छाया—जयति जगज्जीव-योनि-विज्ञायको जगद्गुरुर्जगदानन्दः।
जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जयति जगत्पितामहो भगवान्॥ १॥

शब्दार्थ—( जयइ ) जयवन्त हैं, ( जग ) पञ्चास्तिकायात्मकलोकवर्ती ( जीयजोणी ) जीवोंकी उत्पत्तिके स्थानको, ( वियाणओ ) जाननेवाले, ( जगगुरू ) जगद्गुरु, ( जगाणंदो ) जगतको आनन्द देनेवाले, ( जगणाहो ) चराचर जगतके नाथ, ( जगबंधू ) प्राणिमात्रके बन्धु, ( जगप्पियामहो ) जगतके पितामह याने प्राणिओंकी आत्मिक रक्षा करनेसे धर्म जगतका पिता है और आप उस धर्मके भी उत्पादक हैं, अतः जगतके पितामह हैं, ( भयवं ) भगवान्-समग्र ज्ञानादि ऐश्वर्ययुक्त है, अत एव ( जयइ ) जयवन्त हैं॥ १॥

श्रीवीरस्तुति

मूल—जयइ सुआणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो॥ २॥

छाया—जयति श्रुतानां प्रभवः, तीर्थकराणामपश्चिमो जयति।
जयति गुरुर्लोकानां, जयति महात्मा महावीरः॥ २॥

शब्दार्थ—( जयइ ) जयवन्त हैं, ( सुआणं ) श्रुतज्ञान याने द्वादशाङ्गरूप वर्तमान शास्त्रके ( पभवो ) उत्पत्ति कारण, अर्थात् निर्माण करनेवाले, ( तित्थयराणं ) तीर्थङ्करोंमें ( अपच्छिमो ) अपश्चिम याने अवसर्पिणीकालके २४ तीर्थङ्करोंमें अन्तिम, ( गुरू लोगाणं ) [ निरीहभावसे संसारको तत्त्वका उपदेश करनेसे ] लोकके गुरु ( जयइ ) जयवन्त हैं ( महप्पा ) महात्मा ( महावीरो ) महावीर ( जयइ ) सर्वोत्कृष्ट है॥ २॥

मूल—भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धूयरयस्स ॥ ३ ॥

छाया—भद्रं सर्वजगदुद्योतकस्य, भद्रं जिनस्य वीरस्य।
भद्रं सुरासुरनमस्यितस्य, भद्रं धूतरजसः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—( सव्व जगुज्जोयगस्स ) सब जगतमे उद्योतकारक, याने चराचर जगतके प्रकाशकका, ( भद्द ) कल्याण हो, ( जिणस्स ) वीतराग–रागद्वेष रहित ( वीरस्स ) श्री महावीरका, ( भद्दं ) भद्र हो, ( सुरासुर नमंसियस्स ) देवदानवोंसे वंदितका, ( धूयरयस्स ) कर्मरजको हटानेवालेका ( भद्द ) भद्र हो ॥३॥

गुणोंके आधार होनेसे संघकी स्तुति करते हैं—

श्रीसंघस्तुति

मूल—गुण–भवण–गहणसुय–रयण,–भरियदंसण–विसुद्ध–रत्थागा।
संघनगर ! भद्दं ते, अखंड–चारित्त–पागारा ॥ ४ ॥

छाया—गुणभवनगहन–श्रुतरत्नभृत–दर्शनविशुद्धरथ्याक ! ।
संघनगर ! भद्रं ते, अखण्डचारित्रप्राकार ! ॥ ४

शब्दार्थ—( गुणभवणगहण ) जो उत्तर गुणरूप भवनोंसे गहन, ( सुय रयणभरिय ) तथा श्रुतरत्नोंसे भराहुआ, ( दंसणविसुद्धरत्थागा ) व सम्यग् दर्शनरूप निर्मल मार्गवाला याने निर्मल श्रद्धारूप गलीयाला है, ( अखंडचारित्त पागारा ) एवं अखण्ड चारित्ररूप प्राकार याने कोटवाला, ( संघनगर ) हे संघनगर ! ( ते ) तेरा, ( भद्दं ) भद्र हो ॥ ४ ॥

मूल—संजमतवतुंबारयस्स, नमो सम्मत्तपारियल्लस्स।
अप्पडिचक्कस्स जओ, होउ सया संघचक्कस्स ॥ ५ ॥

छाया—संयमतपस्तुम्बारकस्य(काय), नमः सम्यक्त्वपारियल्लाय।
अप्रतिचक्रस्य जयो, भवतु सदा संघचक्रस्य ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—( संजमतवतुंबारयस्स ) संयम और तपरूपतुंब–नाभि याने चाकके मध्यभाग व आरे–चारो तरफकी लकडियोंसे युक्त, ( सम्मत्तपारियल्लस्स ) सम्यक्त्वमय परिकर याने चाकके ऊपरी भागवाले, तथा ( अप्पडिचक्कस्स ) प्रतिचक्ररहित अर्थात् जिसके विरोधी पक्ष नहीं है ऐसे ( संघचक्कस्स ) संघचक्रको ( नमो ) नमस्कार हो, और ( सया ) सदा ( जओ ) उसकी जय ( होउ ) हो ॥ ५ ॥

१ विसुद्ध–इति हस्तलिखिते पाठ। २ प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। ३ पारियल्ल–इति देशी शब्द परिकराय–इत्यर्थः।

अब संघको रथकी उपमासे कहते है—

मूल—भद्दं सीलपडागूसियस्स, तवनियमतुरयजुत्तस्स।
संघरहस्स भगवओ, सज्झायसुनंदिघोसस्स ॥ ६ ॥

छाया—भद्रं शीलपताकोच्छ्रितस्य, तपोनियमतुरगयुक्तस्य।
संघरथस्य भगवतः, स्वाध्यायसुनन्दिघोषस्य ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—(तवनियमतुरयजुत्तस्स) जो संघरथ तपनियमरूप घोडोंसे युक्त है, (सीलपडागूसियस्स) जो शीलरूप पताकासे ऊंचा है, (सज्झायसुनंदिघोसस्स) तथा जो संघरथ पंचविधस्वाध्यायरूपनन्दिघोष-माङ्गलिक ध्वनिवाला है, ऐसे (भगवओ) ऐश्वर्ययुक्त, (संघरहस्स) संघरूप रथका (भद्दं) भद्र हो ॥ ६ ॥

कामभोगसे अलिप्त रहनेके कारणसे संघको कमलकी उपमा दी जाती है—

मूल—कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स, सुयरयणदीहनालस्स।
पंचमहव्वयथिरकण्णियस्स, गुणकेसरालस्स ॥ ७ ॥

छाया—कर्मरजो-जलौघविनिर्गतस्य, श्रुतरत्नदीर्घनालस्य।
पञ्चमहाव्रतस्थिरकर्णिकस्य, गुणकेसरवतः ॥ ७ ॥

मूल—सावगजणमहुअरिपरिवुडस्स, जिणसूरतेयबुद्धस्स।
संघपउमस्स भद्दं, समणगणसहस्सपत्तस्स ॥ ८ ॥

छाया—श्रावकजनमधुकरीपरिवृतस्य, जिनसूर्यतेजोबुद्धस्य।
संघपद्मस्य भद्रं, श्रमणगणसहस्रपत्रस्य ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—जैसे पद्म-कमल पानीसे ऊपर उठाहुआ, लम्बी नाल और स्थिर कर्णिकावाला होता है, तथा सुगन्धित पीत परागके कारण भ्रमर-समूहसे सेवित रहता है, सूर्यकिरणसे विकसित होता व हजारपत्रवालाभी होता है वैसे—(कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स) जो संघ कर्मरूपरज व जलप्रवाहसे बाहर निकला हुआ है अर्थात् निर्लेप है, तथा (सुयरयणदीहनालस्स) श्रुत-शास्त्ररत्नमय दीर्घ-लम्बी नाल-डंटवाला व (पंचमहव्वयथिरकण्णियस्स) पांच महाव्रतही जिसकी स्थिर कर्णिकाएँ हैं, (गुणकेसरालस्स) उत्तरगुण-क्षमा आर्जव आदि जिसके पराग-केसर हैं तथा (सावगजण-

१ प्राकृतत्वात् निष्टान्तोच्छ्रितपदस्य परनिपात।

२ कुछ समयके लिये इच्छाओंको रोकना तप है और आजीवन इच्छानिरोध करना नियम है ॥

महुअरि-परिवुडस्स ) श्रावकजनरूप भ्रमरोसे सेवित या घिराहुआ व- ( जिणसूर तेय बुद्धस्स ) भावसूर्य-तीर्थङ्करके केवलज्ञानरूप तेजसे प्रबोध पाए हुए अर्थात् विकाश पाए हुए, और ( समणगण सहस्सपत्तस्स ) श्रमण-साधु समूहरूप हजारपत्र-पांखडीवाले उस ( संघपउमस्स ) संघपद्मका ( भद्दं ) भद्र हो ॥ ७-८ ॥

फिर सौम्यगुणसे चन्द्रके रूपकद्वारा संघकी स्तुति करते है—

मूल—तवसंजममयलंछण, अकिरियराहुमुहदुद्धरिस निच्चं ।
जय संघचंद निम्मल,—सम्मत्तविसुद्धजोण्हागा ॥ ९ ॥

छाया—तपःसंयममृगलाञ्छन !, अक्रियराहुमुखदुर्धृष्य ! नित्यम् ।
जय संघचन्द्र ! निर्मल,—सम्यक्त्वविशुद्धज्योत्स्नाक ! ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—( तव संजम मय लंछण ) हे तपप्रधान संयमरूप मृग लाञ्छनवाले ! ( अकिरिअराहुमुह-दुद्धरिस ) नास्तिक वादरूप राहुके मुखसे दुर्धर्ष नहीं धरने योग्य, तथा ( निम्मल सम्मत्त विसुद्धजोण्हागा ) निर्दोष सम्यक्त्वरूप विशुद्ध चांदनीवाले ( संघचंद ) हे संघचन्द्र ! आप ( निच्चं ) सदा ( जय ) जयवन्त हों ॥ ९ ॥

प्रकाशमय होनेसे फिर संघको सूर्यकी उपमा देते हैं—

मूल—परतित्थियगहपहनासगस्स, तवतेयदित्तलेसस्स ।
नाणुज्जोयस्स जए, भद्दं दमसंघसूरस्स ॥ १० ॥

छाया—परतीर्थिकग्रहप्रभानाशकस्य, तपस्तेजोदीप्तलेश्यस्य ।
ज्ञानोद्योतस्य जगति, भद्रं दमसंघसूरस्य ॥ १० ॥

शब्दार्थ—( परतित्थिय गहपहनासगस्स ) परतीर्थिकरूप ग्रहोंकी प्रभाको नष्ट-मन्द करनेवाले ( तवतेयदित्तलेसस्स ) तपस्तेजरूप चमकती कान्तिवाले तथा ( नाणुज्जोयस्स ) ज्ञानरूप प्रकाशवाले, ऐसे ( दमसंघसूरस्स ) उपशम प्रधान संघसूर्यका ( जए ) जगतमें ( भद्दं ) भद्र हो ॥ १० ॥

गम्भीरतारूप गुणसे अब संघको समुद्रकी उपमा देते है—

मूल—भद्दं धिइवेलापरिगयस्स, सज्झायजोगमगरस्स ।
अक्खोहस्स भगवओ, संघसमुद्दस्स रुंदस्स ॥ ११ ॥

छाया—भद्रं धृतिवेलापरिगतस्य, स्वाध्याययोगमकरस्य ।
अक्षोभ्यस्य भगवतः, संघसमुद्रस्य रुन्द्रस्य[१] ॥ ११ ॥

---

१ विस्तीर्णस्य-इत्यर्थ ।

शब्दार्थ—( धिइवेला परिगयस्स ) धैर्य-मूलोत्तरगुणमें उत्साहरूप आत्मपरिणाम ही जिस समुद्रकी वेला याने वृद्धिकी चरमसीमा है, ( सज्झाय जोगमगरस्स ) स्वाध्यायकी प्रवृत्तिरूप मकर-ग्राहवाले, व ( अक्खोहस्स ) उपसर्ग आदिसे क्षुब्ध नहीं होनेवाले ऐसे ( भगवओ ) भगवान् ( रुंदस्य ) परमविशाल ( संघसमुद्दस्स ) श्रीसंघरूप समुद्रका ( भद्दं ) भद्र हो ॥ ११ ॥

अब शाश्वत व अतिशय उच्च होनेके कारण छ गाथाओंसे संघको मेरुकी उपमासे उपमित करते हैं—

मूल—सम्मद्दंसणवरवइर,–दढरूढगाढावगाढपेढस्स ।
धम्मवररयणमंडिय,–चामीयरमेहलागस्स ॥ १२ ॥
नियमूसियकणय,–सिलायलुज्जलजलंतचित्तकूडस्स ।
नंदणवणमणहरसुरभि,–सीलगंधुद्धुमायस्स ॥ १३ ॥
जीवदया-सुंदर-कंदरुद्दरिय,–मुणिवरमइंदइन्नस्स ।
हेउसयधाउपगलंत,–रयणदित्तोसहिगुहस्स ॥ १४ ॥
संवरवरजलपगलिय,–उज्झरप्पविरायमाणहारस्स ।
सावगजणपउररवंत,–मोरनच्चंतकुहरस्स ॥ १५ ॥
विणयनय-प्पवरमुणिवर,–फुरंतविज्जुज्जलंतसिहरस्स ।
विविहगुणकप्परुक्खग,–फलभरकुसुमाउलवणस्स ॥ १६ ॥
नाणवररयणदिप्पंत,–कंतवेरुलियविमलचूलस्स ।
वंदामि विणयपणओ, संघमहामंदरगिरिस्स ॥ १७ ॥

छाया—सम्यग्दर्शनवरवज्रदृढरूढगाढावगाढपीठस्य ।
धर्मवररत्नमण्डितचामीकरमेखलाकस्य ॥ १२ ॥
नियमकनकशिलातलोच्छ्रितोज्ज्वलज्वलच्चित्रकूटस्य ।
नन्दनवनमनोहरसुरभिशीलगन्धोद्धुमार्थस्य ॥ १३ ॥
जीवदयासुन्दरकन्दरोद्दृप्तमुनिवरमृगेन्द्राकीर्णस्य ।
हेतुशतधातुप्रगलद्रत्नदीप्तौषधिगुहस्य ॥ १४ ॥
संवरवरजलप्रगलितोज्झरप्रविराजमानहा(धा)रस्य ।
श्रावकजनप्रचुररवन्नृत्यन्मयूरकुहरस्य ॥ १५ ॥

१ सम्मद्दसणवइर, इति हस्तलिखिते हारिभद्रीयवृत्तौ च पाठः । २ पूर्णस्य इति भाव ।

विनयनयप्रवरमुनिवरस्फुरद्विद्युज्ज्वलच्छिखरस्य ।
विविधगुणकल्पवृक्षकफलभरकुसुमाकुलवनस्य ॥ १६ ॥

ज्ञानवररत्नदीप्यमानकान्तवैडूर्यविमलचूडस्य ।
वन्दे विनयप्रणतः, संघमहामन्दरगिरिम्(रेः) ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—(सम्मद्दंसण वर वइर दढरूढ गाढावगाढ पेढस्स ) जिस संघरूप मेरुकी सम्यग्दर्शनरूप उत्तम वज्रमय दृढ तथा बहुत कालसे रोपी हुई और बहुत गहरी भूपीठ–आधारशिला है, ( धम्मवर रयण मंडिय चामीयर मेहलागस्स) श्रुत चारित्रधर्मरूप उत्तम रत्नोंसे मण्डित व सुवर्णमय ऐसी जिस संघमेरुकी मेखला है, ( नियमूसिय कणय सिलायलुज्जल जलंत चित्तकूडस्स ) इन्द्रियनिग्रह आदि नियमरूप सोनेकी शिलाओंके तलपर निर्मल और भास्वर चित्तही संघमेरुके उच्च कूट है, ( नंदणवण मणहर सुरभिसील गंधुद्धुमायस्स ) तथा सन्तोषरूप नन्दनवनकी मनोहर और सुगन्धियुक्त शीलमय सुवाससे जो भरा है, अर्थात् सुमेरुकी सुवर्णमयी शिलापर ऊंचे २ उज्ज्वल व चमकने-वाले अनेक विचित्र शिखर हैं। इधर संघमेरुकी नियमरूप सुवर्ण शिलापर उदात्तविचार–वर्द्धमान चित्त–ही निर्मल तथा सूत्रार्थकी चिरस्मृतिसे देदी-प्यमान शिखर है, मेरु नन्दनवनके सुवाससे पूर्ण है तो संघमेरु सन्तोषरूप मनोहर नन्दनवनकी सदाचरणमय सुगन्धिसे भरा हुआ है, इस प्रकार संघमेरु सुमेरु पर्वतकी तुलना करता है ॥ ११–१३ ॥

(जीवदया सुंदर कंदरुद्दरिय मुणिवर मइंद इन्नस्स) जीवदयारूप सुन्दर कन्दरामें दर्पयुक्त–कर्मशत्रुओंके प्रति व कुमतवालोंके प्रति वादलब्धिसे बलिष्ठ ऐसे मुनिवर ही जहाँ मृगेन्द्र–'सिंह' हैं उनसे पूर्ण, तथा ( हेउसयधाउ पगलंत रयण दित्तोसहिगुहस्स ) सैकडों हेतुरूप धातु और क्षायोपशमिकभावसे गिरते हुए शुभविचाररूप रत्नोंसे दीप्त व आमर्षौषधी आदि औषधीसे व्याप्त व्याख्यानशालावाला संघमेरु है, और सुमेरु औषधीसे व्याप्त गुहावाला है। [ दोनोंकी अच्छी तरह तुलना करनेके लिये पाठक अपनी बुद्धिसे काम लेवें ] ॥ १४ ॥

( संवरवर जल पगलिय उज्झरप्पविरायमाण हारस्स ) पांच आस्रवोंका निरोधरूप उत्तम संवरही कर्ममल प्रक्षालनके लिये जिस संघमेरुमें जल है, तथा बहती हुई प्रशम आदि विचारोंकी धारा–प्रवाहही जिसके शोभाय मान हार है, ( सावगजण पउर रवंत मोर नच्चंत कुहरस्स ) और बहुतसी स्तुति बोलनेवाले श्रावकजनरूप मयूरोंसे मानो संघमेरुके कुहर–कन्दरा व्याख्यानशाला–नाचरहे हैं ॥ १५ ॥

तथा—(विणयनय पवर मुणिवर फुरंत विज्जुज्जलंत सिहरस्स) विनयसे नम्र प्रवर मुनिराजही चमकती हुई विद्युल्लता है उन विद्युतरूप मुनिवरोंसे यह संघमेरु देदीप्यमान शिखरवाला है, (विविह गुणकप्परुक्खग फलभर कुसुमाउलवणस्स) तथा अनेक गुणयुक्त मुनिराजही जहाँ परमानन्दकारी धर्मफलके प्रदानसे कल्पवृक्ष हैं, उन कल्पवृक्षोंके समाधिसुख आदि फलभार व अनेक प्रकारकी अतिशय-विशेषताएँ रूप कुसुमोंसे पूर्ण वनवाला याने साधुसमूहवाला संघमेरु है॥ १६॥

फिर—(नाणवर रयणदिप्पंत कंत वेरुलिय विमलचूलस्स) उत्तम ज्ञानरूप रत्नोंसे देदीप्यमान कान्त-मनोहर और विमल वैडूर्यमय चूडावाले ऐसे (संघमहामंदरगिरिस्स) इस संघरूप सुमेरुगिरिके [माहात्म्यको] (विणयपणओ) विनयसे विनम्र हुआ मैं (वंदामि) वंदन करता हूं॥ १७॥

मूल—गुणरयणुज्जलकडयं, सीलसुगंधितवमंडिउद्देसं।
सुयबारसंगसिहरं, संघमहामन्दरं वंदे॥ १८॥

छाया—गुणरत्नोज्ज्वलकटकं, शीलसुगन्धितपोमण्डितोद्देशं।
श्रुतद्वादशाङ्गशिखरं, संघमहामन्दरं वन्दे॥ १८॥

फिर मेरुकी कुछ बची हुई विशेषताओंको लेकर आचार्य संघको वन्दना करते हैं—

शब्दार्थ—(गुणरयणुज्जलकडयं) प्रशस्त गुणरूप उज्ज्वल रत्नमय कटक-मध्यभागवाले, (सीलसुगंधि तवमंडिउद्देसं) तथा शीलसे सुवासित व तपसे मण्डित उद्देश-पार्श्वभूमिवाले, (सुयबारसंगसिहरं) बारह अङ्गमय श्रुतही जिसके शिखर हैं, उस (संघमहामंदरं) संघरूप विशाल सुमेरुको (वंदे) वन्दन करता हूं॥ १८॥

मूल—नगर-रह-चक्क-पउमे, चंदे सूरे समुद्द मेरुम्मि।
जो उवमिज्जइ सययं, तं संघगुणायरं वंदे॥ १९॥

छाया—नगररथचक्रपद्मे, चन्द्रे सूरे समुद्रे मेरौ।
य उपमीयते सततं, तं संघगुणाकरं वन्दे॥ १९॥

शब्दार्थ—(नगर रह चक्क पउमे) नगर, रथ, चक्र, पद्म तथा (चंदे सूरे) चन्द्र व सूर्यके विषयमें और (समुद्दमेरुम्मि) समुद्र व मेरुमें (जो) जो संघ (सययं) सदा (उवमिज्जइ) उपमित किया जाता है, (गुणायरं) गुणोंके आकर (तं) उस संघमेरुको (वंदे) वन्दन करता हूं॥ १९॥

---

१ संघस्य सुमेरोरुपमा पाठैरेिवम् योजनीया।

संघकी स्तुति करके अब आवलीरूपसे तीर्थङ्करोंकी स्तुति करते हैं—

श्रीचोवीसजिनस्तुति

मूल—(वंदे) उसमं अजियं संभव,—मभिनंदण सुमइ सुप्पम सुपासं।
ससि पुप्फदंत सीयल, सिज्जंसं वासुपुज्जं च॥ २०॥

छाया—ऋषभमजितं सम्भव,—मभिनन्दनसुमतिसुपभसुपार्श्वम्।
शशिपुष्पदन्तशीतल,—श्रेयांसं वासुपूज्यञ्च॥ २०॥

शब्दार्थ—(उसमं) ऋषभदेवस्वामीको, (अजियं) अजितनाथजीको, (संभवं) सम्भवनाथजीको, (अभिनंदण सुमइ सुप्पमसुपासं) अभिनन्दनजी, सुमतिजी, सुपम अर्थात् पद्मप्रमजी और सुपार्श्वनाथजीको, (ससि पुप्फदंत सीयल सिज्जंसं) चन्द्रप्रभजी, पुष्पदन्तजी याने सुविधिजी, शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी (च) और (वासुपुज्जं) वासुपूज्यजीको नमन करता हूं॥२०॥

मूल—विमलमणंत य धम्मं, संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च।
मुनिसुव्वय नमि नेमिं, पासं तह वद्धमाणं च॥ २१॥

छाया—विमलमनन्तं च धर्मं, शान्तिं कुन्थुमरं च मल्लिं च।
मुनिसुव्रतनमिनेमिं, पार्श्वं तथा वर्द्धमानं च॥ २१॥

शब्दार्थ—(विमलं) विमलनाथजी, (अणंतं) अनन्तनाथजी, (य) और (धम्मं) धर्मनाथजी, (संतिं) शान्तिनाथजी, (कुंथुं) कुन्थुनाथजी (च) और (अरं) अरनाथजी, (मल्लिं) मल्लिनाथजी (च) और (मुणिसुव्वयनमिनेमिं) मुनिसुव्रतनाथजी, नमिनाथजी, व नेमिनाथजीको (तह) तथा (पासं) पार्श्वनाथजी (च) और (वद्धमाणं) वर्द्धमान-महावीर स्वामीजीको वंदन करता हूं॥ २१॥

अब गणधरावलीको कहते हैं—

मूल—पढमित्थ इंदभूई, बीए पुण होइ अग्गिभूइत्ति।
तइए य वाउभूई, तओ वियत्ते सुहम्मे य॥ २२॥

छाया—प्रथमोऽत्र इन्द्रभूतिर्द्वितीयः पुनर्भवत्यग्निभूतिरिति।
तृतीयश्च वायुभूतिस्ततो व्यक्तः सुधर्मा च॥ २२॥

शब्दार्थ—(पढमित्थ) यहाँ महावीरके शासनमें पहले गणधर (इंदभूई) इन्द्रभूति-गौतमस्वामी, (पुण) फिर (बीए) दूसरे (अग्गिभूइत्ति) अग्निभूति नामवाले (होइ) हैं, (य) और (तइए) तीसरे (वाउभूई) वायुभूति,

( तओ ) बाद [ चौथे ] ( वियत्ते ) व्यक्तस्वामी, और [ पांचवे ] ( सुहम्मे ) सुधर्मस्वामी हैं ॥ २२ ॥

मूल—मंडिअ मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलमाया य ।
मेयज्जे य पहासे, गणहरा हुंति वीरस्स ॥ २३ ॥

छाया—मण्डितमौर्यपुत्रा,—वकम्पितश्चैवाचलभ्राता च ।
मेतार्यश्च प्रभासो, गणधराः सन्ति वीरस्य ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—( मंडियमोरियपुत्ते- ) मण्डित व मौर्यपुत्र ( चेव ) और ऐसेही ( अकंपिए ) अकम्पित ( चेव ) और ( अयलमाया ) अचलभ्राता, ( मेयज्जे ) मेतार्यस्वामी ( य ) और ( पहासे ) प्रभासस्वामी-येसब- ( वीरस्स ) श्रीमहावीरस्वामीके ( गणहरा ) गणधर ( हुंति ) हैं ॥ २३ ॥

अब श्री जिनशासनकी स्तुति करते हैं—

मूल—निव्वुइ-पह-सासणयं, जयइ सया सव्वभाव-देसणयं ।
कुसमयमयनासणयं, जिणिंदवरवीरसासणयं ॥ २४ ॥

छाया—निर्वृतिपथशासनकं, जयति सदा सर्वभावदेशनकम् ।
कुसमय-मद-नाशनकं, जिनेन्द्रवरवीरशासनकम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—( निव्वुइपहसासणयं ) निर्वाण-रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गका शासक याने शासन करनेवाला, तथा ( सव्वभाव देसणयं ) संसारवर्ती सब पदार्थोंका सम्यग् वर्णन करनेवाला, एवं ( कुसमयमयनासणयं ) कुदर्शन-मिथ्यामतके मदको नष्ट करनेवाला ऐसा ( जिणिंदवर वीर सासणयं ) जिनेन्द्र-श्रेष्ठ श्रीमहावीरका शासन याने प्रवचन ( सया ) सदा ( जयइ ) जयवन्त हैं-सर्वोत्कृष्ट है ॥ २४ ॥

अब स्थविरावली कहते हैं—

मूल—सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं ।
पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥ २५ ॥

छाया—सुधर्माणमग्निवेश्यायनं, जम्बूनामानं च काश्यपम् ।
प्रभवं कात्यायनं वन्दे, वात्स्यं शय्यम्भवं तथा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—श्रीमहावीरके प्रथम पट्टधर ( अग्गिवेसाणं ) अग्निवेश्यायन-गोत्री ( सुहम्मं ) श्रीसुधर्मास्वामीको ( च ) और ( कासवं ) काश्यपगोत्री ( जंबूनामं ) जंबूनामक द्वितीय पट्टधर आचार्यको, ( तहा ) तथा ( कच्चायणं )

कात्यायनगोत्री ( पभवं ) प्रभवस्वामीको व ( वच्छं ) वत्सगोत्री ( सिज्जंभवं ) चतुर्थ आचार्य श्री शय्यंभवस्वामीको ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ २५ ॥

मूल—जसभद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं ।
भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं ॥ २६ ॥

छाया—यशोभद्रं तुङ्गिकं वन्दे, सम्भूतं चैव माढरम् ।
भद्रबाहुं च प्राचीनं, स्थूलभद्रं च गौतमम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—शय्यम्भव स्वामीके शिष्य ( तुंगियं ) तुंगिकगोत्री-[ व्याघ्रापत्यगोत्री ] ( जसभद्दं ) श्री यशोभद्रको ( चेव ) और इसी प्रकार यशोभद्रके शिष्य ( माढरं ) माठरगोत्री ( संभूयं ) संभूतविजयको, ( च ) और ( पाइन्नं ) प्राचीनगोत्री ( भद्दबाहुं ) भद्रबाहुको ( वंदे ) वन्दन करता हूं, ( च ) और सम्भूतविजयके शिष्य ( गोयमं ) गौतमगोत्री ( थूलभद्दं ) स्थूलभद्र आचार्यको भी नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥

मूल—एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च ।
तत्तो कोसियगोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वन्दे ॥ २७ ॥

छाया—एलापत्यसगोत्रं, वन्दे महागिरिं सुहस्तिनञ्च ।
ततः कौशिकगोत्रं, बहुलस्य सदृगूवयसं वन्दे ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—( एलावच्चसगोत्तं ) स्थूलभद्रके शिष्य एलापत्य-गोत्रवाले ( महागिरिं ) महागिरिको ( च ) और ( सुहत्थिं- ) सुहस्ती आचार्य वशिष्ठगोत्रीको ( वंदे ) वंदन करता हूं, [ यहाँ सुहस्तीसे सुस्थित-सुप्रतिबद्ध आदि क्रमसे एक आचार्यावली चलती है । इस विषयको दशाश्रुतस्कन्धके पर्युषित अध्ययन अर्थात् कल्पसूत्रसे जानना चाहिए । प्रस्तुत अध्ययनकी संकलना करनेवाले श्री देववाचकका उसमें सम्बन्ध नहीं होनेसे यहाँ महागिर्यावलिकाकाही उल्लेख किया गया है, महागिरि और सुहस्ती ये दोनों स्थूलभद्रके शिष्य हैं ] ( तत्तो ) सुहस्तीके बाद ( कोसियगोत्तं ) कौशिकगोत्री, ( बहुलस्स ) बहुल मुनिके ( सरिव्वयं ) समानवयवाले बलिस्सहको ( वंदे ) वन्दन करता हूं । अर्थात् महागिरि आचार्यके बहुल और बलिस्सह ये दो प्रधान शिष्य थे । ये दोनों यमल-एकसाथ पैदा होनेवाले सोदर भ्राता होनेसे सगोत्री थे, प्रवचनकी प्रधानतासे युगप्रधान श्री बलिस्सह आचार्यको नमस्कार किया जाता है ॥ २७ ॥

मूल—हारियगुत्तं साइं च, वंदिमो हारियं च सामज्जं ।
वंदे कोसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥ २८ ॥

छाया—हारीतगोत्रं स्वातिं च, वन्दे हारीतं च श्यामार्यम्।
वन्दे कौशिकगोत्रं, शाण्डिल्यमार्यजीतधरम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—फिर बलिस्सहके शिष्य-(हारीयगोत्तं) हारीतगोत्री (साइं) श्रीस्वाति आचार्यको (च) और स्वातिआचार्यके शिष्य (हारियं) हारीतगोत्री (सामज्जं) श्यामार्यको (वंदिमो) नमन करते हैं, तथा श्यामार्यके शिष्य (कोसियगोत्तं) कौशिकगोत्री (संडिल्लं) शाण्डिल्य आचार्यको तथा (अज्जजीयधरं) आर्यजीतधर नामके आचार्यको (वंदे) वंदन करता हूं, [वृत्तिकारने 'आर्य जीतधर' इन दो पदोंको शाण्डिल्यका विशेषण माना है, विशेषणका अर्थ इस प्रकार किया है-आर्य-पापोंसे दूर रहनेवाले, जीतधर-मर्यादावर्धक सूत्रोंको धारण करनेवाले, ऐसे शाण्डिल्यको वन्दन करता हूं, ऐसा मुख्य अर्थ किया और गौण अर्थसे मतान्तरमें आर्यजीतधर नामक दूसरे आचार्यको माना है] ॥ २८ ॥

मूल—तिसमुद्द-खायकित्तिं, दीवसमुद्देसु गहिय-पेयालं।
वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं ॥ २९ ॥

छाया—त्रिसमुद्रख्यातकीर्तिं, द्वीपसमुद्रेषु गृहीतपेयालम्।
वन्दे-आर्यसमुद्रम्, अक्षुभितसमुद्रगम्भीरम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—शाण्डिल्यके शिष्य-(तिसमुद्दखायकित्तिं) तीन समुद्र अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम इन तीनों दिशाओंमें स्थित एकही लवणसमुद्रके तीन विभागकी अपेक्षासे इन तीन समुद्रपर्यन्त प्रख्यात कीर्तिवाले और (दीव समुद्देसु गहिय पेयालं) विविध द्वीप-समुद्रोंमें प्रमाणको प्राप्त करनेवाले, अर्थात् द्वीपसागर प्रज्ञप्तिके विद्वान तथा (अक्खुभिय समुद्द गंभीरं) क्षोभरहित-स्थिर समुद्रकी तरह गम्भीर, ऐसे (अज्जसमुद्दं) आर्यसमुद्र नामक आचार्यको (वंदे) मैं वन्दन करता हूं ॥ २९ ॥

मूल—भणगं करगं झरगं, पभावगं णाणदंसणगुणाणं।
वंदामि अज्जमंगुं, सुयसागरपारगं धीरं ॥ ३० ॥

छाया—भाणकं कारकं ध्यातारं, प्रभावकं ज्ञानदर्शनगुणानाम्।
वन्दे-आर्यमंगुं, श्रुतसागरपारगं धीरम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—(भणगं) कालिक आदि सूत्रोंको सदा पढनेवाले, (करगं) सूत्रोक्त क्रियाकलापको करनेवाले तथा (झरगं) धर्मध्यान ध्यानेवाले, अतएव (णाणदंसण गुणाणं पभावगं) ज्ञान, दर्शन व चारित्र इन तीनोंके गुणोंको

१ पेयालमिति देशीशब्दः प्रमाणमित्यर्थः।

दिपानेवाले, तथा (सुयसागरपारगं) श्रुतरूप समुद्रके पारगामी व (धीरं) धीर [एवंगुणविशिष्ट] आर्यसमुद्र आचार्यके शिष्य (अज्जमंगुं) श्री आर्यमंगु आचार्यको (वंदामि) वन्दन करता हूं ॥ ३० ॥

मूल—*वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दगुत्तं च ।
तत्तो य अज्जवइरं, तव-नियम-गुणेहिं वइरसमं ॥ ३१ ॥

छाया—वन्दे–आर्यधर्मं, ततो वन्दे च भद्रगुप्तं च ।
ततश्चार्यवज्रं, तपोनियमगुणैर्वज्रसमम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—फिर–(अज्जधम्मं) श्री आर्यधर्माचार्यको (य) और (तत्तो) उसके बाद (भद्दगुत्तं) भद्रगुप्ताचार्यको (वंदामि) वन्दन करता हूं, (य) और (तत्तो) तदनन्तर (तव नियम गुणेहिं) तप नियम आदि गुणोंसे (वइरसमं) वज्रके समान बलशाली ऐसे (अज्जवइरं) आर्यवज्रस्वामीको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ३१ ॥

मूल—*वंदामि अज्जरक्खिय,–खवणे रक्खिय-चारित्तसव्वस्से ।
रयणकरंडगभूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥ ३२ ॥

छाया—वन्दे आर्यरक्षितक्षपणान्, रक्षितचारित्रसर्वस्वान् ।
रत्नकरण्डकभूतो,–ऽनुयोगो रक्षितो यैः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—(अज्जरक्खियखवणे) श्रीआर्यरक्षित तपस्विराजको (वंदामि) वन्दन करता हूं, जिन्होंने (रक्खिय चारित्तसव्वस्से) उस समयके सभी मुनिओंके अपने चारित्रसर्वस्व-संयमजीवनकी रक्षा की, तथा (जेहिं) जिन्होंने (रयणकरंडगभूओ) विचाररूपरत्नोंके करण्डक-पेटीके समान (अनुओगो) अनुयोगकी (रक्खिओ) रक्षा की थी ॥ ३२ ॥

तीसवीं गाथासे सम्बन्धित आर्यमंगुके शिष्य—

मूल—नाणम्मि दंसणम्मि य, तव–विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं ।
अज्जं नंदिलखमणं, सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥ ३३ ॥

छाया—ज्ञाने दर्शने च तपो–विनये नित्यकालमुद्युक्तम् ।
आर्यं नन्दिलक्षपणं, शिरसा वन्दे प्रसन्नमनसम् ॥ ३३ ॥

आर्यमंगुके शिष्य—

शब्दार्थ—(नाणंमि) ज्ञानमें, (दंसणंमि) दर्शन-सम्यक्त्वमें (य)

---

१ 'भइं' इति पाठान्तरम् आ० टी० । २ 'खमणे' इति पाठान्तरम् । *३१-३२ एतद्गाथायुग्मं पट्टावलीक्रमभङ्गभयादत्र ... ।

और ( तव विणए ) तपस्यामें व विनयमें ( निच्चकालं ) सर्वदा ( उज्जुत्तं ) तत्पर-प्रमादरहित, तथा ( पसन्नमणं ) रागद्वेषसे रहित होनेके कारण प्रसन्नचित्त ऐसे ( अज्जं-नंदिलखवणं ) आर्य नन्दिलक्षपणको ( सिरसा ) मस्तकसे ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ ३३ ॥

श्रीआर्य नान्दिलक्षपणके शिष्य—

मूल—वड्ढउ वायगवंसो, जसवंसो अज्जनागहत्थीणं ।
वागरणकरणभंगिय,—कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥ ३४ ॥

छाया—वर्द्धतां वाचकवंशो, यशोवंश आर्यनागहस्तिनाम् ।
व्याकरणकरणभाङ्गिक—कर्मप्रकृतिप्रधानानाम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—( वागरण ) व्याकरण—संस्कृत शब्दानुशासन अथवा प्रश्नव्याकरण, ( करण ) पिण्डविशुद्धि आदि, ( भंगिय ) भांगाओंकी विशेषतावाले, ( कम्मप्पयडी ) कर्मप्रकृति—श्रुतकी रचनासे या इनकी विशिष्टप्ररूपणा करनेमें ( पहाणाणं ) प्रधान ऐसे ( अज्जनागहत्थीणं ) आर्यनागहस्ती आचार्यका ( वायगवंसो ) वाचकवंश ( जसवंसो ) मूर्तिमान् यशोवंशकी तरह ( वड्ढउ ) वृद्धि पावे—वर्द्धमान हो ॥ ३४ ॥

आर्यनागहस्तीके शिष्य—

मूल—जच्चंजणधाउसमप्पहाणं, मुद्दियकुवलयनिहाणं ।
वड्ढउ वायगवंसो, रेवइनक्खत्तनामाणं ॥ ३५ ॥

छाया—जात्याञ्जनधातुसमप्रभाणां, मृद्वीकाकुवलयनिभानाम् ।
वर्द्धतां वाचकवंशो, रेवतिनक्षत्रनाम्नाम् ॥ ३५ ॥

( जच्चंजणधाउसमप्पहाणं ) जातिसम्पन्न अञ्जनधातुके समान शरीरकी कृष्णप्रभावाले, तथा ( मुद्दिय कुवलयनिहाणं ) पकी हुई द्राक्ष व नीलकमलके समान कान्तिवाले, ऐसे ( रेवइ नक्खत्तनामाणं ) रेवतिनक्षत्र नामक आचार्यका ( वायगवंसो ) वाचकवंश ( वड्ढउ ) वर्द्धमान हो ॥ ३५ ॥

रेवतिनक्षत्र आचार्यके शिष्य—

मूल—अयलपुरा णिक्खंते, कालियसुअ-आणुओगिए धीरे ।
बंभद्दीवगसीहे, वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥ ३६ ॥

छाया—अचलपुरान्निष्क्रान्तान्, कालिकश्रुताऽनुयोगिकान् धीरान् ।
ब्रह्मद्वीपिकसिंहान्, वाचकपदमुत्तमं प्राप्तान् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—( अयलपुरा णिक्खंते ) अचलपुरमें दीक्षा लेनेवाले, ( कालियसुय आणुओगिए ) कालिकश्रुतके अनुयोगमें नियोगवाले तथा ( धीरे )

धीर ( वायगपयमुत्तमं पत्ते ) तथा उत्तम वाचक पदको प्राप्त करनेवाले ऐसे ( बंभद्दीवगसीहे ) ब्रह्मद्वीपकी शाखासे उपलक्षित श्री सिंहाचार्यको ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ ३६ ॥

श्रीसिंहाचार्यके शिष्य—

मूल—जेसिं इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहंमि ।
बहुनयरनिग्गयजसे, ते वंदे खंदिलायरिए ॥ ३७ ॥

छाया—येषामयमनुयोगः, प्रचरत्यद्याप्यर्द्धभरते ।
बहुनगरनिर्गतयशसः, तान् वन्दे स्कन्दिलाचार्यान् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—( जेसिं ) जिनका ( इमो ) वर्तमानमें मिलनेवाला यह ( अणुओगो ) अनुयोग ( अज्जावि ) आजभी ( अड्ढभरहम्मि ) आधे भरतक्षेत्र-दक्षिण भरतमें ( पयरइ ) प्रचलित है ( बहु नयर निग्गयजसे ) बहुतसे नगरोंमें विस्तृत यशवाले ( ते ) उन ( खंदिलायरिए ) सिंह वाचकके शिष्य श्री स्कन्दिलाचार्यको ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ ३७ ॥

मूल—तत्तो हिमवंतमहंत,-विक्कमे धिइपरक्कममणंते ।
सज्झायमणंतधरे, हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥ ३८ ॥

छाया—ततो हिमवन्महाविक्रमान्, अनन्तधृतिपराक्रमान् ।
अनन्तस्वाध्यायधरान्, हिमवतो वन्दे शिरसा ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—( तत्तो ) स्कन्दिलाचार्यके बाद इनके शिष्य ( हिमवंत महंत विक्कमे ) हिमवान्की तरह बहुक्षेत्रव्यापी विहार करनेवाले ( धिइ परक्कम मणंते ) अपरिमित धैर्यप्रधान पराक्रमवाले तथा ( सज्झायमणंतधरे ) अर्थकी दृष्टिसे अनन्तस्वाध्यायको धरनेवाले, ऐसे ( हिमवंते ) श्री हिमवन्नामक आचार्यको ( सिरसा ) मस्तकसे ( वंदिमो ) वन्दन करता हूं ॥ ३८ ॥

मूल—कालियसुय-अणुओगस्स, धारए धारए य पुव्वाणं ।
हिमवंतखमासमणे, वंदे णागज्जुणायरिए ॥ ३९ ॥

छाया—कालिकश्रुताऽनुयोगस्य, धारकान् धारकांश्च पूर्वाणाम् ।
हिमवतः क्षमाश्रमणान्, वन्दे नागार्जुनाचार्यान् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—फिरभी उन्हींकी स्तुति करते हैं, जैसे-( कालियसुयअणुओगस्स ) कालिकशास्त्रसम्बन्धी अनुयोगके ( धारए ) धारक-धरनेवाले ( य ) और ( पुव्वाणं ) उत्पाद आदि पूर्वोंके ( धारए ) धारण करनेवाले इस प्रकारके गुणोंसे युक्त ऐसे ( हिमवंतखमासमणे ) श्रीहिमवन्तनामक क्षमाश्रम-

१ प्राकृतशैल्या-अनन्त शब्दस्य परनिपातो मकारस्त्वलाक्षणिकः । टी० । २ पूर्वागम्-इति जैनागमप्रसिद्धपूर्वशब्दस्य सर्वनामेतरस्य रूपम् ।

णको तथा इन्हींके शिष्य ( णागज्जुणायरिए ) नागार्जुनाचार्यको ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ ३९ ॥

मूल—मिउमद्दवसंपन्ने, आणुपुव्वि[1] वायगत्तणं पत्ते ।
ओहसुयसमायारे, नागज्जुणवायए वंदे ॥ ४० ॥

छाया—मृदुमार्दवसम्पन्नान्, आनुपूर्व्या वाचकत्वं प्राप्तान् ।
ओघश्रुतसमाचारान्(चारकान्), नागार्जुनवाचकान् वन्दे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—( मिउमद्दवसंपन्ने ) मृदु-मनोज्ञ अर्थात् भव्य जीवोंके सन्तोषकारक ऐसे मार्दव आदि भावोंसे युक्त, और ( आणुपुव्वि ) अवस्था व दीक्षा पर्यायसे ( वायगत्तणं पत्ते ) वाचकपदको पाए हुए, तथा ( ओहसुयसमायारे ) ओघश्रुत अर्थात् उत्सर्ग-विधि-मार्गका समाचरण करनेवाले, ऐसे गुणसे युक्त ( णागज्जुणवायए ) नागार्जुनवाचकको ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ ४० ॥

श्रीगोविन्द आचार्य और भूतदिन्न आचार्यकी स्तुति—

मूल—गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिंदाणं[2] ।
णिच्चं खंतिदयाणं, परूवणे दुल्लभिंदाणं[4] ॥ ४१ ॥
तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तवसंजमे अनिव्विण्णं ।
पंडियजणसम्माणं[5], वंदामो[6] संजमविहिण्णुं ॥ ४२ ॥

छाया—गोविन्देभ्योऽपि नमः, अनुयोगे विपुलधारणेन्द्रेभ्यः ।
नित्यं क्षान्तिदयानां, प्ररूपणे इन्द्रदुर्लभेभ्यः ॥ ४१ ॥
ततश्च भूतदिन्नं, नित्यं तपःसंयमेऽनिर्विण्णम् ।
पण्डितजनसंमान्यं, वन्दामहे संयमविधिज्ञम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—( अणुओगे विउल धारणिंदाणं ) अनुयोगकी विपुल धारणा रखनेवालोंमें इन्द्रके समान, (खंतिदयाणं) क्षमा, दया आदि गुणोंकी (परूवणे) प्ररूपणामें ( निच्चं ) सदा ( दुल्लभिंदाणं ) जो इन्द्रोंके भी दुर्लभ ऐसे ( गोविंदाणं पि ) श्रीगोविन्द नामक आचार्यको भी ( नमो ) नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

( य ) और ( तत्तो ) तदनन्तर ( तवसंजमे ) तपसंयमकी आराधनामें ( निच्चं ) सदा ( अनिव्विण्णं ) निर्वेद-ग्लानिसे रहित ( पंडियजणसम्माणं ) पण्डितजनसे संमाननीय तथा ( संजम विहिण्णुं ) संयमविधिके विशेष ज्ञानकार ऐसे ( भूयदिन्नं ) श्रीभूतदिन्न आचार्यको ( वंदामो ) वन्दन करते हैं ॥ ४२ ॥

---

१ 'पुव्वि', 'पुव्वी' इति पाठान्तरम्। २ 'धारिणदाण' इति १। ३ मुद्रिते पाठः। ३ 'जुयाण' इति पाठान्तरम्। ४ 'दुल्लभिंदाणि', इत्यपि पाठः। प्राकृतत्वादिन्द्रशब्दस्य परनिपातः। ५ सामण्णं-इति पाठः। ६ वंदामि-इति पाठान्तरम्।

मूल—वरकणगतवियचंपग,–विमउलवरकमलगब्भसरिवन्ने ।
भवियजणहिययदइए, दयागुणविसारए धीरे ॥ ४३ ॥
अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविह-सज्झाय-सुमुणियपहाणे ।
अणुओगिअवरवसभे, नाइलकुलवंसनंदिकरे ॥ ४४ ॥
भूयहियप्पगब्भे, वंदेहं भूयदिन्नमायरिए ।
भवभयवुच्छेयकरे, सीसे नागज्जुणरिसीणं ॥ ४५ ॥

छाया—वरतप्तकनकचम्पक,–विमुकुलवरकमलगर्भसदृग्वर्णान् ।
भविकजनहृदयदयितान्, दयागुणविशारदान् धीरान् ॥ ४३ ॥
अर्द्धभरतप्रधानान्, सुविज्ञातबहुविधस्वाध्यायप्रधानान् ।
अनुयोजितवरवृषभान्, नागेन्द्रकुलवंशनन्दिकरान् ॥ ४४ ॥
भूतहितप्रगल्भान्, वन्देऽहं भूतदिन्नाचार्यान् ।
भवभयव्युच्छेदकरान्, शिष्यान् नागार्जुनर्षीणाम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—( वर कणग तविय चंपग विमउल वर कमल गब्भ सरिवण्णे ) तपाया हुआ उत्तम सुवर्ण या सुनहरी रंगवाला प्रधान चम्पाका फूल, तथा खिलेहुए उत्तम कमलके गर्भ इनके समान पीतवर्णवाले और ( भवियजण हियय दइए ) भव्य जीवोंके चित्तमें प्रेम उत्पन्न करनेवाले याने जो वल्लभ हैं तथा ( दयागुण विसारए ) लोगोंके मनमें दयागुणको उत्पन्न करनेमें परम निपुण, व ( धीरे ) जो धीर हैं ॥ ४३ ॥

( अड्ढभरहप्पहाणे ) उस कालकी अपेक्षासे दक्षिणार्द्धभरतके युगप्रधान और ( बहुविहसज्झाय सुमुणियपहाणे ) आचाराङ्ग आदि बहुविध स्वाध्यायके जो अच्छीतरह जानकार हैं, ( अणुओगियवरवसभे ) अनेकवर वृषभ-श्रेष्ठ साधुओंको स्वाध्याय वैयावृत्य आदि कार्योंमें लगानेवाले, तथा ( नाइल कुलवंस नंदिकरे ) नागेन्द्रकुलनामक वंशको जो प्रसन्न या वर्द्धमान करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥

फिर ( भूयहियप्पगब्भे ) प्राणिमात्रके हितमें प्रगल्भ अर्थात् निर्भीकतासे उपदेशपूर्वक जो प्राणिहितको करनेवाले हैं, तथा ( भवभयवुच्छेयकरे ) संसारके भयको नष्ट करनेवाले हैं, [ इस प्रकारके गुणोंसे विशिष्ट ] ऐसे ( नागज्जुणरिसीणं ) श्रीनागार्जुनमहर्षिके ( सीसे ) शिष्य ( भूयदिन्नमायरिए ) श्री भूतदिन्न नामके आचार्यको ( अहं ) मैं ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ ४५ ॥

मूल—सुमुणिय–निच्चानिच्चं, सुमुणिय–सुत्तत्थधारयं वंदे ।
सब्भावुब्भावणया, तच्चं लोहिच्चणामाणं ॥ ४६ ॥

---

१ 'विम्ब' इति हस्तलिखिते पाठः । २ 'भूयहियप्पगब्भे' इति हस्तलिखिते पाठः । 'भव्वूविव' इति मल० हि० टीकायाम् । ३ शिष्यं–इति पाठान्तरम् । ४ वंदेहं भूयदिन्नं मन्दपुष्पगन्धं–इति हस्तलिखिते पाठः ।

छाया—सुज्ञातनित्याऽनित्यं, सुज्ञातसूत्रार्थधारकं वन्दे ।
सद्भावोद्भावनया, तथ्यं लौहित्यनामानम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—( सुमुणिय निच्चानिच्चं ) अच्छीतरह नित्य अनित्यरूपसे वस्तुको जाननेवाले, ( सुमुणिय सुत्तत्थधारयं ) सम्यक् समझे हुए सूत्रार्थको धारण करनेवाले ( सब्भावुब्भावणया तत्थं ) और यथावस्थित वर्तमान भावोंके प्रकाशनमें अविसंवादी याने वस्तुतत्त्वोंका सत्य प्रतिपादन करनेवाले ऐसे उन ( लोहिच्चणामाणं ) श्रीभूतदिन्न आचार्यके शिष्य लौहित्यनामक आचार्यको ( वंदे ) वन्दन करता हूं ॥ ४६ ॥

मूल—अत्थमहत्थक्खाणिं, सुसमणवक्खाणकहणनिव्वाणिं ।
पयईए महुरवाणिं, पयओ पणमामि दूसगणिं ॥ ४७ ॥

छाया—अर्थमहार्थखनिं, सुश्रमणव्याख्यानकथननिर्वृत्तिम् ।
प्रकृत्या मधुरवाणीकं, प्रयतः प्रणमामि दूष्यगणिनम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—( अत्थमहत्थखाणिं ) जो अर्थ व महार्थकी खानकी तरह खान याने भाषा विभाषा वार्तिक आदि भेदोंसे अनुयोगविधिमें अत्यन्त कुशल हैं, तथा ( सुसमण वक्खाण कहण निव्वाणिं ) मूलोत्तर गुणसम्पन्न सुसाधुओंके लिये अपूर्व शास्त्रार्थका व्याख्यान करने व पूछे हुए विषयोंको कहनेमें जो समाधि अनुभव करनेवाले हैं, उन ( पयईए ) स्वभावसे (महुरवाणिं) मधुरभाषी ( दूसगणिं ) श्री दूष्यगणी आचार्यको ( पयओ ) सम्मानपूर्वक ( पणमामि ) प्रणाम करता हूं ॥ ४७ ॥

मूल—तवनियमसच्चसंजम,-विणयज्जवखंतिमद्दवरयाणं ।
सीलगुणगद्दियाणं, अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥ ४८ ॥

छाया—तपोनियमसत्यसंयम,-विनयार्जवशान्तिमार्दवरतानाम् ।
शीलगुणगर्दितानाम्, अनुयोगयुगप्रधानानाम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—( तवनियम सच्च संजम विणयज्जव खंतिमद्दवरयाणं ) तप, नियम, सत्य, संयम, विनय, आर्जव-सरलभाव, शान्ति, और मार्दव-कोमलता आदि गुणोंमें रत-लगे रहनेवाले तथा ( सीलगुणगद्दियाणं ) शीलगुणोंसे प्रख्यात होनेवाले, ( अणुओग जुगप्पहाणाणं ) अनुयोग करनेमें उस समयकी अपेक्षासे जो युगप्रधान हैं ॥ ४८ ॥

मूल—सुकुमालकोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे ।
पाए पावयणीणं, पडिच्छयसएहिं पणिवइए ॥ ४९ ॥

छाया–सुकुमारकोमलतलान्, तेषां प्रणमामि लक्षणप्रशस्तान् ।
पादान् प्रावचनिकानां, प्रातीच्छिकशतैः प्रणिपतितान् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—( पावयणीणं ) प्रधान प्रवचन करनेवाले (तेसिं) पूर्वोक्त गुणवाले उन दूष्यगणीके ( लक्खणपसत्थे ) लक्षणोंसे प्रशस्त–उत्तम, व ( सुकुमाल कोमलतले ) मृदु और सुन्दर तल–तलवे–वाले ( पाए ) चरणोंको ( पणमामि ) प्रणाम करता हूं; जो पैर ( पडिच्छय सयएहिं ) सैकडों शिष्योंसे ( पणिवइए ) नमस्कार पाए हुए हैं ॥ ४९ ॥

मूल—जे अन्ने भगवंते, कालियसुय-आणुओगिए धीरे ।
ते पणमिऊण सिरसा, नाणस्स परूवणं वोच्छं ॥ ५० ॥

छाया–येऽन्ये भगवन्तः, कालिकश्रुतानुयोगिनो धीराः ।
तान् प्रणम्य शिरसा, ज्ञानस्य प्ररूपणां वक्ष्ये ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—( अन्ने ) स्तुतिके विषय हुए आचार्योंके सिवाय भी ( जे ) जो ( कालियसुय आणुओगिए ) कालिकशास्त्रके अनुयोगवाले ( धीरे ) धीर ( भगवंते ) विशेषश्रुतधारी आचार्य भगवान् हैं, ( ते ) उनको ( सिरसा ) मस्तकसे ( पणमिऊण ) प्रणाम करके, ( नाणस्स ) ज्ञानकी ( परूवणं ) प्ररूपणाको ( वोच्छं ) कहूंगा ॥ ५० ॥

इति स्थविरावली समाप्ता ।

श्रीदेवर्द्धिगणिविरचिताऽर्हदावलिकाऽपि सम्पूर्णा ।

---

१ ज्ञानप्राप्तिके लिये जो शिष्य गुरुकी आज्ञासे दूसरे गच्छमें जाकर वहांके अनुयोगाचार्यकी स्वीकृतिसे उनकी इच्छानुसार रहते हैं, उनको प्रातीच्छिक कहते हैं । ( सम्पादक )

२ उक्तासु पञ्चाशत्संख्यासु गाथासु १४।१५।१६।१७।३१।४८।४९ संख्यका गाथा चूर्णौ हारिभद्रीयवृत्त्योर्मलयगिरिवृत्तौ च न व्याख्याताः, कतिपयप्रतिष्वपि न सन्ति, परञ्च हस्तलिखिते सावचूरिनिर्मितपुस्तिके पूज्यश्रीअमोलकर्षिसम्पादिते च विद्यन्ते, आवश्यकनिर्युक्तिहारिभद्रीयवृत्तौ च मन्यन्ते । मीनाक्षीपुरि [illegible] संलभ्यन्ते, इमिहासैरप्यङ्गीक्रियन्ते । अतश्च पुरातनाचार्याणां परम्परयाऽऽसां गाथानां प्रामाण्यं विद्यते विशेषो निर्णयो विधेयः । ( सम्पादक )

# अथ नन्दीसूत्रम्



सच्छायं



सभाषार्टीकं प्रारभ्यते



अनुवादकका मङ्गलाचरण—  श्रोताओंके लिये १४ दृष्टान्त.

जगमें कषायोंपर विजयकर, केवली जो बनगए,
परमार्थ जिनवाणी बना, सर्वार्थहित जो करगए।
उन तीर्थपतिको नमन कर, गुरुभक्तिको मनमें धरूं,
भाषार्थ नन्दीसूत्रका, चूर्ण्यादि आश्रयसे करूं ॥ १ ॥

मङ्गलके हेतु अर्हत् आदि स्तुतिरूपका आवलिका कहचुके, अब नन्दीसूत्रके कथित अर्थोंको ग्रहण करनेमें योग्य श्रोता कौन? तथा कैसी परिषद् योग्य होती है, इस इलिये पहले १४ दृष्टान्तोंसे श्रोताके अधिकारको कहते हैं—

मूल—सेल घण कुडग चालिणि, परिपुण्णग हंस महिस–मेसे य।
मसग जलूग बिराली, जाहग गो भेरी आभीरी ॥

छाया–शैल–घन–कुटक–चालनी,–परिपूर्णक–हंस–महिष–मेषाश्च।
मशक–जलौक–बिडाली,–जाहक–गो–भेर्याऽऽभीर्यः ॥

टीका—१ शैल–चिकना गोल पत्थर–मुद्गशैल, और घन–पुष्करावर्त मेघ, २ कुडग–घडा, ३ चालनी, ४ परिपूर्णक, ५ हंस, ६ महिष, ७ मेष, ८ मशक, ९ जलौका, १० और बिडाली, ११ जाहक, १२ गौ, १३ भेरी, तथा १४ आभीरी इनके समान श्रोता होते हैं।

श्रोताके लिये शैल आदिके दृष्टान्त—

१ सेल–किसी समय मुद्गशैल और पुष्करावर्त महामेघमें विवाद पैदा हुआ, मुद्गशैल बोलने लगा कि मुझे कोई नहीं भेदा सकता। यदि

तुम मुझे तिलतुषमात्र भी खण्डित करसको या गीला भी करसको तो तुम्हारा पुष्करावर्त नाम सच्चा समझूं। पुष्कर मेघ बोला-अरे तू हमारी एक धारा भी नहीं सह सकेगा, यदि हमारे धारा-पातोंके सामने तू टिक गया तो मैं भी समझूंगा कि तू सच्चा मुद्गशैल है। ऐसा कहकर मेघ मूसलधार वरसने लगा और लगातार ७ दिनोंतक वरसकर सोचा कि अब तो शैल नष्ट होगया होगा, ऐसा समझकर वर्षा बन्द करदी और देखने लगा तो मुद्गशैल अधिक चाकचिक्ययुक्त दिखपडा, वह मेघको देखतेही बोला-'क्यों जी! तुम्हारा बल पूरा हुआ या नहीं' तुम तो मुझे गलाते थे?' मेघ सुनके लज्जित हो चला गया। इसीप्रकार मुद्गशैलके समान अयोग्य श्रोता-शिष्यको उपदेश(शिक्षा) देते हुए अतिशयज्ञानी-वचन-सम्पत्तियुक्त आचार्यको भी लज्जित एव हताश होना पडता है। जैसे चिकना गोल पत्थर पुष्करावर्त मेघके सात अहोरात्र वरसनेपर भी नहीं भीजता, वैसे प्रयत्न पूर्वक अतिशय ज्ञानीके किये गये उपदेशसे भी जिसके हृदयपर असर नहीं होता, वह शैलसम श्रोता अयोग्य है। प्रतिपक्षमें-जैसे कृष्ण मिट्टी अपने उपर वरसे हुए पानीको वाहर नहीं जाने देती वैसे योग्य श्रोता बहुश्रुत आचार्यके उपदेशको व्यर्थ नहीं जाने देते किन्तु उसे धारण करलेते हैं। ऐसे श्रोता योग्य होते है।

२ कुडग-कुट-घडा-ये चार प्रकारके होते हैं-(१) टूटा गरदनवाला, (२) बाजूमे एक तरफसे फूटा हुआ, (३) नीचेसे फूटा, (४) न टूटा न फूटा। जैसे-किनारपर फूटे हुए घडेम थोडा-कुछ कम पानी रहता है, बीचसे फूटे हुए घडेमें पहलेसे थोडा पानी कम रहता है, नीचेसे फूटे हुए घडेमें कुछ भी पानी नहीं रहता और छिद्ररहित घडेमें सब जल ठहरता है, ऐसेही (१) श्रोता कुछ कम धारण करता, (२) बहुत थोड़ा धारण करता, (३) कुछ भी नहीं धारण करता, (४) सुना हुआ सब धारण कर रखता, यही श्रोता पूर्ण योग्य है, और जो कुछ भी धारण नहीं करता वह पूर्ण अयोग्य है, बांकी दो देशत शास्त्रश्रवणम योग्य हैं, घटका दृष्टान्त दूसरे प्रकारसे भी है, जैसे-एक भावित दूसरा अभावित। इसमें जो भावित है, उसके भी दो भेद हैं-एक प्रशस्त भावित और दूसरा अप्रशस्त भावित। पुष्प कर्पूर वगैरह-से जो भावित है वह प्रशस्त भावित कहलाता है, तथा मदिरा तैल आदिसे जो भावित है, वह अप्रशस्त भावित है। प्रशस्त भावित भी वाम्य और अवाम्य भेदसे दो तरहका होता है-जो घडे, रूप और गन्ध आदिसे बदलाये जा सकें वे वाम्य और जो नहीं बदलाये जासके वे अवाम्य हैं, इनम प्रशस्त भावित अवाम्य और अप्रशस्त भावित वाम्य घडोंकी तरहके श्रोता योग्य हैं अर्थात् सम्यक् तत्त्वकी श्रुतिसे भावित होकर जो स्थिर विचारवाले हैं और कुश्रुतिके उपदेशसे भावित होकर भी जो वाम्य-परिवर्त्तनीय हैं, ये दोनों प्रकारके श्रोता योग्य हैं।

३ चालिणि-चालनी-जैसे चालनी एक बाजूसे पानी लेकर दूसरी बाजूसे निकाल देती है, ऐसे जो आचार्यके उपदेशको कुछ भी ध्यानमें नहीं रखता वह चालनीके समान श्रोता भी शास्त्रश्रवणमें अयोग्य है।

चालनीके प्रतिपक्षमें-जैसे तापसका कमण्डलु विन्दुमात्र भी जल नहीं गिरने देती ऐसे जो श्रोता उपदेशके तत्त्वको कुछ भी नहीं छोडता वह शास्त्रश्रवणमें योग्य है।

४ परिपुण्णग-परिपूर्णक (घृत आदि छाननेका तृणमय साधन) इसमें जैसे सारसार निकलजाता व मल ठहरता है ऐसे जो श्रोता गुणोंको निकालकर दोषोंको रखता है वह भी शास्त्रश्रवणमें अयोग्य है। इसके प्रतिपक्षमें-

५ हंस-जैसे हंस मिले हुए दूध व पानीमेंसे पानीको अलगकर दूधही पीता है ऐसे जो शिष्य दोषोंको छोडकर गुण ग्रहण करता है वह श्रोता उपदेशश्रवणके योग्य है।

६ महिस-महिष-जैसे जलाशयमें पानी पीनेको गया हुआ महिस-भैंसा पानीको डुलाकर-मलिन बनाके न तो खुद स्वच्छ जल पीता और न दूसरेकोही पीने देता है, ऐसे जो शिष्य अनेक तरहके कोलाहलद्वारा न तो खुद अच्छीतरह शास्त्रोपदेशको सुनता और न दुसरोंकोही सुनने देता वह शास्त्रश्रवणके अयोग्य है। इसके प्रतिपक्षमें-

७ मेष (मेढ)-जैसे मेढ भीके खुर डुबे उतने पानीमें भी अपने घुटने टेक, पानीको वगैर मलिन किये हुए खुद इच्छाभर पी लेती है तथा दूसरोंको भी पीने देती है, ऐसे जो श्रोता शान्तभावसे स्वयं भी शास्त्र-उपदेश सुनता तथा दूसरोंको भी सुनने देता है वह शास्त्रग्रहणके योग्य है।

८ मसग-मशक-मच्छर-डांस-जैसे मच्छर शरीरपर बैठतेही दुःख पैदा करता है ऐसे जो श्रोता आचार्यको उद्वेग व कष्ट पहुँचाता है वह भी उपदेशके लिये अयोग्य होनेसे मशककी तरह हटानेयोग्य है। प्रतिपक्षमें-

९ जलूगा-जलौका (जौंक)-जैसे जलौका विना कष्ट पहुँचाये खराब रक्त पी लेती है ऐसे जो श्रोता आचार्यको विना कष्ट पहुँचाये शास्त्रवाणीका पान करते हैं वे योग्य हैं।

१० विराली-बिडाली (मार्जारी)-जैसे मार्जारी भाजनसे नीचे गिराके धूलयुक्त दूधको पीती है ऐसे जो श्रोता अहंकारवश आचार्यके पास उपदेशामृतका पान नहीं करके ऊठकर जाते हुए श्रोताओंके परस्पर संभाषणसे निकले हुए वचनोंको सुनता है, वह भी उपदेशदानके अयोग्य है। प्रतिपक्षमें-

११ जाहग-जाहक (उन्दिरकी जातिका एक जन्तुविशेष)-जैसे जाहक भाजनमेंसे थोडा २ दूध पीकर बाजूके भागको चाटता है और फिर पीता है

ऐसेही जो श्रोता पूर्वश्रुत उपदेशको मननकर फिर पूछता है किन्तु गुरुको खिन्न नहीं करता वह उपदेशदानके योग्य है।

१२ गो-गौ (गाय)-जैसे किसी गृहस्थने चार ब्राम्हणोंको एक गाय दानमें दी, उसको वे लोग एक १ दिन क्रमशः दूहने लगे तथा उसको खिलानेके समयमें ऐसा विचार करने लगे कि कल तो इसका दोहन दूसरा करेगा फिर आज मैं इसका पोषण क्यों करूं? इस विचारसे चारोंने उसको खिलाना छोड दिया। नतीजा यह हुआ कि कुछही दिनोंके बाद भूखसे पीडित हो गाय मरगयी, वे चारों ब्राम्हण लोगोंमें निन्दाके पात्र हुए तथा साथही गाय और दूधसे भी उनको हाथ धोना पड़ा। इसीप्रकार जो शिष्य आचार्यसे श्रुतग्रहण तो करता है किन्तु सेवा-शुश्रूषाके समय यह समझता है कि जिनको अभी आचार्यसे विशेष लाभ लेना है, वे सेवा करें, मैं क्यों करूं? ऐसा शिष्य बहुत समयतक आचार्यसे लाभ नहीं ले सकता। स्वार्थभावप्रधान होनेसे इस प्रकारका शिष्य भी शास्त्रग्रहणके विषयमें अयोग्य होता है। इसके विपरीत निस्स्वार्थ बुद्धिसे आचार्यकी सेवा-भक्ति करनेवाला शिष्य आचार्यकी भीरोगता-समाधिसे विशेषरूपमें श्रुतज्ञानकी प्राप्ति करता है और शास्त्रग्रहणमें योग्य अधिकारी होता है।

१३ भेरी-भेरी-श्रीकृष्णके गुणग्राहीपनकी परीक्षासे प्रसन्न होकर किसी देवने उनको अशिवोपशामक-विघ्ननिवारक एक भेरी दी, जिसके बजानेपर जहाँ १ उसके शब्द सुनपडे, वहाँ १ छमासपर्यन्त किसीको कोई रोग नहीं होता, तथा पहलेका हुआ रोग नष्ट हो जाता, इसप्रकार दिव्य प्रभावयुक्त भेरीकी बात सुनकर दूरदूरसे रोगी आने लगे। एक समय मस्तककी वेदनासे व्याकुल एक धनी यहाँ चला आया, उसको वैद्यने गोशीर्षचन्दन उपचारमें बताया जो कहीं भी न मिला। भेरी छमासमें बजायी जाती थी, मगर उसको तो एक दिन भी बिताना कठिन था। ऐसी दशामें उसने भेरीरक्षक पुरुषको गुप्तरूपसे बहुमूल्य पुरस्कार देकर भेरीका कुछ खण्ड (टुकडा) प्राप्त करलिया। भेरीरक्षकने उस टूटे हुए भागपर दूसरा टुकडा लगा दिया। इस प्रकार अन्य १ खण्ड देते हुए वह भेरी कन्थासी बन गई। इससे उसका वह गंभीर घोष नहीं होता और रोग भी शान्त नहीं होते। लोगोंमें बढे हुए रोगोंको जानकर व भेरीका पहले जैसा शब्द नहीं सुनकर श्रीकृष्णने उसका निरीक्षण किया जब पता चला कि भेरी तो छिन्नभिन्न कन्थासम होगई है, तब आवाज कहाँसे आवे? इससे रुष्ट होकर श्रीकृष्णने पहले रक्षकको हटाकर उसके बदलमें दूसरेको नियुक्त किया तथा अष्टम तपकी आराधनासे नवीन भेरी प्राप्त की। जैसे वह भेरीरक्षक भेरीको खंडित करनेसे हटा दिया गया, और छिन्नभिन्न कन्था बनकर भेरी भी प्रभावशून्य बनगई ऐसे जो शिष्य जिनवाणीको खण्डितकर ग्रन्थोंके वाक्य मिलाकर कन्था बनादेता है, वह भी शास्त्रज्ञानमें अयोग्य होनेसे आचार्यके

द्वारा हटा दिया जाता है; प्रतिपक्षमें-जैसे दूसरे भेरीरक्षकने अच्छीतरह भेरीका रक्षण किया, जिससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उसका बहुत सन्मान बढाया व वंशपरम्परातक रह सके, ऐसी जीविका चालू करदी। ऐसे जो शिष्य जिनवाणीका रक्षण करते हैं, वे आचार्यसे सन्मान पाकर जन्मान्तरमें भी सुखके भागी बनते हैं।

१४ आभीरी-आभीरी-जैसे एक आभीरी अपने पतिके साथ नगरमें घी बेचनेको गई। गांवके अन्य आभीर भी अपनी २ गाडी लेकर घी बेचने और कुछ सामान लेनेको साथ आये थे। नगरके बाजारमें आकर आभीरने गाडीपरसे घडे उतारने शुरू किये और आभीरी नीचे लेने लगी, दोनोंकी असावधानीसे एकाएक एक घडा गिरगया, जिससे कुछ घी जमीनपर गिर पडा, इसपर दोनों झगडने लगे, आभीर बोला कि तूने अच्छीतरह घडा नहीं पकडा छोडदिया, आभीरी बोलने लगी कि मैं तो पकडनेपरही थी कि तुमने छोडदिया इसीसे गिरगया। इसतरह दोनों वाग्विवाद करते रहे, तबतक गिरे हुए घडेका घी कुत्ते चट करगये ओर दूसरे २ आभीर घी बेचकर अपने २ गांव चले आये। आखिर शामको उन दोनोंने भी बचे हुए घीको बेचा तथा रात हो जानेपर घरकी ओर चले, रास्तेमें चोरोंने घेरलियाऔर साथके पैसे लूट। लिये इसप्रकार घी भी गया और पैसे भी खोये, प्रतिपक्षमें-दूसरी आभीरी जब नगरमें घी बेचनेको पतिके साथ गई तथा असावधानीसे घी गिरगया तो बोली-पतिदेव ! तुम्हारा कोई दोष नहीं, मैने अच्छीतरह घडा नहीं पकडा, इससे गिरगया अत क्षमा करो, इसप्रकार शान्तभावसे पतिको संतुष्ट कर शीघ्रही गिरे हुए घीको व साथ साथ घडेको सम्हालने लगी और उष्ण पानीसे बालूको तपाकर बहुत कुछ घी भी निकाल लिया तथा बेचकर सबके साथ गांव भी चली गई। इसीप्रकार जो शिष्य सूत्रार्थको अच्छीतरह ग्रहण किये विना आचार्यके कहनेपर कलह करने लगता है वह भी श्रुतज्ञानरूप घीको खो बैठता है अतएव अयोग्य है। विपरीत-जो सूत्रार्थके ग्रहणमें चूक हो जानेपर आचार्यसे प्रेरणा पाया हुआ अपनी चूक स्वीकार करके क्षमा चाहलेता है, वह आचार्यको सन्तुष्ट कर सूत्रार्थके लाभको प्राप्त करता है इससे वह योग्य कहा जाता है।

"श्रोताओंके समूहको सभा कहते हैं, वह सभा कितनी प्रकारकी है। इसको दिखाते हैं--

मूल—सा समासओ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जाणिया, अजाणिया, दुव्वियड्ढा । जाणिया जहा–

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टन्ति इह गुरुगुणसमिद्धा ।
दोसे अ विवज्जंती, तं जाणसु जाणियं परिसं ॥ ५२ ॥

अजाणिया जहा–

जा होइ पगइमहुरा, मियछावय-सीह- कुक्कुडयभूआ ।
रयणमिव असंठविआ, अजाणिया सा भवे परिसा ॥ ५३ ॥
दुव्विअड्ढा जहा-
न य कत्थइ निम्माओ, न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं ।
वत्थिव्व वायपुण्णो, फुट्टइ गामिल्लय विअड्ढो ॥ ५४ ॥

छाया-सा समासतस्त्रिविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-ज्ञायिका, अज्ञायिका, दुर्विदग्धा । ज्ञायिका [ नाम ] यथा-
क्षीरमिव यथा हंसाः, ये घुट्टन्ति-इह गुरुगुणसमृद्धाः ।
दोषाँश्च विवर्जयन्ती, तां जानीहि ज्ञायिकां(का) परिषदम्(द्) ॥५२॥
अज्ञायिका यथा-"
या भवति प्रकृतिमधुरा, मृगसिंहकुर्कुटशावकभूता ।
रत्नमिवाऽसंस्थापिता, अज्ञायिका सा भवेव पर्षद् ॥ ५३ ॥
दुर्विदग्धा यथा-
न च कुत्राऽपि निर्मातः, न च पृच्छति परिभवस्य दोषेण ।
वस्तिरिव वातपूर्णः, स्फुटति ग्रामेयको विदग्धः ॥ ५४ ॥

टीका-यह पर्षद्-सभा संक्षेपमें तीन प्रकारकी है जैसे-ज्ञायिका, अज्ञायिका, व दुर्विदग्धा । (१) ज्ञायिका-विज्ञसभा, जैसे-उत्तम हंस पानीको छोडकर जैसे दूधका पान करते हैं वैसे जो गुणसम्पन्न पुरुष गुणोंको ग्रहण करते और दोषोंको छोडते हैं उनको यहाँ पर्षद्के प्रकरणमें ज्ञायिका पर्षद् समझो । (२) अज्ञायिका जैसे-जो श्रोता मृग सिंह और कुर्कुटके बच्चोंके समान प्रकृतिसे भोले-कोमल होते हैं अर्थात् मृग आदिके बच्चोंको जिसप्रकार भद्र या क्रूर जैसा बनाना चाहें इच्छानुसार बना सकते हैं तथा असंस्थापित रत्न जिसप्रकार जहाँ चाहे विठा सकते हैं उसीप्रकार जो किसी भी मार्गमें लगाई जा सके वह अज्ञायिका सभा है । स्पष्टीकरण-जो कुमार्गमें नहीं लगे और सन्मार्गके तत्त्वसे भी अनभिज्ञ-अनजान हैं वैसे श्रोताओंको विना कष्टके समझाया जा सकता है । (३) दुर्विदग्धा सभा जैसे-कोई ग्रामीण पंडित किसी भी विषयमें या शास्त्रमें विद्वत्ता नहीं रखता और न अनादरके खयालसे किसी विद्वान्कोही कुछ पूछता है किन्तु केवल वायुसे पूरित मशकके समान लोगोंसे अपने पण्डितपनके प्रवादको सुनकर मानो पेट फूटरहा हो इसतरह जो फूला हुआ रहता है, ऐसे लोगोंके समूहको दुर्विदग्धा सभा कहते हैं । इति ।

१ परिपूर्णपर्षदोऽस्मम् ।

सूत्रम्-[ से किं तं नाणं ? ] नाणं पंचविहं पन्नत्तं, तंजहा-आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मण-पज्जवनाणं, केवलनाणं ॥ सू. १ ॥

छाया-[ अथ किं तज्ज्ञानं ? ] ज्ञानं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-१ आभिनिबोधिकज्ञानं, २ श्रुतज्ञानं, ३ अवधिज्ञानं, ४ मनःपर्य्यवज्ञानं, ५ केवलज्ञानम् ॥ सू. १ ॥

टीका--[ शिष्य-भगवन्! यह ज्ञान कौनसा है ?] ज्ञान पांच प्रकारका है, जैसे--१ आभिनिबोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मनःपर्य्यवज्ञान, और ५ केवलज्ञान ॥ सू. १ ॥

मूल—तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-पच्चक्खं च परोक्खं च ॥ सू. २ ॥

छाया-तत्समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च ॥सू. २॥

टीका—इसप्रकार पांच भेदवाला भी यह ज्ञान संक्षेपमें दो प्रकारका है, जैसे-१ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष ॥ सू. २ ॥

मूल—से किं तं पच्चक्खं ? पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-इंदियपच्चक्खं, नोइंदियपच्चक्खं च ॥ सू. ३ ॥

छाया-अथ किं तत्प्रत्यक्षं ? प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-इन्द्रियप्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षञ्च ॥ सू. ३ ॥

टीका—शि०-उस प्रत्यक्षका क्या स्वरूप है ? उ०-प्रत्यक्षके दो भेद हैं, जैसे-इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष ॥ सू. ३ ॥

मूल—से किं तं इंदियपच्चक्खं ? इंदियपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं, तंजहा-१ सोइंदियपच्चक्खं, २ चक्खिंदियपच्चक्खं, ३ घाणिंदियपच्चक्खं, ४ जिब्भिंदियपच्चक्खं, ५ फासिंदियपच्चक्खं, से त्तं इंदियपच्चक्खं ॥ सू. ४ ॥

छाया-अथ किं तदिन्द्रियप्रत्यक्षम् ? इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-(१) श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं, (२) चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्षं, (३) घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्षं, (४) जिह्वेन्द्रियप्रत्यक्षं, (५) स्पर्शेन्द्रियप्रत्यक्षं, तदेतद् इन्द्रियप्रत्यक्षम् ॥ सू. ४ ॥

टीका—शि०-यह इन्द्रियप्रत्यक्ष कितने प्रकारका है? उ-इन्द्रियप्रत्यक्ष पांच प्रकारका है, जैसे—श्रुत-इन्द्रिय-कर्णसे होनेवाला ज्ञान-श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष (१), आंखसे होनेवाला ज्ञान-चक्षुरिन्द्रिय-प्रत्यक्ष (२), नाकसे होनेवाला ज्ञान-घ्राणेन्द्रिय-प्रत्यक्ष (३), जीभसे होनेवाला ज्ञान-जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष (४), त्वचासे होनेवाला ज्ञान-स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष (५), इसप्रकार यह इन्द्रियप्रत्यक्ष हुआ ॥ सू. ४ ॥

मूल—से किं तं नोइंदियपच्चक्खं? नोइंदियपच्चक्खं तिविहं पण्णत्तं, तंजहा—ओहिनाणपच्चक्खं (१), मणपज्जवनाणपच्चक्खं (२), केवलनाणपच्चक्खं (३) ॥ सू. ५ ॥

छाया—अथ किं तन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं? नोइन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अवधिज्ञानप्रत्यक्षं (१), मनःपर्य्यवज्ञानप्रत्यक्षं (२), केवलज्ञानप्रत्यक्षम् (३) ॥ सू. ५ ॥

टीका—शि०-नोइन्द्रियप्रत्यक्ष किसको कहते हैं? उ—नोइन्द्रियप्रत्यक्ष (बिना किसी इन्द्रिय व मनरूप बाह्य करणकी सहायताके साक्षात् आत्मासे होनेवाला ज्ञान) तीन प्रकारका है, जैसे-अवधिज्ञानप्रत्यक्ष (१), मनःपर्य्यवज्ञानप्रत्यक्ष (२), केवलज्ञानप्रत्यक्ष (३) ॥ सू. ५ ॥

मूल—से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं? ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—भवपच्चइयं च खओवसमियं च ॥ सू. ६ ॥

छाया—अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षम्? अवधिज्ञानप्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—भवप्रत्ययिकञ्च क्षायोपशमिकञ्च ॥ सू. ६ ॥

टीका—शि०-यह अवधिज्ञानप्रत्यक्ष किसप्रकार है? उ०-अवधिज्ञानप्रत्यक्ष दो प्रकारका है, जैसे-भवप्रत्ययिक (१), और क्षायोपशमिक (२) ॥ सू. ६ ॥

मूल—से किं तं भवपच्चइयं? भवपच्चइयं दुण्हं, तंजहा—देवाण य, नेरइयाण य ॥ सू. ७ ॥

छाया—अथ किं तद् भवप्रत्ययिकं? भवप्रत्ययिकं द्वयोः, तद्यथा—देवानाञ्च नैरयिकाणाञ्च ॥ सू. ७ ॥

टीका—शि०—यह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कौनसा है? उ०-भवप्रत्ययिक-जन्मसे होनेवाला-अवधिज्ञान दोको होता है, जैसे-देवोंका और नारक जीवोंका अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक है ॥ सू. ७ ॥

मूल—से किं तं खाओवसमियं ? खाओवसमियं दुण्हं, तंजहा–मणुस्साण य पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाण य। को हेऊ खाओवसमियं ? खाओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू. ८ ॥

छाया—अथ किं तत् क्षायोपशमिकं ? क्षायोपशमिकं द्वयोः, तद्यथा–मनुष्याणाञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानाञ्च,को हेतुः क्षायोपशमिकं ? क्षायोपशमिकं तदावरणीयानां कर्मणाम्–उदीर्णानां क्षयेण, अनुदीर्णानामुपशमेन, अवधिज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू. ८ ॥

टीका—शि०–यह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान किसप्रकार होता है ? उ०–क्षायोपशमिक अवधि दोको, जैसे–मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यंचोंको होता है। शि०–क्षायोपशमिक अवधिज्ञान इस नाममें क्या हेतु है ? उ०–अवधिज्ञानके जो आवरक (आवरण करनेवाले) कर्म हैं उनमें उदयावलिका प्राप्तको क्षय करने, और जो उदयमें नहीं आये हैं उनका उपशमन करनेसे जो अवधिज्ञान उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहते हैं ॥ सू. ८ ॥

मूल—अहवा गुणपडिवन्नस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ, तं समासओ छव्विहं पण्णत्तं, तंजहा–आणुगामियं १, अणाणुगामियं २, वड्ढमाणयं ३, हीयमाणयं ४, पडिवाइयं ५, अप्पडिवाइयं ६ ॥ सू. ९ ॥

छाया—अथवा गुणप्रतिपन्नस्याऽनगारस्याऽवधिज्ञानं समुत्पद्यते, तत्समासतः षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–आनुगामिकं १, अनानुगामिकं २, वर्द्धमानकं ३, हीयमानकं ४, प्रतिपातिकं ५, अप्रतिपातिकम् ६ ॥ सू. ९ ॥

टीका—अथवा ज्ञानदर्शनचारित्रके गुणसम्पन्न अनगार–मुनिको जो अवधिज्ञान प्रकट होता है वह भी क्षायोपशमिक है, वह संक्षेपमें ६ प्रकारका है, जैसे–आनुगामिक (१), अनानुगामिक (२), वर्द्धमान (३), हीयमान (४), प्रतिपाति (५), अप्रतिपाति (६) ॥ सू. ९ ॥

आनुगामिक आदिका क्रमश विवरण करते है–

मूल—से किं तं आणुगामियं ओहिनाणं ? आणुगामियं ओहिनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–अंतगयं च मज्झगयं च। से किं तं अंत-

-गयं ? अंतगयं तिविहं पण्णत्तं, तंजहा-पुरओ अंतगयं ( १ ), मग्गओ अंतगयं ( २ ), पासओ अंतगयं ( ३ )।

से किं तं पुरओ अंतगयं ? पुरओ अंतगयं-से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, पुरओ काउं पणुल्लेमाणे २ गच्छेज्जा, से त्तं पुरओ अंतगयं।

से किं तं मग्गओ अंतगयं ? मग्गओ अंतगयं, से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे २ गच्छिज्जा से त्तं मग्गओ अंतगयं।

से किं तं पासओ अंतगयं ? पासओ अंतगयं, से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, पासओ काउं परिकड्ढेमाणे २ गच्छिज्जा से त्तं पासओ अंतगयं, से त्तं अंतगयं।

छाया-अथ किं तद्-आनुगामिकमवधिज्ञानम् ? आनुगामिकमवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अन्तगतञ्च मध्यगतञ्च । अथ किं तदन्तगतम् ? अन्तगतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-पुरतोऽन्तगतं ( १ ), मार्गतोऽन्तगतं ( २ ), पार्श्वतोऽन्तगतम् ( ३ )।

अथ किं तत् पुरतोऽन्तगतं ? पुरतोऽन्तगतं-स यथानामकः कश्चित् पुरुषः-उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पुरतः कृत्वा प्रणुदन् २ गच्छेत, तदेतत् पुरतोऽन्तगतम्।

अथ किं तन्मार्गतोऽन्तगतं ? मार्गतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः-उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मार्गतः कृत्वाऽनुकर्षन् २ गच्छेत, तदेतन्मार्गतोऽन्तगतम्।

---

१. मार्गतः-पृष्ठत -इत्यर्थः। २. उल्का-दीपिका । ३. चटुली-पर्यन्तज्वलित-तृणपूलिका। ४. प्रणुदन्-प्रेरयन्-इत्यर्थ ।

अथ किं तत्पार्श्वतोऽन्तगतं ? पार्श्वतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुष उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पार्श्वतः कृत्वा परिकर्षन् २ गच्छेत्, तदेतत्पार्श्वतोऽन्तगतं, तदेतदन्तगतम् ।

टीका-शि०-गुरुवर! वह आनुगामिक अवधिज्ञान कौनसा है? उ०-आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकारका है, जैसे-अंतगत और मध्यगत, वह अंतगत अवधि किसप्रकार है? उ०-अंतगत अवधिज्ञान तीन प्रकारका कहा गया है, जैसे-पुरतोऽन्तगत (१), मार्गतोऽन्तगत (१), पार्श्वतोऽन्तगत (१)।

अब वह पुरतोऽन्तगत अवधि कैसा है? उ.-जैसे कोई पुरुष दीपिका या चटुली या तृणाग्रवर्त्ती अग्नि या मणि या प्रदीप तथा ऐसेही विजली, बॅटरी आदि किसी तरहकी अग्निको आगे करके बढाता हुआ चला जाता है, [उसके अग्रगामी प्रकाशकी तरह जो ज्ञान आगेके प्रदेशको प्रकाशित करते हुए साथ चलता है] उसे पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञान कहते हैं।

वह मार्गतोऽन्तगत अवधि किसप्रकार है? उ०-मार्गतोऽन्तगत, जैसे-कोई पुरुष उल्का-दीपिका, चटुली, अलातक या मणि या प्रदीप तथा अन्य इसी प्रकारकी अग्निकी ज्योतिको पीछे करके खींचता हुआ जाता है [ऐसेही जो आत्मा पीछेके क्षेत्रको अवधिज्ञानसे प्रकाशित करता-जानता हुआ आता है] उसका वह पृष्ठगामी-पीछे चलनेवाला अवधिज्ञान मार्गतोऽन्तगत कहाता है।

वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान कौनसा है? उ०-पार्श्वतोऽन्तगत, जैसे-कोई पुरुष दीपिका, चटुली, अलातक या मणि या प्रदीप आदि पूर्वोक्त प्रकाशकारी पदार्थोंको अपने बगलमें करके साथ ले चलता हुआ बाजूके प्रदेशको प्रकाशित करते जाता है, [ऐसेही जिसका अवधिज्ञान बाजूके पदार्थोंका ज्ञान कराते हुए साथ चलता है] वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान है, इसप्रकार यह अन्तगत अवधिका वर्णन हुआ।

मूल—से किं तं मज्झगयं ? मज्झगयं से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चडुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, मत्थए काउं समुव्वहमाणे २ गच्छिज्जा, से त्तं मज्झगयं।

छाया—अथ किं तन्मध्यगतं ? मध्यगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः-उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मस्तके कृत्वा समुद्वहन् २ गच्छेत्, तदेतन्मध्यगतम्।

टीका—शि०-मध्यगत अवधि किसको कहते हैं? उ०-मध्यगत अवधि-जिसप्रकार कोई पुरुष उल्का, चटुली, अलातक या मणि व प्रदीप आदि पूर्वोक्त

प्रकाशकारी द्रव्योंको मस्तकपर रखके उठाता हुआ जाता है, [ इसप्रकार चारों ओरके पदार्थोंका ज्ञान कराते हुए जो ज्ञान ज्ञाताके साथ चलता है ] उसको मध्यगत अवधिज्ञान कहते हैं।

मूल—अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ? [ गोयमा ! ] पुरओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पुरओ चेव संखिज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मग्गओ अंतगएणं ओहिणाणेणं मग्गओ चेव संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोयणाइ जाणइ पासइ, पासओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पासओ चेव संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मज्झगएणं ओहिणाणेणं सव्वओ समंता संखिज्जाणि वा असंखिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, से त्तं आणुगामियं ओहिणाणं ॥ सू. १० ॥

छाया—अन्तगतस्य मध्यगतस्य च कः प्रतिविशेषः ? [ गौतम ! ] पुरतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पुरतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, मार्गतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन मार्गतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, पार्श्वतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पार्श्वतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, मध्यगतेनाऽवधिज्ञानेन सर्वतः समन्तात् संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, तदेतदानुगामिकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १० ॥

टीका—अन्तगत और मध्यगत अवधिमें क्या विशेषता है ? उ०-पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे ज्ञाता संख्यात तथा असंख्यात योजन आगेके पदार्थोंको ही जानता व देखता है, मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे संख्यात या असंख्यात योजन पीछेके द्रव्योंकोही आत्मा जानता व देखता है, ऐसे पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे दोनों बाजूमें रहे हुए पदार्थोंकोही संख्यात या असंख्यात योजनतक जानता व देखता है, किन्तु मध्यगत अवधिज्ञानमें तो सभी ओरके संख्यात व असंख्यात योजनमध्यवर्ती पदार्थोंको आत्मा जानता व देखता है, [ यही दोनोंकी विशेषता है ] यह आनुगामिक-उत्पत्तिक्षेत्रसे साथ चलनेवाला अवधिज्ञान हुआ ॥ सू. १० ॥

मूल—से किं तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं? अणाणुगामिअं ओहिनाणं—से जहानामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव जोइट्ठाणस्स परिपेरंतेहिं परिपेरंतेहिं, परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे तमेव जोइट्ठाणं पासइ, अन्नत्थगए न जाणइ न पासइ, एवामेव [अज्जो!] अणाणुगामिअं ओहिनाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, अन्नत्थगए ण पासइ, से त्तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं ॥ सू. ११ ॥

छाया—अथ किं तदनानुगामिकमवधिज्ञानम्? अनानुगामिकमवधिज्ञानं, स यथानामकः कश्चित्पुरुष एकं महत्-ज्योतिःस्थानं कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य परिपर्यन्तेषु२ परिघूर्णन्२ तदेव ज्योतिःस्थानं पश्यति, अन्यत्र गतान् न जानाति न पश्यति, एवमेवाऽनानुगामिकमवधिज्ञानं—यत्रैव समुत्पद्यते तत्रैव संख्येयानि वा असंख्येयानि वा सम्बद्धानि वाऽसम्बद्धानि वा योजनानि जानाति पश्यति, अन्यत्र गतान्न पश्यति, तदेतदनानुगामिकमवधिज्ञानम् ॥ सू. ११ ॥

टीका—शि०-यह अनानुगामिक अवधिज्ञान किसप्रकार है? उ०-अनानुगामिक अवधिज्ञान, जैसे-कोई पुरुष एक बडे अग्निस्थानमें अग्निको प्रदीप्त करके उस अग्निस्थानकेही आजूबाजू घूमता हुआ उसी अग्निस्थानको देखता है, दूसरी जगह रहे हुए पदार्थोंको अन्धकारके कारण वहाँ आकर भी नहीं जानता व नहीं देखता है, इसीप्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्रमें उत्पन्न होता है, उसी क्षेत्रमें संख्यात या असंख्यात योजनतक संबद्ध या परस्पर सम्बन्धरहित (असम्बद्ध) पदार्थोंको जानता व देखता है, उससे बाहरके पदार्थोंको [नहीं जानता व] नहीं देखता है इसप्रकार यह अनानुगामिक अवधिज्ञान हुआ ॥ ११ ॥

वर्धमान अवधिज्ञान—

मूल—से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं? वड्ढमाणयं ओहिनाणं पसत्थेसु अज्झवसायट्ठाणेसु वट्टमाणस्स वड्ढमाणचरित्तस्स विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ,

---

१ परिघूर्णन्-परिभ्रमन्-दर्पण।

गाहा–५५ जावइआ तिसमया–हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स ।
ओगाहणा जहन्ना, ओहीखित्तं जहन्नं तु ॥ १ ॥

५६ सव्व–बहु–अगणिजीवा, निरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु ।
खित्तं सव्वदिसागं, परमोही खित्तनिद्दिट्ठो ॥ २ ॥

५७ अंगुलमावलियाणं, भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा ।
अंगुलमावलिअंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥ ३ ॥

५८ हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाउअम्मि बोद्धव्वो ।
जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पन्नवीसाओ ॥ ४ ॥

५९ भरहम्मि अद्धमासो, जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो ।
वासं च मणुयलोए, वासपुहुत्तं च रुयगम्मि ॥ ५ ॥

६० संखिज्जम्मि उ काले, दीवसमुद्दा वि हुंति संखिज्जा ।
कालम्मि असंखिज्जे, दीवसमुद्दा उ भइयव्वा ॥ ६ ॥

६१ काले चउण्ह वुड्ढी, कालो भइअव्वु खित्तवुड्ढीए ।
वुड्ढीए दव्वपज्जव, भइयव्वा खित्तकाला उ ॥ ७ ॥

६२ सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं ।
अंगुलसेढीमित्ते, ओसप्पिणिओ असंखिज्जा ॥ ८ ॥

से त्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ॥ सू. १२ ॥

छाया–अथ किं तद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ? वर्धमानकमवधिज्ञानं प्रशस्तेषु अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्द्धमानचारित्रस्य विशुद्ध्यमानस्य विशुद्ध्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्तादव-धिर्वर्धते,

गाथा–५५ यावती त्रिसमया,–ऽऽहारकस्य सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य ।
अवगाहना जघन्या, अवधिक्षेत्रं जघन्यं तु ॥ १ ॥

५६ सर्ववह्निजीवाः, निरन्तरं यावद् भृतवन्तः ।
क्षेत्रं सर्वदिक्कं, परमावधिः क्षेत्रनिर्दिष्टः ॥ २ ॥

५७ अङ्गुलमावलिकायोः, भागमसंख्येयं द्वयोः संख्येयम्।
अङ्गुलमावलिकान्तः, आवलिकामङ्गुलपृथक्त्वम् ॥ ३ ॥

५८ हस्ते मुहूर्तान्तो, दिवसान्तो गव्यूते बोद्धव्यः।
योजनदिवसपृथक्त्वं, पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥ ४ ॥

५९ भरतेऽर्द्धमासो, जम्बुद्वीपे साधिको मासः।
वर्षश्च मनुष्यलोके, वर्षपृथक्त्वञ्च रुचके ॥ ५ ॥

६० संख्येये तु काले, द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः ॥
कालेऽसंख्येये, द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः ॥ ६ ॥

६१ काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्धया (द्धौ)।
वृद्ध्या(द्धौ) द्रव्यपर्यायायोः, भाज्यौ क्षेत्रकालौ तु ॥ ७ ॥

६२ सूक्ष्मश्च भवति कालः, ततः सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रम्।
अङ्गुलश्रेणिमात्रे, अवसर्पिण्योऽसंख्येयाः ॥ ८ ॥

तदेतद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १२ ॥

टीका—शि०-वर्द्धमान अवधिज्ञानका वह स्वरूप किस प्रकार है? गु०-जो पवित्र-उत्तम विचारोंमें वर्तमान व वर्द्धमान चारित्रवाला है तथा [illegible] मोंकी विशुद्धिमें जिसका चरित्र विशुद्ध हो रहा है याने जो [illegible] मार्गमें प्रगति कररहा है, उसके ज्ञानकी चारों ओरसे सीमा बढ़ती है, [illegible] वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

गाथार्थ-अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र-जितनी तीन समयके [illegible] सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना होती है, [illegible] थोडा अवधिज्ञानका क्षेत्र है ॥ १ ॥

अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र दिखाते हैं—[illegible] जितना क्षेत्र निरंतर भरा है याने [illegible] कायिक जीवोंने बिना अन्तरके चारों दिशाका [illegible] सब दिशामें परमावधिज्ञानका क्षेत्र है [illegible] मात्रको परमावधिज्ञानने जानता है ॥ २ ॥

अवधिज्ञानका मध्यम क्षेत्र कहते हैं—[illegible] पृथ, और आवलिकाके [illegible] [illegible] [illegible]

१ [illegible]

संख्येय भाग देखता है अर्थात् अंगुलके संख्येय भागमात्र क्षेत्रको जानता हुआ आवलिकाके भी संख्येय भागतकही जानता है, अंगुलको देखता हुआ कुछ कम आवलिकातक जानता है, यदि कालसे आवलिकाप्रमाण कालको देखता है तो क्षेत्रसे अंगुलपृथक्त्व परिमित क्षेत्रमें देखता है ॥ ३ ॥

हस्तमात्र क्षेत्रके जाननेपर कालसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण देखता है, तथा कालसे कुछ कम एक दिवसको देखता हुआ क्षेत्रसे एक गव्यूतपर्यन्त अवधिज्ञान होता है, ऐसेही योजनपर्यन्त क्षेत्र देखता हुआ कालसे दिवसपृथक्त्व देखता है, व कुछ कम पक्ष देखता हुआ क्षेत्रसे पचीस योजनतक देखता है ॥४॥

भरतक्षेत्रविषयक अवधिज्ञान होनेपर कालसे अर्धमासतक [ भूतभविष्यको ] अवधिज्ञानी देखता है, जम्बुद्वीपविषयक अवधिके होनेपर साधिक-कुछअधिक एकमास आगेपीछे देखता है, मनुष्यक्षेत्रपरिमित अवधिके होनेपर एक वर्षतक और रुचकद्वीपपरिमित क्षेत्रमें अवधिके होनेपर वर्षपृथक्त्व याने दोसे नव वर्षतक देखता है ॥ ५ ॥

संख्यातकाल याने हजार वर्षसे उपर अवधिके विषय होनेपर क्षेत्रसे संख्यातद्वीपसमुद्र भी अवधिके विषय होते हैं, और अवधिज्ञानके असंख्यकालिक होनेपर द्वीपसमुद्र भजनासे होते हैं अर्थात् संख्यात, असंख्यात या किसीको द्वीपसमुद्रका एकदेशही अवधिज्ञानका विषय होता है।

[ जब किसी मनुष्यको असंख्यकालविषयक अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, तब असंख्य द्वीपसमुद्र उसके ज्ञानके विषय होते हैं, और जब मनुष्यक्षेत्रसे बाहरके किसी समुद्र व द्वीपमें तिर्यचको असंख्यकालका अवधिज्ञान होता है तब संख्यात द्वीपसमुद्र उसके ज्ञानविषय होते हैं। एवं स्वयम्भूरमण द्वीप या समुद्रके किसी तिर्यचको जब असंख्यकालविषयक अवधिज्ञान होता है, तब उसको उस द्वीप या समुद्रके एकदेशका ज्ञान होता है ] ॥ ६ ॥

इसप्रकार क्षेत्र और कालकी परस्पर अपेक्षाको रखते हुए वर्द्धमान अवधिका वर्णन किया अब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें किसकी वृद्धिसे किसकी वृद्धि होती है व किसकी नहीं होती इस विषयको कहते हैं—कालके बढनेपर चारोंकी वृद्धि होती है, क्षेत्रकी वृद्धिमें कालकी भजना समझनी चाहिए, याने कभी तो काल बढता है और कभी १ नहीं बढता है, इसप्रकार विकल्प समझना चाहिए, द्रव्य और पर्यायकी वृद्धिमें क्षेत्र व काल विकल्पसे कहने चाहिए याने कदाचित् बढते कदाचित् नहीं बढते हैं [ क्यों कि क्षेत्रसे भी द्रव्य अति सूक्ष्म है, एक आकाशप्रदेशमें अनन्त स्कन्ध रहते हैं और द्रव्यसे भी पर्याय अत्यन्त सूक्ष्म है ] ॥ ७ ॥

कौन किससे सूक्ष्म है इस बातको दिखाते हैं—

१ दो से नवतककी संख्याको पृथक्त्व कहते हैं।

काल सूक्ष्म होता है और कालसे क्षेत्र सूक्ष्मतर याने अधिक सूक्ष्म होता है; एक प्रमाण अंगुलमात्र क्षेत्रकी श्रेणिमें श्रेणिरूपसे प्रत्येक क्षेत्रप्रदेशको समयकी गणनासे गिना जाय तो असंख्य अवसर्पिणी पूरी हो जाती हैं [ एक प्रमाणांगुलमात्र श्रेणिके आकाशखण्डमें अवसर्पिणीके जितने समय हैं उतने प्रमाणमें असंख्य आकाश-प्रदेश होते हैं अर्थात् एकसौ उत्पलपत्रके भेदनमें प्रत्येक पत्रके पीछे असंख्य समय लगते हैं, अतः काल सूक्ष्म है; कालसे क्षेत्र असंख्यगुण अधिक सूक्ष्म है, क्षेत्रसे भी द्रव्य अनन्तगुण और द्रव्यसे भी अवधिज्ञान-विषयक पर्यायें संख्यातगुण या असंख्यगुण अधिक सूक्ष्म होती हैं ] ॥ ८ ॥

यह वर्द्धमान अवधिज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू. ११ ॥

मूल—से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं ? हीयमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसायट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही परिहायइ, से त्तं हीयमाणयं ओहिनाणं ॥ सू. १२ ॥

छाया—अथ किं तद्धीयमानकमवधिज्ञानं ? हीयमानकमवधिज्ञानम्— अप्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्त्तमानस्य वर्त्तमानचारित्रस्य संक्लिश्यमानस्य संक्लिश्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्तादवधिः परिहीयते, तदेतद्धीयमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १२ ॥

टीका—शि०-यह हीयमान अवधिज्ञान कौनसा है ? उ०-अप्रशस्त-अशुभ विचारस्थानोंमें वर्त्तमान साधु जब संक्लिश्यमान अर्थात् अशुभ विचारोंसे शुभ परिणामके मलिन होनेपर संक्लिश्यमान चारित्रवाला होता है उस समय चारों ओरसे उसके ज्ञानकी अवधि हीन होती है, इसीको हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं ॥ सू. १२ ॥

मूल—से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं ? पडिवाइ ओहिनाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं वा, संखिज्जइभागं वा, वालग्गं वा, वालग्गपुहुत्तं वा, लिक्खं वा, लिक्खपुहुत्तं वा, जूयं वा, जूयपुहुत्तं वा, जवं वा, जवपुहुत्तं वा, अंगुलं वा, अंगुलपुहुत्तं वा, पायं वा, पायपुहुत्तं वा, विहत्थिं वा, विहत्थिपुहुत्तं वा, रयणिं वा, रयणिपुहुत्तं वा, कुच्छिं वा, कुच्छिपुहुत्तं वा, धणुं वा, धणुपुहुत्तं वा, गाउयं वा, गाउयपुहुत्तं वा, जोयणं वा, जोयण-

पुहुत्तं वा, जोअणसयं वा, जोयणसयपुहुत्तं वा, जोयणसहस्सं वा, जोयणसहस्सपुहुत्तं वा, जोयणलक्खं वा, जोयणलक्खपुहुत्तं वा, [ जोयणकोडिं वा, जोयणकोडिपुहुत्तं वा, जोयणकोडाकोडिं वा, जोयणकोडाकोडिपुहुत्तं वा, जोअणसंखिज्जं वा, जोअणसंखिज्जपुहुत्तं वा, जोअणअसंखेज्जं वा, जोअणअसंखेज्जपुहुत्तं वा ], उक्कोसेणं लोगं वा पासित्ताणं पडिवइज्जा, से त्तं पडिवाइ ओहिनाणं ॥ सू. १४ ॥

छाया—अथ किं तत्प्रतिपाति–अवधिज्ञानं ? प्रतिपाति–अवधिज्ञानं जघन्येनाऽङ्गुलस्याऽसंख्येयभागं वा, संख्येयभागं वा, बालाग्रं वा, बालाग्रपृथक्त्वं वा, लिक्षां वा, लिक्षापृथक्त्वं वा, यूकां वा, यूकापृथक्त्वं वा, यवं वा, यवपृथक्त्वं वा, अङ्गुलं वाऽङ्गुलपृथक्त्वं वा, पादं वा, पादपृथक्त्वं वा, वितस्तिं वा, वितस्तिपृथक्त्वं वा, रत्निं वा, रत्निपृथक्त्वं वा, कुक्षिं वा, कुक्षिपृथक्त्वं वा, धनुर्वा धनुःपृथक्त्वं वा, गव्यूतं वा गव्यूतपृथक्त्वं वा, योजनं वा, योजनपृथक्त्वं वा, योजनशतं वा, योजनशतपृथक्त्वं वा, योजनसहस्रं वा, योजनसहस्रपृथक्त्वं वा, योजनलक्षं वा, योजनलक्षपृथक्त्वं वा, [ योजनकोटिं वा, योजनकोटिपृथक्त्वं वा, योजनकोटीकोटिं वा, योजनकोटीकोटिपृथक्त्वं वा, योजनसंख्येयं वा, योजनसंख्येयपृथक्त्वं वा, योजनाऽसंख्येयं वा, योजनाऽसंख्येयपृथक्त्वं वा, ] उत्कर्षेण लोकं वा दृष्ट्वा प्रतिपतेत्, तदेतत्प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥ सू. १४ ॥

टीका—शि०–वह प्रतिपाति अवधिज्ञान किसप्रकार है ? उ०–जघन्य अंगुलका असंख्यभाग, या संख्यातभाग, बालाग्र या बालाग्रपृथक्त्व, लीख अथवा लीखपृथक्त्व, यूका( जू ) या यूकापृथक्त्व, जव या जवपृथक्त्व, अंगुल अथवा अंगुलपृथक्त्व, पाँव अथवा १ से ९ पाँव परिमित क्षेत्र, वितस्ति (बेंत) या वितस्ति–पृथक्त्व, रत्नि (हाथ) या हस्तपृथक्त्व, कुक्षि–दो हाथ या कुक्षिपृथक्त्व, धनुष या धनुषपृथक्त्व, क्रोश या क्रोशपृथक्त्व, योजन या योजनपृथक्त्व, शतयोजन या शतयोजनपृथक्त्व, योजनसहस्र या योजनसहस्रपृथक्त्व,

१. दोसे नवपर्यन्त संख्यावालेको पृथक्त्व कहते हैं ।

योजनलक्ष या योजनलक्षपृथक्त्व, यावत् संख्यात, असंख्यात वा उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोकको देखकर जो फिर गिरजाता है वह प्रतिपाति अवधिज्ञान है ॥ सू. १४ ॥

मूल—से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं ? अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं, से त्तं अपडिवाइ ओहिनाणं ॥ सू. १५ ॥

छाया—अथ किं तदप्रतिपात्यवधिज्ञानम् ? अप्रतिपात्यवधिज्ञानं येनाऽलोकस्यैकमप्याकाशप्रदेशं जानाति पश्यति तेन परमप्रतिपात्यवधिज्ञानं, तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥ सू. १५ ॥

टीका—वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान कौनसा है ? उ०—अप्रतिपाति अवधिज्ञान-जिस अवधिज्ञानसे आत्मा अलोकके एक भी आकाश-प्रदेशको जानता व देखता है, उसके बाद वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान होता है । यह अप्रतिपाति अवधिज्ञान पूर्ण हुआ ॥ सू १५ ॥

मूल—तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ । खित्तओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ । कालओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं आवलिआए असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ । भावओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ ॥सू. १६॥

छाया—तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः (नु) अवधिज्ञानी जघन्येनानन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति, उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति। क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाङ्गुलस्याऽसंख्येय-

भागं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽसंख्येयान्यलोके लोकप्रमाणमात्राणि खण्डानि जानाति पश्यति। कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाऽऽवलिकाया असंख्येयभागं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽसंख्येया उत्सर्पिणीरवसर्पिणीः—अतीतमनागतञ्च कालं जानाति पश्यति। भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाऽनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽपि—अनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति ॥ सू. १६ ॥

टीका—पूर्वोक्त वह अवधिज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहागया है, जैसे-द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४), उन चार भेदोंमें द्रव्यसे अवधिज्ञानी जघन्य-कमसेकम अनन्त रूपी द्रव्योंको जानता व देखता है और उत्कृष्ट सभी रूपी द्रव्योंको जानता व देखता है। क्षेत्रसे अवधिज्ञानी जघन्य अंगुलके असंख्यातभागमात्र क्षेत्रको जानता देखता है, उत्कृष्टसे लोकजितने प्रमाणके असंख्यखंडोंको अलोकमें जानता और देखता है। कालसे अवधिज्ञानी जघन्य आवलिकाके असंख्यभागमात्र कालकी बात जानता देखता है, उत्कृष्ट असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप अतीत अनागत [ भूत-भविष्य ] कालको जानता व देखता है, भावसे अवधिज्ञानी जघन्य अनन्तभावोंको जानता देखता है और उत्कृष्टसे भी अनन्तभावों [ पर्याय आदि ] को जानता व देखता है, सब भावोंके अनन्तवें भागको जानता देखता है॥ सू. १६ ॥

मूल—गाहा-६३

ओही भवपच्चइओ, गुणपच्चइओ य वण्णिओ दुविहो।
तस्स य बहूविगप्पा, दव्वे खित्ते अ काले य ॥ १ ॥

६४ नेरइयदेवतित्थंकरा य, ओहिस्सऽबाहिरा हुंति।
पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥ २ ॥
से त्तं ओहिनाणपच्चक्खं।

छाया-गाथा-६३

अवधिर्भवप्रत्ययिको,—गुणप्रत्ययिकश्च वर्णितो द्विविधः।
तस्य च बहुविकल्पा, द्रव्ये क्षेत्रे च काले च ॥ १ ॥

६४ नैरयिकदेवतीर्थंकराश्च, अवधेरबाह्या भवन्ति,
पश्यन्ति सर्वतः खलु, शेषा देशेन पश्यन्ति ॥ २ ॥
तदेतदवधिज्ञानप्रत्यक्षम्।

टीका--पूर्वोक्त वर्णनका संग्रहगाथासे उपसंहार कहते हैं--भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक इसप्रकार अवधिज्ञान दो प्रकारका वर्णन किया गया है, द्रव्य क्षेत्र और कालके सम्बन्धसे उसके बहुत विकल्प होते हैं ॥ १ ॥ नैरयिक जीव देव और तीर्थंकर अवधिज्ञानके अबाह्य होते हैं अर्थात् इनको नियमसे अवधिज्ञान होता है और ये निश्चय सभी ओरसे देखते हैं, शेष जीव एकदेशसे देखते हैं ॥ २ ॥ इसप्रकार यह अवधिज्ञान-प्रत्यक्षका वर्णन हुआ।

मूल—से किं तं मणपज्जवनाणं ? मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ अमणुस्साणं ? गोयमा ! मणुस्साणं नो अमणुस्साणं ।

छाया—अथ किं तन्मनःपर्य्यवज्ञानं ? मनःपर्य्यवज्ञानं नु भदन्त ! किं मनुष्याणामुत्पद्यते, अमनुष्याणां [ वा ] ? गौतम ! मनुष्याणां नो अमनुष्याणाम् ।

टीका-शि०-गुरुजी ! यह मनःपर्ययज्ञान कौनसा है ! मन पर्य्यवज्ञान क्या मनुष्योंको उत्पन्न होता है या अमनुष्योंको यानि मनुष्यभिन्न देव नारक तिर्यञ्चोंको ? उ०-गौतम ! यह ज्ञान मनुष्योंकोही होता है, अमनुष्योंको नहीं।

मूल—जइ मणुस्साणं किं संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, गोयमा ! नो संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतियमणुस्साणं उप्पज्जइ ।

छाया—यदि मनुष्याणां किं सम्मूर्च्छिममनुष्याणां गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां [ वा ] उत्पद्यते ? गौतम ! नो सम्मूर्च्छिममनुष्याणां गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते ।

टीका—यदि मनुष्योंको उत्पन्न होता है तो क्या सम्मूर्छिम मनुष्योंको उत्पन्न होता है या गर्भज मनुष्योंको ? गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्योंको नहीं किन्तु गर्भज मनुष्योंकोही उत्पन्न होता है।

मूल—जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अंतर-

1. गर्भसे उत्पन्न १०१ क्षेत्रके मनुष्योंके मलमूत्र आदि १४ स्थानोंमें सम्मूर्छनरूपसे पैदा होनेवाले मनुष्योंको सम्मूर्छिम-मनुष्य कहते हैं, इनका शरीर अंगुलके असंख्य भागका होता है और अंतर्मुहूर्तके बहुत थोडे समयमें ये मर जाते हैं। देखें। टिप्पण।

दीवग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, गोयमा ! कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अंतरदीवग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां किं कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अकर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अन्तर्द्वीपज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?, गौतम ! कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणां, नो अकर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणां, नो अन्तर्द्वीपज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है तो क्या कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको या अकर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको अथवा अन्तरद्वीपके गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है ? गौतम! कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है किन्तु अकर्मभूमि या अंतरद्वीपके गर्भज मनुष्योंको यह मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है।

मूल—जइ कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं संखिज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं असंखिज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर कर्मभूमिके गर्भज मनुष्योंको होता है तो क्या संख्यात वर्षकी आयुवालोंको होता है या असंख्यातवर्षकी आयुवालोंको ! गौतम ! संख्यातवर्षकी आयुवालेको होता है किन्तु असंख्यातवर्षकी आयुवालेको नहीं होता ।

मूल—जइ संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अपज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो अपर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—यदि संख्यातवर्षकी आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको मनःपर्यवज्ञान होता है तो क्या पर्याप्तकको होता है या अपर्याप्तकको ! गौतम ! पर्याप्तकको होता है अपर्याप्तकको नहीं होता है ।

मूल—जइ पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, मिच्छदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, सम्मामिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो मिच्छदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नोसम्मामिच्छदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

1 सम्ममिच्छ इति पाठान्तरम् ।

दीवग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?, गोयमा ! कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, नो अंतरदीवग-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं।

छाया—यदि गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां किं कर्मभूमिजगर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणाम्, अकर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अन्त-र्द्वीपज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ?, गौतम ! कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणां, नो अकर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणां, नो अन्तर्द्वीपज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्।

टीका—अगर गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है तो क्या कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको या अकर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको अथवा अन्तरद्वीपके गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है ? गौतम ! कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्त मनुष्योंको होता है किन्तु अकर्मभूमि या अंतरद्वीपके गर्भज मनुष्योंको यह मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है।

मूल—जइ कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं संखिज्जवासाउ-य-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं असंखिज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! संखेज्जवासा-उय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंखेज्जवा-साउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं।

छाया—यदि कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संख्येयवर्षा-युष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असंख्येयवर्षा-युष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्।

टीका—अगर कर्मभूमिके गर्भज मनुष्योंको होता है तो क्या संख्यात वर्षकी आयुवालोंको होता है या असंख्यातवर्षकी आयुवालोंको ! गौतम ! संख्यातवर्षकी आयुवालेको होता है किन्तु असंख्यातवर्षकी आयुवालेको नहीं होता।

मूल—जइ संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अपज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो अपर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—यदि संख्यातवर्षकी आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको मनःपर्यवज्ञान होता है तो क्या पर्याप्तकको होता है या अपर्याप्तकको ? गौतम ! पर्याप्तकको होता है अपर्याप्तकको नहीं होता है ।

मूल—जइ पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, मिच्छदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, सम्मामिच्छदिट्ठि-पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो मिच्छदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नोसम्मामिच्छादिट्ठि[1]–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

---

१ सम्मामिच्छ इति पाठान्तरम् ।

छाया—यदि पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्? गौतम! सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् [ उत्पद्यते ], नो मिथ्यादृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, नो सम्यङ्मिथ्यादृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्।

टीका—अगर पूर्वकथित पर्याप्त मनुष्यको होता है तो क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्यको होता है या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिकोंको होता है अथवा मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको होता है ? गौतम! सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यको होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि व मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको नहीं होता है।

मूल—जइ सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं [ उप्पज्जई ], किं संजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, असंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, संजयासंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं? गोयमा! संजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो संजयासंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउयकम्मभूमिय — गब्भवक्कंतियमणुस्साणं।

छाया—यदि सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, संयताऽसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो संयताऽसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्यको यह ज्ञान होता है तो क्या संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है ? या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको अथवा संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है ? गौतम ! पूर्वोक्त ज्ञान संयत ( साधु ) सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है, असंयत या संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको नहीं होता ।

मूल—जइ संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं [ उप्पज्जई ], किं पमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! अपमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो पमत्तसंजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि संयतसम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् [ उत्पद्यते ], किं प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-

छाया—यदि पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्? गौतम! सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् [ उत्पद्यते ], नो मिथ्यादृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, नो सम्यङ्मिथ्यादृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर पूर्वकथित पर्याप्त मनुष्यको होता है तो क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्यको होता है या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिकोंको होता है अथवा मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको होता है ! गौतम ! सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यको होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि व मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको नहीं होता है ।

मूल—जइ सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं [ उप्पज्जई ], किं संजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, असंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, संजयासंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं? गोयमा! संजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो असंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो संजयासंजय—सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउयकम्मभूमिय — गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, संयताऽसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! संयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो संयताऽसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्यको यह ज्ञान होता है तो क्या संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है ? या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको अथवा संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है ? गौतम ! पूर्वोक्त ज्ञान संयत ( साधु ) सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है, असंयत या संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको नहीं होता ।

मूल—जइ संजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं [ उप्पज्जइ ], किं पमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो पमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि संयतसम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् [ उत्पद्यते ], किं प्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-

कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो प्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर साधुओंको होता है तो क्या प्रमत्तसंयत (साधु)को होता है, या अप्रमत्तसंयत (साधु) को ? गौतम ! यह ज्ञान अप्रमत्तसंयत (साधु) को होता है प्रमत्त साधुको नहीं होता।

मूल—जइ अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं इड्ढीपत्त–अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अणिड्ढीपत्त–अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! इड्ढीपत्त–अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अणिड्ढीपत्त–अपमत्तसंजय–सम्मदिट्ठि–पज्जत्तग–संखेज्जवासाउय–कम्मभूमिय–गब्भवक्कंतियमणुस्साणं मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू. १७ ॥

छाया—यदि अप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं ऋद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अनृद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! ऋद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो अनृद्धिप्राप्ताऽप्रमत्तसंयत–सम्यग्दृष्टि–पर्याप्तक–संख्येयवर्षायुष्क–कर्मभूमिज–गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां मनःपर्यवज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू.१७॥

टीका—यदि अप्रमत्त संयतको यह ज्ञान पैदा होता है तो क्या ऋद्धिप्राप्त अप्रमत्त साधुको होता है या अनृद्धिप्राप्त–लब्धिशून्य अप्रमत्त साधुको

होता है । गौतम ! ऋद्धि–आमर्षौषध्यादि शक्ति–प्राप्त अप्रमत्त संयतकोही मनःपर्ययज्ञान होता है, ऋद्धिशून्य अप्रमत्त साधुओंको यह ज्ञान उत्पन्न नहीं होता [ मनोवर्गणासे गृहीत मनोयोग्य पुद्गलोंका आश्रयण–अवलम्बन लेकर मानसिक भावोंको जानना इसको मनः पर्यवज्ञान कहते हैं ]॥ सू. १७ ॥

मनःपर्यवज्ञानके प्रकार—

मूल– तं च दुविहं उप्पज्जइ, तं जहा–उज्जुमई य विउलमई य, तं समासओ चउव्विहं पन्नत्तं, तं जहा–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ, ते चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिरतराए जाणइ पासइ। खित्तओ णं उज्जुमई य जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तिसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ। कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणावि पलिओवमस्स असंखिज्जय भागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं (कालं) जाणइ पासइ। भावओ ण उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं (भावं) जाणइ पासइ।

गाहा–६५ मणपज्जवनाणं पुण, जणमणपरिचिंतिअत्थपागडणं ।
माणुसखित्तनिबद्धं, गुणपच्चइअं चरित्तवओ ॥ १ ॥
से त्तं मणपज्जवनाणं ॥ सू. १८ ॥

छाया–तच्च द्विविधमुत्पद्यते, तद्यथा–ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च, तत समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतो नु ऋजुमतिरनन्तान् अनन्तप्रदेशिकान्

स्कन्धान् जानाति पश्यति, तान् चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरान् विपुलतरान् विशुद्धतरकान् वितिमिरतरकान् जानाति पश्यति। क्षेत्रतो नु ऋजुमतिश्च जघन्येनाऽङ्गुलस्याऽसंख्येयभागम्, उत्कर्षेणाऽधो यावदस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरितनानधस्तनान् क्षुल्लकप्रतरान्, ऊर्ध्वं यावज्ज्योतिष्कस्योपरितनतलम्, तिर्यग्यावदन्तोमनुष्यक्षेत्रे-अर्द्धतृतीयेषु, द्वीपसमुद्रेषु, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, त्रिंशदकर्मभूमिषु, षट्पंचाशदन्तर्द्वीपेषु, संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान् जानाति पश्यति, तच्चैव विपुलमतिरर्द्धतृतीयैरङ्गुलैरभ्यधिकतरं विपुलतरं विशुद्धतरं वितिमिरतरं क्षेत्रं जानाति पश्यति। कालतो नु ऋजुमतिर्जघन्येन पल्योपमस्याऽसंख्येयभागमुत्कर्षेणाऽपि पल्योपमस्याऽसंख्येयभागमतीतमनागतं वा कालं जानाति पश्यति, तच्चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं ( कालं ) जानाति पश्यति। भावतो नु ऋजुमतिरनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानामनन्तभागं जानाति पश्यति तच्चैव विपुलमतिरभ्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं जानाति पश्यति।

गाथा-६५ मनःपर्यवज्ञानं पुन,-र्जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनम्।
मानुषक्षेत्रनिबद्धं, गुणप्रत्ययिकं चरित्रवतः॥ १ ॥
तदेतन्मनःपर्यवज्ञानम्॥ सू. १८ ॥

टीका-और वह मनःपर्यवज्ञान दो प्रकारका उत्पन्न होता है, जैसे-ऋजुमति और विपुलमति, दोनों प्रकारवाला वह मनःपर्यवज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे-द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४) से, इनमें द्रव्यकी अपेक्षासे ऋजुमति अनन्तप्रदेशी अनन्त स्कन्धोंको जानता देखता है और उसीको विपुलमति कुछ अधिक विपुल और विशुद्ध तथा अन्धकाररहित जानता व देखता है। क्षेत्रसे ऋजुमति जघन्य अंगुलके असंख्यातभाग और उत्कृष्ट नीचे-इस रत्नप्रभापृथ्वीके उपरी भागके नीचेके छोटे प्रतरोंतक जानता है, उपर ज्योतिष्क विमानके उपरी तलपर्यन्त, तथा तिर्यक्-मनुष्यक्षेत्रके भीतर अढाई द्वीपसमुद्रपर्यन्त याने पन्द्रह कर्मभूमि, तीस अकर्मभूमि और छप्पन अन्तर्द्वीपोंमें रहे हुए सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके मनोगत भावोंको जानता व देखता है, और विपुलमति उसीको अढाई अंगुल अधिक विपुल विशुद्ध

अन्धकाररहित क्षेत्रको दृष्टिसे जानता व देखता है। कालसे ऋजुमति न्य और उत्कृष्टसे भी पल्योपमके असंख्यातवाँ भाग भूत व भविष्यकालको तता देखता है, और विपुलमति उसीको कुछ अधिक विस्तारयुक्त तथा शुद्ध जानता व देखता है। भावसे ऋजुमति अनन्त भावोंको जानता देखता (विशेष स्पष्ट-) सभी भावोंके अनन्तवें भागको जानता देखता है, और पुलमति उसीको कुछ अतिविस्तीर्ण तथा विशुद्धतर जानता व देखता है। संहार-गाथार्थ-६५ मनःपर्यवज्ञान सभी जीवोंके मनमें सोचे हुए अर्थको ाट करनेवाला है, और मनुष्यक्षेत्रमें सीमित तथा चारित्रयुक्त साधुके ोपशम गुणसे उत्पन्न होनेवाला है। इसप्रकार मनःपर्यवज्ञानका वर्णन त ॥ सू. १८ ॥

ूल—से किं तं केवलनाणं ? केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—भवत्थकेवलनाणं च सिद्धकेवलनाणं च।

ाया—अथ किं तत् केवलज्ञानम् ? केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—भवस्थकेवलज्ञानञ्च सिद्धकेवलज्ञानञ्च।

टीका—यह केवलज्ञान किस प्रकार है ? केवलज्ञान दो प्रकारका कहा या है, जैसे-भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवलज्ञान।

ूल—से किं तं भवत्थकेवलनाणं ? भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-सजोगिभवत्थकेवलनाणं च अजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

ाया—अथ किं तद् भवस्थकेवलज्ञानम् ? भवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-सयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च, अयोगिभवस्थकेवल-ज्ञानञ्च।

टीका—यह भवस्थ केवलज्ञान कौनसा है ? उ०- भवस्थ केवलज्ञान (संसारमें रहे हुए अर्हन्तोंका केवलज्ञान) दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-सयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अयोगिभवस्थकेवलज्ञान।

मूल—से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ? सजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च। अहवा चरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च, से त्तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं।

छाया–अथ किं तत् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्? सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च। अथवा चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च, तदेतत् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्।

टीका—यह सयोगिभवस्थकेवलज्ञान किस प्रकार है? उ०—सयोगिभवस्थकेवलज्ञान दो प्रकारका है, जैसे-प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान। अथवा सयोगिभवस्थ केवलज्ञानके दूसरी तरहसे दो प्रकार हैं, जैसे-चरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अचरमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान, इसप्रकार यह सयोगिभवस्थकेवलज्ञान हुआ।

मूल—से किं तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं? अजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च। अहवा चरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयअजोगिभवत्थकेवलनाणं च, से तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं, से तं भवत्थकेवलनाणं॥ सू० १९॥

छाया–अथ किं तदयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्? अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–प्रथमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानं चाऽप्रथमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च। अथवा चरमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्चाऽचरमसमयाऽयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च, तदेतदयोगिभवस्थकेवलज्ञानम्, तदेतद् भवस्थकेवलज्ञानम्॥ सू० १९॥

टीका—यह अयोगिभवस्थकेवलज्ञान कौनसा है? उ०—अयोगिभवस्थकेवलज्ञान (भी) दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-प्रथमसमयका अयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अप्रथमसमयका अयोगिभवस्थ केवलज्ञान, अथवा चरमसमय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरमसमय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (इस प्रकार भी दो भेद होते हैं), यह हुआ अयोगिभवस्थ केवलज्ञान, इसके साथ भवस्थकेवलज्ञान भी पूर्ण हुआ॥ सू० १९॥

मूल– से किं तं सिद्धकेवलनाणं? सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा–अणंतरसिद्धकेवलनाणं च परंपरसिद्धकेवलनाणं च ॥ सू. २० ॥

छाया–अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानम्? सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्च परम्परसिद्धकेवलज्ञानञ्च ॥ सू. २० ॥

टीका—वह सिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है? सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान और परम्परसिद्धकेवलज्ञान ॥ सू. २० ॥

मूल– से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं? अणंतरसिद्धकेवलनाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तं जहा–तित्थसिद्धा (१), अतित्थसिद्धा (२), तित्थयरसिद्धा (३), अतित्थयरसिद्धा (४), सयंबुद्धसिद्धा (५), पत्तेयबुद्धसिद्धा (६), बुद्धबोहियसिद्धा (७), इत्थिलिंगसिद्धा (८), पुरिसलिंगसिद्धा (९), नपुंसगलिंगसिद्धा (१०), सलिंगसिद्धा (११), अन्नलिंगसिद्धा (१२), गिहिलिंगसिद्धा (१३), एगसिद्धा (१४), अणेगसिद्धा (१५), से त्तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ॥ सू. २१ ॥

छाया–अथ किं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम्? अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–तीर्थसिद्धाः (१), अतीर्थसिद्धाः (२), तीर्थकरसिद्धाः (३), अतीर्थकरसिद्धाः (४), स्वयंबुद्धसिद्धाः (५), प्रत्येकबुद्धसिद्धाः (६), बुद्धबोधितसिद्धाः (७), स्त्रीलिङ्गसिद्धाः (८), पुरुषलिङ्गसिद्धाः (९), नपुंसकलिङ्गसिद्धाः (१०), स्वलिङ्गसिद्धाः (११), अन्यलिङ्गसिद्धाः (१२), गृहिलिङ्गसिद्धाः (१३), एकसिद्धाः (१४), अनेकसिद्धाः (१५), तदेतदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ॥ सू. २१ ॥

टीका—वह अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है? अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान पन्द्रह प्रकारका कहा गया है, जैसे-तीर्थसिद्ध (१), अतीर्थसिद्ध

(२), तीर्थंकरसिद्ध (३), अतीर्थंकरसिद्ध (४), स्वयंबुद्धसिद्ध (५), प्रत्येकबुद्धसिद्ध (६), बुद्धबोधितसिद्ध (७), स्त्रीलिङ्गसिद्ध (८), पुरुषलिङ्गसिद्ध (९), नपुंसकलिङ्गसिद्ध (१०), स्वलिङ्गसिद्ध (११), अन्यलिङ्गसिद्ध (१२), गृहिलिङ्गसिद्ध (१३), एकसिद्ध (१४), अनेकसिद्ध (१५), इनका केवलज्ञान अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान है, यह हुआ अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान ॥ सू० २१ ॥

मूल—से किं तं परंपरसिद्धकेवलनाणं ? परंपरसिद्धकेवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—अपढम समयसिद्धा, दुसमयसिद्धा, तिसमयसिद्धा, चउसमयसिद्धा, जाव दससमयसिद्धा, संखिज्जसमयसिद्धा, असंखिज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा, से त्तं परंपरसिद्धकेवलनाणं, से त्तं सिद्धकेवलनाणं ।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ । खित्तओ णं केवलनाणी सव्वं खित्तं जाणइ पासइ । कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ । भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ ।

गाहा–६६

अह सव्वदव्वपरिणाम,-भावविण्णत्तिकारणमणंतं ।
सासयमप्पडिवाई, एगविहं केवलं नाणं ॥ सू० २२ ॥

छाया—अथ किं तत्परम्परसिद्धकेवलज्ञानम् ? परम्परसिद्धकेवलज्ञानमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अप्रथमसमयसिद्धाः, द्विसमयसिद्धाः, त्रिसमयसिद्धाः, चतुःसमयसिद्धाः, यावद्दशसमयसिद्धाः, संख्येयसमयसिद्धाः, असंख्येयसमयसिद्धाः, अनन्तसमयसिद्धाः, तदेतत्परम्परसिद्धकेवलज्ञानं, तदेतत्सिद्धकेवलज्ञानम् ।

तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः, तत्र द्रव्यतः केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रतः केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालं जानाति पश्यति, भावतः केवलज्ञानी सर्वान् भावान् जानाति पश्यति ।

गाथा-६६

अथ सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणमनन्तम् ।
शाश्वतमप्रतिपाति, एकविधं केवलं ज्ञानम् ॥ सू. २२ ॥

टीका—वह परम्परसिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है ? उ०- परंपरसिद्ध-केवलज्ञान अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे-अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमय-सिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध, यावत् दशसमयसिद्ध, संख्येयसमय सिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध, अनन्तसमयके सिद्ध, इस प्रकार इनका केवलज्ञान परम्परसिद्धकेवलज्ञान कहाता है, यह परम्परसिद्धकेवलज्ञान हुआ, साथही भवस्थ व परम्परकेवलज्ञानके वर्णनसे यह सिद्धकेवलज्ञान भी पूर्ण हो चुका ।

ऊपर कहा गया वह केवलज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका है, जैसे-द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४), इनमें द्रव्यसे केवलज्ञानी सब द्रव्योंको जानता व देखता है, क्षेत्रसे केवलज्ञानी लोकालोकरूप सब क्षेत्रको जानता व देखता है, कालसे केवलज्ञानी सब काल-तीनों काल-के द्रव्योंको जानता और देखता है, भावसे केवलज्ञानी अनन्तपर्यायात्मक द्रव्योंके सब भावोंको जानता व देखता है । उपसंहार-गाथा-६६ सभी द्रव्योंके परिणाम और भाव-औदयिकादि व वर्णगन्धादिको जाननेका कारण है अर्थात् सब द्रव्योंके परिणाम और भावोंको जाननेवाला है, अन्तरहित तथा शाश्वतसदा-कालस्थायी व अप्रतिपाति-नहीं गिरनेवाला ऐसा यह केवलज्ञान एकप्रकारका है ॥ सू. २२ ॥

मूल—६७

केवलनाणेणऽत्थे, नाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे ।
ते भासइ तित्थयरो, वइजोगसुअं हवइ सेसं ॥ १ ॥
से त्तं केवलनाणं, से त्तं नोइंदियपच्चक्खं, से त्तं पच्चक्खनाणं ॥ सू. २३ ॥

छाया—६७

केवलज्ञानेनार्थान्, ज्ञात्वा ये तत्र प्रज्ञापनयोग्याः ।
तान् भाषते तीर्थंकरो, वाग्योगश्रुतं भवति शेषम् ॥ १ ॥
तदेतत्केवलज्ञानं, तदेतन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं, तदेतत्प्रत्यक्षज्ञानम् ॥ सू. २३ ॥

टीका—केवलज्ञानसे सब पदार्थोंको जानकर उनमें जो पदार्थ वर्णनयोग्य हैं तीर्थंकर महाराज उनको वर्णन करते हैं, शेषभाव वाग्योगश्रुत होता है यह हुआ केवलज्ञान, इसके साथ ही यह नोइन्द्रियप्रत्यक्ष व प्रत्यक्षज्ञानका भी वर्णन हुआ ॥ सू. २३ ॥

मूल—से किं तं परुक्खनाणं ? परुक्खनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आभिणिबोहियनाणपरुक्खं च, सुयनाणपरुक्खं च, जत्थ आभिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं तत्थाभिणिबोहियनाणं, दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमणुगयाइं, तहवि पुण इत्थ आयरिआ नाणत्तं पण्णवयंति, अभिणिबुज्झइ त्ति आभिणिबोहियनाणं सुणेइत्ति सुयं, मइपुव्वं जेण सुअं न मई सुयपुव्विया ॥ सू. २४ ॥

छाया—अथ किं तत्परोक्षज्ञानम् ? परोक्षज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षञ्च श्रुतज्ञानपरोक्षञ्च, यत्राभिनिबोधिकज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानं, यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिबोधिकज्ञानं, द्वे अपि एते अन्यदन्यदनुगते, तथापि पुनरत्राऽऽचार्या नानात्वं प्रज्ञापयन्ति—अभिनिबुध्यत इत्याभिनिबोधिकज्ञानम्, श्रृणोति—इति श्रुतम् मतिपूर्वं येन श्रुतं न मतिः श्रुतपूर्विका ॥ सू. २४ ॥

टीका— यह परोक्षज्ञान कौनसा है ? परोक्षज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-आभिनिबोधिकज्ञानपरोक्ष और श्रुतज्ञानपरोक्ष, जहाँ आभिनिबोधिकज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, और जहाँ श्रुतज्ञान होता है वहाँ आभिनिबोधिकज्ञान होता है, इस प्रकार ये दोनों परस्पर अनुगत हैं, तो भी फिर आचार्य्य यहाँ विशेषता दिखाते हैं-अभिमुख आये हुए पदार्थोंका जो नियमित बोध करता है उस ( इन्द्रिय और मनसे होनेवाले ) ज्ञानको आभिनिबोधिकज्ञान कहते हैं, सुना जाय वह श्रुतज्ञान है, जिसलिए श्रुतज्ञान ( शब्दजन्य ज्ञान ) मतिपूर्वक होता है किन्तु मति श्रुतपूर्विका नहीं होती, इसलिए मति श्रुत दोनोंमें मतिज्ञानका ही पूर्वप्रयोग होता है ॥ सू. २४ ॥

मूल—अविसेसिया मई मइनाणं च मइअण्णाणं च । विसेसिया सम्मदिट्ठिस्स मई मइनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स मई मइअन्नाणं । अविसेसियं सुयं सुयनाणं च सुयअन्नाणं च । विसेसिअं सुयं सम्मदिट्ठिस्स सुअं सुयनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुयं सुयअन्नाणं ॥ सू. २५ ॥

छाया—अविशेषिता मतिर्मतिज्ञानञ्च, मत्यज्ञानञ्च, विशेषिता सम्यग्दृष्टेर्मतिर्मतिज्ञानं, मिथ्यादृष्टेर्मतिर्मत्यज्ञानम् । अविशेषितं श्रुतं श्रुत-

ज्ञानञ्च श्रुताज्ञानञ्च, विशेषितं श्रुतं सम्यग्दृष्टेः श्रुतं श्रुतज्ञानं, मिथ्यादृष्टेः श्रुतं श्रुताज्ञानम् ॥ सू. २५ ॥

टीका—विना विशेषताकी मति मतिज्ञान और मतिअज्ञान उभयरूप है, विशेषतायुक्त वही मति सम्यग्दृष्टिके लिए मतिज्ञान है व मिथ्यादृष्टिकी मति, मति-अज्ञान कहाती है। विशेषताकी अपेक्षासे रहित श्रुत श्रुतज्ञान और श्रुतअज्ञान उभयरूप कहाता है, एवं विशेषता पाकर वही सम्यग्दृष्टिका श्रुत श्रुतज्ञान तथा मिथ्यादृष्टिका श्रुत श्रुत-अज्ञान कहाता है ॥ सू. १५ ॥

मूल—से किं तं आभिणिबोहियनाणं ? आभिणिबोहियनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—सुयनिस्सियं च, असुयनिस्सियं च। से किं तं असुयनिस्सियं ? असुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—

गाहा—६८

उप्पत्तिया १ वेणइआ २, कम्मया[1] ३ परिणामिया ४ ।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भई ॥ सू. २६ ॥

छाया—अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानम्, आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—श्रुतनिश्रितञ्च, अश्रुतनिश्रितञ्च। अथ किं तद्-श्रुतनिश्रितम् ? अश्रुतनिश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

गाथा—६८

औत्पत्तिकी १ वैनयिकी २, कर्मजा ३ पारिणामिकी ४ ।
बुद्धिश्चतुर्विधोक्ता, पंचमी नोपलभ्यते ॥ सू. २६ ॥

टीका—वह आभिनिबोधिकज्ञान किस प्रकार है ? उ०-आभिनिबोधिक ज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे-श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित। स्वल्प वाच्य होनेसे पहले अश्रुतनिश्रित मतिज्ञानको कहते हैं-वह अश्रुतनिश्रित मति कैसी है ? उ०- अश्रुतनिश्रित मति चार प्रकारकी कही गई है, जैसे-गाथार्थ-औत्पत्तिकी ( १ ) वैनयिकी ( २ ) कर्मजा ( ३ ) पारिणामिकी ( ४ ) इस तरह बुद्धि चार प्रकारकी कही गई है, पांचवाँ प्रकार नहीं मिलता है ॥ सू. १६ ॥

मूल—गाहा—६९[2]

पुव्वमदिट्ठमस्सुय,—मवेइय—तक्खण-विसुद्धगहियत्था ।
अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥ १ ॥

---

१—कम्मिया—इति समितिमुद्रितमलयगिरिवृत्ती ।

२ आ. नि. गा ९३८—तः ५१ पर्यन्ता १४ गाथा बुद्धि सिद्ध-प्रतिपादके प्रकरणे

छाया-गाथा-६९

पूर्वमदृष्टाऽश्रुताऽवेदिततत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था ।
अव्याहतफलयोगा, बुद्धिरौत्पत्तिकी नाम ॥ १ ॥

औत्पत्तिकी-पहले विना देखे विना सुने और विना जाने पदार्थोंको तत्कालही (उसी क्षणमें) विशुद्ध यथार्थरूपसे ग्रहण करनेवाली तथा अबाधित फलके योगवाली बुद्धि औत्पत्तिकी नामवाली है याने (जो बुद्धि पहले विना देखे, विना सुने, विना जाने विषयोंको उसी क्षणमें विशुद्ध यथावस्थित ग्रहण करती है व अबाधितफलके सम्बन्धवाली है वह औत्पत्तिकी नामकी बुद्धि है) अर्थात् शास्त्राभ्यास व अनुभव आदिके विना केवल उत्पातहीसे जो उत्पन्न होती है वह औत्पत्तिकी बुद्धि कहाती है।

औत्पत्तिकी बुद्धिके विषयमें रोहक कुमारके १३ दृष्टान्तोंका पहला उदाहरण गाथारूपसे कहते हैं—

मूल-गाहा-७०

भरहसिल १ मिंढ २ कुक्कुड ३, तिल ४ वालुय ५ हत्थि ६
अगड ७ वणसंडे ८ । पायस ९ अइआ १० पत्ते ११, खाड-
हिला १२ पंचपियरो य १३ ॥ २ ॥

छाया-गाथा-७०

भरतशिला १ मेण्ढ २ कुक्कुट ३, तिल ४ वालुका ५ हस्त्यगड
६, ७ वनखण्डाः ८ । पायसाऽतिग ९, १० पत्राणि ११,
खाडहिला १२ पञ्चपितरश्च १३ ॥ २ ॥

टीका-गाथार्थ-७०-भरत शिला-उज्जयिनीके पास नटोंका एक गांव था, जिसमें भरत नामका एक नट रहता था। उसकी स्त्री किसी रोगसे मरगई किन्तु पीछे रोहा नामके एक छोटे बालकको छोड गई, तब उस भरत-नटने अपनी व शिशु रोहाकी सेवाके लिए दूसरी शादी की। किन्तु वह सपत्नी मां रोहकके साथ प्रेमव्यवहार ठीक १ नहीं करती, जिससे दुःखी हो रोहकने एक दिन उसको कहा कि मां ! तूं मेरेसे बराबर प्रेमका व्यवहार नहीं करती यह अच्छा नहीं है। इसपर मां बोली कि अरे रोहक ! मैं अगर ठीक नहीं करती तो तूं मेरा क्या करेगा ? रोहक बोला कि मैं ऐसा करूंगा जिससे तुमको मेरे पांवपर गिरना पड़ेगा। अरे ! पांवपर गिरानेवाले ! बडे बने हो, जा तुझे जो करना हो करलेना, ऐसा कहके मां चुप हो गई। और रोहक भी अपनी बातें पूरी करनेका अवसर देखने लगा, एकरात कुछ समयके बाद वह अपने पिताके पास सोया हुआ था अचानक बोलने लगा कि ओ काका ! यह देखो, गोहा (अन्य पुरुष) दौडा जाता है, बालककी यह बात सुनकर नटको अपनी स्त्रीके

प्रति शंका हो गई। उसी रोजसे वह स्त्रीके साथ अच्छी तरह संभाषण भी नहीं करता, तथा दूर होकर सोने लगा। इस प्रकार पतिको अपनेसे मुंह मोडे हुए देखकर वह समझ गई कि यह सब बालककी ही करामात है, विना इसको प्रसन्न किए काम नहीं चलेगा, ऐसा सोचकर उसने अनुनय पूर्वक भविष्यके सद्व्यवहारका विश्वास दिलाते हुए बालकको संतुष्ट किया, प्रसन्न होकर रोहकने भी पिताकी शंकाको दूर करनेके लिए किसी चांदनी रातमें अंगुलीके अग्रभागसे अपनी छायाको दिखाते हुए पितासे बोला कि ओ पिता! देखो यह गोहा (अन्य पुरुष) जा रहा है। सुनते ही उस नटने गोहा (अन्य पुरुष) को मारनेके लिए क्रोधमें आकर म्यानसे तलवार निकाली, और बोला कि कहाँ है वह लंपट गोहा, जो मेरे घरमें धर्म नष्ट करता है! दिखा, अभी उसको इस लोकसे विदा कर देता हूँ। रोहकने उत्तरमें अंगुलीसे अपनी छायाको दिखाते हुए कहा कि यह गोहा है। छायाको गोहा कहके समझानेकी बालचेष्टा देखते ही भरत तो लज्जित हो गया और सोचने लगा कि अहो! मैंने झूठेही बालकके कहनेसे अपनी स्त्रीके साथ अप्रीतिका व्यवहार किया। इस प्रकार पश्चात्तापके बाद भरत पूर्ववत् ही स्त्रीसे प्रेमव्यवहार करने लगा, तब रोहाने सोचा कि मेरे दुर्व्यवहारसे अप्रसन्न हुई माता कदाचित् मुझे विष आदि देकर मार देगी, इसलिए अब अकेले भोजन नहीं करना चाहिये, ऐसा सोचके वह अपना खाना पीना पिताके साथ ही करता तथा सर्वदा पिताकेही साथ रहता। एक दिन कार्यवश रोहा अपने पिताके साथ उज्जयिनी गया। नगरीको देवपुरीकी तरह देखके रोहा बहुत विस्मित हुआ और अपने मनमें उसका पूर्ण चित्र खींचलिया, पीछे जब पिताके साथ घरकी ओर आने लगा तब नगरीके बाहर निकलते ही भरतको कुछ भूली हुई चीजकी याद आई और उसे लेनेके लिए रोहकको सिप्राके तीरपर बिठाके वह फिर शहरमें चला गया। इसी बीचमें रोहाने नदीके किनारेकी बालूपर अपनी बालचंचलतासे कोटपूर्ण नगरी लिख डाली। इधर फिरनेको आया हुआ राजा संयोगवश साथियोंके मार्ग भूल जानेसे अकेला होकर उस रास्तेसे चला आया, उसको अपनी लिखी हुई नगरीके बीचसे आते देख रोहा बोला-ऐ राजपुत्र! इस रास्तेसे मत आओ, राजा बोला क्यों क्या है? रोहक बोला-देखते नहीं! यह राजभवन है, जहाँ हरएक प्रवेश नहीं कर सकता। यह सुनते ही कौतुकवश हो राजाने उसकी लिखी हुई सारी नगरी देखी और उस बालकसे पूछा-अरे! पहले भी तुमने कभी यह नगरी देखी है? या नहीं? कभी नहीं, आजही ग्रामसे यहाँ आया हूँ, रोहक बोला। बालककी अपूर्व धारणाशक्ति व चातुरीको देखकर वह राजा चकित हो गया और मनही मन उसकी बुद्धिकी प्रशंसा करने लगा। कुछ समयके बाद राजाने रोहकसे पूछा-वत्स! तुम्हारा नाम क्या है? और कहाँ रहते हो? वह बोला-राजन्! मेरा नाम रोहक है और मैं इस पासके नटोंके ग्राममें रहता

हैं। इस तरह दोनोंकी बात चलही रही थी कि इसी बीचमें रोहकका पिता आ पहुँचा और दोनों पितापुत्र ग्रामको चलेगए। राजा भी अपने भवन चला आया और सोचने लगा कि मुझको एक कम पाँचसौ मंत्री हैं, यदि मन्त्रिमंडलमें मूर्धन्य अत्यन्त बुद्धिमान् एक बडा मन्त्रि और हो जाय तो मेरा राज्य सुखसे चलेगा। क्यों कि अन्य बलके कम रहते भी बुद्धिबली राजा शत्रुसे कष्ट नहीं पाता और खेलही खेलमें शत्रुपर विजय पा लेता है, इसप्रकार विचार कर राजाने कुछ दिनोंतक रोहककी बुद्धिपरीक्षा करनी शुरू की। (१) शिला ( शिला )-सर्व प्रथम उस गांवके लोगोंको राजाने आदेश दिया कि तुम सभी एक राजाके योग्य मंडप बनाओ, जिसपर ग्रामके बाहरवाली यह बडी शिला विना उखाडे आच्छादनके रूपमें बन जाये। राजाके उपरोक्त आदेशको सुनकर सभी ग्रामवाले आकुल हो उठे, व ग्रामके बाहर सभामें इकट्ठे होकर परस्पर विचार करने लगे कि, अब क्या करना चाहिए! राजाकी दुराज्ञा हम सबोंपर आ पडी है और उसका पालन करना असंभव है, तथा आज्ञा पूरी नहीं करनेपर राजा अवश्य भारी दण्ड देगा। इस तरह चिन्तासे व्याकुल उन सबोंको विचार करते २ मध्यदिन ( दोपहर ) हो आया। उधर रोहक पिताके विना नहीं खाता और पिता ग्रामके मेलेमें था। इसलिए वह भूखसे व्याकुल होकर पिताके पास आया व बोला कि पिताजी मैं भूखसे बहुत दुखी हूँ, इसलिए भोजनके लिए जल्दी घर चलो। भरतने कहा-वत्स! तुम सुखी हो जिसलिये कि ग्रामके कुछ भी कष्टको नहीं जानते हो। रोहक बोला-पिताजी! ग्रामको क्या कष्ट है? इसपर भरतने राजाकी आज्ञा व उसकी कठिनाई कह डाली। सब बात सुन लेनेपर हँसते हुए रोहने कहा-क्या यही कष्ट है तो मैं अभी दूर कर देता हूँ, इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है, आप लोग मंडप बनानेके लिए शिलाके चारों बाजू नीचेकी भूमिको खोदो और फिर यथास्थान आधार खंभोंको लगाकर मध्यवर्ती जमीनको भी खोदलो और चारों ओर अति सुन्दर दिवाल कर दो। मंडप बन जायगा मंडप निर्माणके इस उपायको सुनकर सभी ग्रामके प्रधान पुरुष बोलने लगे, हाँ जी! यह तो ठीक है, ऐसा ही करना चाहिए। इसप्रकार निर्णय कर सब भोजनके लिए अपने २ घर गए और भोजन कर फिर लौट आए। शिलाके नीचे खोदका काम आरम्भ किया और कुछही दिनोंके बाद मण्डपका काम भी सम्पूर्ण हो गया, आदेशके अनुकूल ही शिलाकी छत बना दी गई तब ग्रामके लोगोंने जाकर राजासे निवेदन कर दिया कि श्रीमानकी आज्ञा पूरी कर दी गई है। राजाने पूछा-कैसे! तब सबोंने मण्डप बनानेकी सारी कथा कह डाली। राजाने पूछा-यह किसकी बुद्धि है! सबने कहा कि देव! यह भरत-पुत्र रोहककी बुद्धि है। यह रोहककी उत्पातबुद्धिका प्रथम उदाहरण हुआ १।

मिण्ढ- मेंढेका उदाहरण—कुछ समयके बाद फिर राजाने रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिए एक मेंढा भेजा और साथही यह सूचना भी देदी

कि यह मेंढा आज जितना वजनमें है एक पक्षके बाद भी उतना ही रहना चाहिए, न घटे और न बढ़े ही, बराबर वजनसे पीछे हमको सौंप देना। उपरोक्त हुक्म मिलते ही सब गामवाले व्याकुल हो गए कि यह कैसे हो सकता है! अगर खानेको अच्छा देंगे तो बढ़ेगा और खानेको नहीं देंगे तो घटेगा ही। फिर क्या करना चाहिए! उपाय नहीं दिखनेपर सबोंने रोहकको बुलाया और कहा कि वत्स! पहले भी आपने बुद्धिरूप बांधसे राज-दण्डरूप सागरसे तुमनेही हम सबोंको पार किये थे, आज फिर समय आया है कि तुम अपने उस बुद्धिबलसे गांवको कष्टसे मुक्त कर दो। इसप्रकार भूमिकाके साथ ग्रामवासियोंने जिस आज्ञाको पूर्ण करना उनकी शक्तिके बाहर था वह आज्ञा रोहकको सुना दी। इसपर रोहकने बुद्धिबलसे ऐसा मार्ग निकाला कि जिससे, एक पक्षको कौन गिने, कई पक्षतक मेंढा उतनाही वजनमें रहा जितना कि आज है, सब लोग इससे प्रसन्न हो गए और रोहकके कहे मुताबिक व्यवस्था कर दी। मेंढेको प्रतिदिन पर्याप्त घास व जव आदि समय २ पर खिलाया जाता और सामने एक वृक ( बघेरा ) भी रख दिया गया जिससे डरता रहे, भोजनकी अधिकता एवं वृकका भय दोनोंने मिलकर उस मेंढेको न तो घटने दिया न बढ़नेही दिया। एक पक्ष बीतनेपर मेंढा उसी हालातमें पीछा राजाको लौटा दिया गया। राजाने वजन किया तो पूरा निकला, ( घटा बढ़ा कुछ नहीं ), यह उत्पातबुद्धिका दूसरा उदाहरण हुआ ॥ २ ॥

कुक्कुट-मुर्गा-कुछ दिनोंके बाद फिर रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिये राजाने ग्रामवालोंके पास एक कुक्कुट भेजा, और उसके साथ ऐसी आज्ञा भेजी कि बिना दूसरे कुक्कुटके इस कुक्कुटको लड़ाकू बनाकर भेजो। ऐसी राजाज्ञाको सुनकर फिर सभी रोहकके पास आए, तथा सारी बातें उससे कह सुनाई। इसपर रोहकने एक साफ तथा बड़ा दर्पण मंगवाया, उस दर्पणको कुक्कुटके सामनेमें रखवा दिया, दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको दूसरा कुक्कुट समझकर उसके साथ वह राजकुक्कुट लड़ने लगा, क्यों कि तिर्यग्जाति जड़बुद्धि होती है। इस प्रकार दूसरे कुक्कुटके अभावमें भी राजकुक्कुटको लड़ते देख ग्रामवासी लोग रोहककी बुद्धिपर मुग्ध हो गए। कुछ कालके बाद राजकुक्कुट राजाको लौटा दिया गया। अकेला ही कुक्कुट लड़ाकू बना, इस बातकी राजाने परीक्षा की, यही घटना देखकर राजा बहुत खुश हुआ ॥ ३ ॥

तिल-कुछ दिनोंके बाद राजाने फिर रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिए उस गांवके लोगोंको अपने यहां बुलाया, तथा कहा कि तुम सबोंके सामने जो तिलके ढेर पड़े हैं उन्हें बिना गिने कहो कि ये कितने हैं! मगर देखो इसमें अधिक देर न लगे। इसपर सभी ग्रामीण लोग चिन्तित हो गये तथा उत्तरके लिए रोहकके पास दौड़ आए। रोहकने कहा कि राजा पगला है, ऐसा भी कहीं प्रश्न होता है! अस्तु, जाओ और उससे बोलो कि महाराज!

हम गणितज्ञ तो नहीं हैं जिससे आपको तिलोंकी एक संख्या कहें। फिर भी आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके उपमासे कहते हैं-गांवके ऊपर इस आकाशमें जितने तारे हैं बस उतनी संख्यामेंही इस ढेरमें तिल हैं। सबोंने राजाके पास आकर ऐसाही कह सुनाया। राजा मनही मन लज्जित हो गया॥ ४॥

बालुक-बालू-कुछ दिनोंके बाद राजाने रोहककी परीक्षाके लिए फिर एक आज्ञा गांववालोंके नाम निकाली कि तुम्हारे गांवके पास सबसे बढ़ियाँ बालू है इसलिए उस बालूसे एक मोटी डोरी बनाके शीघ्र भेज दो। लोगोंने रोहकसे कहा तब रोहकने अपने बुद्धिबलसे राजाको जवाब भेजा कि हम सब नट हैं, नाचना जानते हैं, किन्तु डोरी बनाना नहीं जानते, लेकिन राजाका आदेश अवश्य पालनीय है इसलिए प्रार्थना है कि आपके राज-भवनमें कोई पुरानी बालूमय डोरी हो तो नमूनेके तौरपर भेज देवें, जिससे कि हम उसके अनुसार नवीन डोरी बनाकर भेज देंगे। गांववालोंने इसी प्रकार रोहककी बात राजासे निवेदन कर दी। राजा भी निरुत्तर हो चुप रह गया॥ ५॥

हस्ती-हाथी-कुछ दिनोंके बाद फिर राजाने एक पुराना मरणप्राय हाथी गांववालोंके पास भेजा तथा ऐसा आदेश दिया कि यह हाथी मरा है ऐसा नहीं कहना तथा उसकी दैनिक वार्त्ता निवेदन करते रहना, अन्यथा भारी दण्ड मिलेगा। इस तरह राजाकी आज्ञा सुनकर सभी लोग सभासे बाहर आए और रोहकसे इसका उपाय पूछने लगे। रोहकने जवाब दिया कि इस हाथीको बराबर धान्य खानेको देते रहो पीछे जो होगा उसे मैं समझ लूंगा। इस प्रकार रोहककी बातसे गांववालोंने हाथीको धान्य आदि खिलाया किन्तु वह तो रातको ही सुरपुर सिधार गया। तब रोहकके कथनानुसार सबोंने राजासे आकर निवेदन किया कि देव! आज हाथी न तो बैठता है, न उठता है, न खाना खाता है, न मलत्याग करता है, न श्वासोच्छ्वास ही लेता है, विशेष क्या कहूँ सचेतनताकी एक भी चेष्टा नहीं करता है। तब राजाने पूछा अरे! क्या तो हाथी मरगया? ग्रामीणोंने जवाब दिया कि देव! श्रीचरण ऐसा कह सकते हैं हम लोग नहीं। इसपर राजा चुप हो गया, और ग्रामीण लोग सहर्ष अपने घर चले आए॥ ६॥

अगड-कूप-कुछ दिनोंके बाद राजाने फिर आदेश निकाला कि तुम्हारे ग्रामका जो सुस्वादु जलपूर्ण कूप है उसको शीघ्रही यहाँ भेज दो। आदेशको सुनकर सभी चकित हुए, और रोहकसे इसका उपाय पूछने आए। रोहक बोला-राजासे जाकर यह अर्ज करो कि ग्रामीण कूप स्वभावसे ही डर पोक होता है और सजातीयके विना उसको अन्य किसीपर विश्वास भी नहीं होता। इसलिए एक नागरिक कूप भेज देव, जिसपर विश्वास कर यह उसके साथ यहाँतक चला आयगा। लेनेके लिये आये हुए राजपुरुषने जाकर राजासे

इसी प्रकार निवेदन करदिया। राजा भी अपने मनमें रोहककी बुद्धिमत्ताको विचारकर चुप रह गया ॥ ७ ॥

वणसंडे-वनखंड-कुछ दिनोंके बाद राजाने फिर हुक्म दिया कि ग्रामके पूर्व दिशामें वर्त्तमान वनखण्डको पश्चिम दिशामें कर दो। उसी समय रोहकके बुद्धिबलसे ग्रामीण लोग वनखंडके पूर्वदिशामें ठहर गए (याने पूर्वकी तरफही गाव बना लिया) फिर तो वनखंड गावके पश्चिममें हो गया। आदेशको पूरा हुए देखकर राजपुरुषने राजासे निवेदन करदिया ॥ ८ ॥

पायस खीर-फिर कुछ दिनोंके बाद राजाने आदेश दिया कि बिना अग्नि-संयोगके ही पायस (खीर) पकाके भेजो। इस अपूर्व बातको सुनकर सभी ग्रामीण लोक क्षुब्ध हुए और रोहकसे पूछने लगे तब रोहक बोला कि जलमें अच्छी तरह चावलोंको भींगोके सूर्यकी किरणोंसे खूब तपे हुए कोयले या पत्थरपर चावलोंकी थाली रखदो, इससे कुछ समयमें खीर बनकर तैयार हो जायगी। लोगोंने ऐसाही किया और पायस तैयार कर राजासे निवेदन कर दिया, राजा भी रोहककी बुद्धिमत्ता देखकर बड़ा विस्मित हुआ ॥ ९ ॥

अइय-अतिग-इसप्रकार रोहककी तीव्र बुद्धि समझकर राजाने उसको अपने पास बुलाया, मगर यह शर्त रक्खी कि मेरे आदेशोंको पूरा करनेवाला बालक न शुक्ल पक्षमें आवे न कृष्णपक्षमें न रात्रिमें और न दिनमें, तथा छाया व धूपमें भी नहीं आवे, न आकाशसे आवे न पांवसे न मार्गसे आवे न उन्मार्गसे, न नहाके आवे और न बिना नहाए, किन्तु आवे जरूर। उपरोक्त आदेशको सुनकर रोहकने कण्ठस्नान किया और रथके चक्रकी धाराके ऊपरपर बैठकर संध्यासमयमें चालनीका छत्र धारण किए हुए अमावस्या व प्रतिपतके संयोगमें वह राजाके पास चला गया। 'खाली हाथ राजासे नहीं मिलना चाहिए', इस लोकोक्तिको विचारकर रोहकने एक मिट्टीका पिण्ड हाथमें ले लिया और राजाके पास जाकर प्रणामके बाद वह पृथ्वी-पिंड आगे रख दिया। राजाने पूछा-अरे रोहा! यह क्या? तब रोहा बोला-महाराज! आप पृथ्वीपति हैं इसलिए मैं पृथ्वी लाया हूँ। प्रथम-दर्शनमें इसप्रकार मंगल-वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और गावके लोग सब प्रमुदित हो चले गए ॥ १० ॥

अजे-अजा-राजाने प्रसन्न होकर रोहकको रातमें अपने पासही सुलाया और शेष लोग भी बाजूमें सुलाये गये। रातके प्रथम पहर बीतनेपर राजाने रोहकसे पूछा-क्या रे! जगा है या सोया? रोहक बोला-महाराज! जगा हूँ।

१ (यद्यपि वृत्तिकारने अजाका उदाहरण १२ वां और पत्रका दृष्टान्त ११ वां दिया है, लेकिन मूलमें पहले अजाका निर्देश किया है इसलिए यहां अजोदाहरणके बाद पत्रका दृष्टान्त दिया जायगा)।

राजा-तब क्या सोचता है ? वह बोला देव ! अजा-बकरी-के पेटमे चक्रसे उतरी हुईकी तरह गोल २ गोलियां क्यों होती हैं ? उसके ऐसा बोलनेपर संशययुक्त हो राजाने कहा-तुमही कहो क्यों होती है ! वह बोला-देव ! संवर्त्तनामक वायुविशेषसे वैसा होता है । ऐसा कहकर रोहक सो गया ॥११॥

पत्ते-पत्र-रातको दो पहर बीत जानेपर फिर राजाने कहा कि अरे ! सोता है या जगा है ! वह बोला-देव ! जागता हूँ । तब क्या सोचता है ! वह बोला कि देव ! पीपलके पत्तेका दण्डका भाग बडा है या आगेका भाग-शिखा ! उसके ऐसा कहनेपर संशयाकुल हो राजाने कहा-अच्छा सोचा किन्तु इसमें निर्णय क्या हुआ ? तूं ही कह । रोहक बोला कि देव ! जबतक की आगेका भाग नहीं सूखता है तबतक दोनों समान हैं । इसपर राजाने पासके दूसरे लोगोंसे पूछा, उन सबोंने भी कहा ठीक है । इसके बाद रोहक सो गया १२ ।

खाडहिला—रातके तीसरे पहर बीतनेपर राजाने फिरसे पूछा-क्यों रे ! जागता है या सोता ! उसने जवाब दिया-महाराज ! जागता हूँ । तब क्या सोचता है ! वह बोला-देव ! खाडहिला जीवको जितना बडा शरीर होता है उतना ही बडा पुच्छ है या कुछ कम विशेष ! इसके निर्णयमें भी अपनेको असमर्थ देख राजाने कहा-अच्छा, तो तुमने क्या निर्णय किया है ! वह बोला-देव ! दोनों बराबर होते हैं ऐसा कह कुछ समय रोहक सो गया ॥१३॥

पचपियर-पंचपितर-इधर सुबहके मंगलमय वाद्य सुनकर राजा जगा तथा रोहकको पुकारा । वह गाढ निद्रामे लीन होनेके कारण जवाब नहीं दे सका । तब राजाने उसको गीली बेतसे तनिक स्पर्श कर दिया । जिससे वह जग उठा । राजाने पूछा-क्या रे । सोता है ! वह बोला-नहीं जागता हूँ । अच्छा तो फिर क्या सोचते हुए मौन है ! बोल क्या सोचता है ! वह बोला कि देव ! यही सोचता हूँ कि आप कितनेसे पैदा हुए हैं । रोहकके ऐसा कहनेपर राजा शर्माकर कुछ समय चुप रहा और फिर बोला कि अच्छा ! कह मैं कितनेसे पैदा हुआ हूँ ! वह बोला-आप पांचसे पैदा हुए हैं । राजाने फिर पूछा-किस किससे ! रोहक बोला-देव ! एक तो कुबेरसे, क्यों कि उसके सदृश ही आपकी दानशक्ति है । दूसरे चाण्डालसे, क्या कि वैरीसमूहके प्रति आप चाण्डालवत् ही क्रूर हैं । तीसरे धोबीसे क्या कि धोबीकी तरह दूसरेको पीडा पहुँचाके उसका सब धन हर लेते हैं । चौथे बिच्छूसे, क्यों कि बिच्छूकी तरह निद्राधीन बालकको भी ईलि कंबिकाग्रसे डंश मार आपने जगा दिया । पांचवे अपने पितासे, क्यों कि पितावत् आपभी न्यायका परिपालन करते हैं । उपरोक्त सहेतुक वार्ता सुनकर राजा चुप हो गया और प्रात काल शौचादि कृत्य कर मांको प्रणाम करने गया । प्रणामके बाद मांसे अपनी असलियत के लिए प्रश्न किया व रोहककी कही सारी बात कह डाली । माताने उत्तर दिया कि विकारी इच्छासे देखना यदि तेरे संस्कारका कारण हो तो ऐसा जरूर हुआ है । नहीं तो सकलजगत्

सिद्ध असलियतमें तो तुम्हारे एकही पिता हैं। इसप्रकार माकी बात पूर्ण हो जानेपर राजा प्रणाम कर रोहककी बुद्धिपर विशेष चकित होता हुआ अपने महलको चला आया और समयपर रोहकको सब मन्त्रियोंमें मूर्द्धन्य बना दिया १४। ये रोहककी औत्पत्तिकी बुद्धिके उदाहरण है।

मूल-गाथा-७१

भरहसिल १ पणिय २ रुक्खे ३, खुड्डग ४ पड ५ सरड ६
काय ७ उच्चारे ८। गय ९ घयण १० गोल ११ खंभे १२,
खुड्डग १३ मग्गि १४ त्थि १५ पइ १६ पुत्ते १७ ॥३॥

७२ ॥ महुसित्थ १८ मुद्दि १९ अंके २०, (अ) नाणए २१ भिक्खु
२२ चेडगनिहाणे २३। सिक्खा २४ य अत्थसत्थे २५,
इच्छा य महं २६ सयसहस्से २७ ॥ ४ ॥

छाया-गाथा-७१

भरतशिला १ पणित २ वृक्षाः ३ क्षुल्लक ४ पट ५ सरट ६
काकोच्चाराः ७, ८। गज ९ घयण (भाण्ड) १० गोलक
११ स्तम्भाः १२, क्षुल्लक १३ मार्ग १४ स्त्री १५ पति १६
पुत्राः १७ ॥ ३ ॥

७२ ॥ मधुसिक्थ १८ मुद्रिका १९ अङ्काः २०, ज्ञायक २१ भिक्षु
२२ चेटकनिधानानि २३। शिक्षा २४ [illegible] अर्थशास्त्रम् २५,
इच्छा च महत् २६ शतसहस्रम् २७ ॥ ४ ॥

टीका—गाथार्थ ७१-७० भरतशिला १ पणित (जूआबाजी) २ वृक्ष ३ क्षुद्रक ४ पट-वस्त्र ५ सरट (जन्तुविशेष) ६ काक ७ उच्चार ८ हाथी ९ और घृतभांड १० गोलक ११ स्तम्भ १२ क्षुद्रक १३ मार्ग १४ स्त्री १५ पति १६ और पुत्र १७ ॥ ३ ॥

इन सब उदाहरणोंसे भी औत्पत्तिकी बुद्धिका परिचय दिया गया है, जो इसप्रकार है।

१ भरतशिला—इसका उदाहरण पहले रोहककी बुद्धिके उदाहरणोंमें दे आए है।

२ पणित-कोई ग्रामीण किसान अपने ग्रामसे ककड़ियें लेकर नगरमे बेचनेको गया। नगरके द्वारपर जातेही उसे एक धूर्त नागरिक मिल गया। उस धूर्त नागरिकने ग्रामीण किसानको भोला समझकर ठगना चाहा और इसलिए धूर्ततासे बोला कि क्या! एक आदमी इन सब ककडिओंको नहीं खा सकता है। इसपर ग्रामीण बोला-किसकी ताकत है जो इतनी ककडिऐं खा लेगा।

नागरिक बोला-अगर मैं खा जाऊँ तो क्या दोगे! इस बातको असंभव मानते हुए ग्रामीणने कहा कि अगर खा जाओ तो जो इस द्वारसे नहीं आसके ऐसा बड़ा लड्डू इनाम दूँगा। इसपर उन दोनोंने साक्षी बनाकर प्रतिज्ञा कर ली। बाद उस नागरिकने ग्रामीणकी सारी ककडियें जूँठी करके छोड दी और ग्रामीणसे कहा कि मैंने सारी ककडिएँ खा ली है अतः अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार द्वारसे नहीं आनेलायक बडा लड्डू मुझको दो। इसपर ग्रामीण बोला कि तुमने मेरी सारी ककडी खाईही नहीं फिर मैं उतना बडा मोदक कैसे दूँ! इसपर नागरिक बोला कि मैंने तुम्हारी सारी ककडिएँ खा डाली फिर भी विश्वास नहीं हो तो बाजारमें रखकर परीक्षा कर लो। इसको ग्रामीणने कबूल किया। तब दोनोंने ककडियाँ सजाकर बाजारमें बेचनेके लिए रखदी। खरीदनेवाले आप मगर कहने लगे कि अजी! ये तो सारी ककडिएँ खाई हुई हैं। इस तरह लोगोंके कहनेपर नागरिकने ग्रामीणको तथा साक्षीको विश्वास उत्पन्न करा दिया! अब ग्रामीण तो क्षुब्ध हो गया कि मैं इसको द्वारमें नहीं आ सके उतने परिमाणका मोदक कैसे दूं! तब इसप्रकार व्याकुल हो उस ग्रामीणने नागरिकधूर्तसे पीछा छुडानेके लिये भयसे उसको एक रुपया देना चाहा, किन्तु वह धूर्त इतनेपर राजी नहीं हुआ। आखिर ग्रामीणने १०० रुपयातक देना कबूल कर लिया, किन्तु धूर्तको कुछ अधिक मिलनेकी आशा थी, अतः उसने उतनेको स्वीकार नहीं किया। इसपर वह ग्रामीण सोचने लगा कि हाथी हाथीसेही हटाया जाता है वास्ते किसी धूर्त नागरिककी शरण लेनी चाहिए। ऐसा सोचकर उस ग्रामीणने नागरिकसे कुछ दिनोंका अवकाश लिया तथा नगरमें घूमकर किसी धूर्त नागरिकसे मित्रता करली एवं अपनी सारी घटना कहकर उससे बचनेकी उचित सम्मति मांगी। उसने ग्रामीणको उस धूर्तसे छूटनेका उपाय बता दिया जिसके अनुसार ग्रामीणने बाजारसे एक लड्डू लेकर नगरके दरवाजेके बीच रख दिया और प्रतिपक्षी नागरिक धूर्त एवं साक्षियोंको बुला लिया तथा उनके सामने बोला कि अरे मोदक! चले आओ चले आओ, किन्तु मोदक द्वारसे तिलभर भी विचलित नहीं हुआ, तब ग्रामीणने उपस्थित लोगोंसे कहा कि मैंने आप लोगोंके सामने यही प्रतिज्ञा की थी कि अगर पराजित हो जाऊँगा तो ऐसा मोदक दूँगा जो इस द्वारसे नहीं आ सके सो यह मोदक द्वारसे नहीं आता आप भी बुला कर देख सकते हैं। अतः अब मैं प्रतिज्ञासे मुक्त हो गया हूँ साक्षी एवं इतर लोगोंके ऐसा स्वीकार कर लेनेपर वह धूर्त नागरिक भी लज्जित हो घर गया। तथा ग्रामीण भी धूर्तसे पीछा छूट जानेसे प्रसन्न होता हुआ गाँवको चला गया। यह प्रतिद्वन्द्वी धूर्त तथा नागरिक धूर्तकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

३ रुक्खे-वृक्ष-वृक्षका उदाहरण इस प्रकार है-किसी जंगलमें आम लेनेके इच्छुक कुछ बटोहियोंको एक बन्दर बाधा देने लगा। इसपर बटोहीने स्वबुद्धिसे उपाय सोचा और बन्दरके ऊपर पत्थर फेंकना शुरू किया। बन्दरने

भी बदलेमें रोषयुक्त होकर बटोहीको मारनेके लिये आमके फल तोड़कर फेंकना आरम्भ कर दिया। बटोहियोंके अभीष्ट मनोरथ अनायासही पूरे हो गये। यह पथिककी औत्पत्तिकी बुद्धिका उदाहरण हुआ।

खुड्डग—अंगुलीयाभरण-( अंगूठी ) इसका उदाहरण इस प्रकार है, अढाई हजार वर्षसे पूर्व राजगृह नगरमें प्रसेनजित नामका राजा राज्य करता था। उसको बहुतसे पुत्र थे। किन्तु उन सबमें केवल एक श्रेणिकही राजाको राजलक्षणसम्पन्न पुत्र मालूम हुआ। श्रेणिकको अधिक आदर व प्यार करनेसे शेष राजकुमार ईर्ष्यावश उसे मार देंगे इसलिये प्रसेनजित उसको न तो कुछ अच्छी वस्तु देता और न बातसे ही लाड़प्यार करता। केवल अंतरंगरूपसे उसका ध्यान रखता था। पिताके इस व्यवहारसे खिन्न होकर एक दिन श्रेणिक बिना कुछ साथ लिएही राजभवनसे निकल पड़ा तथा चलते चलते कुछही समयमें वह बेन्नातट नगरमें जा पहुँचा, और विभवसे क्षीण निर्धन बने हुए एक शेठकी दुकानपर जाके बैठ गया। शेठने उसी रात स्वप्नमें अपनी लड़कीका विवाह किसी रत्नाकरसे होते देखा था। इधर श्रेणिकके पुण्य-प्रभावसे शेठके यहाँ कई दिनोंकी खरीदके रखखी हुई चीजें एकदम बिकने लगीं। इससे उस दिन शेठको बहुत आशातीत लाभ हुआ। इसके सिवाय म्लेच्छोंके द्वारा लाये गए कई बहुमूल्य रत्न भी अल्प मूल्यमें ही मिल गये। सहसा इस प्रकारके अचिन्त्य लाभको देखकर शेठको विस्मय हुआ। उसने इसका कारण सोचा तो मालूम हुआ कि यह जो मेरी दुकानके बाहरी बाजूमें पुण्यवान् पुरुष बैठा है उसीके अतिशय पुण्यका यह प्रभाव है। जबसे यह आके बैठा है, तभीसे मुझको व्यापारमें अधिक लाभ होने लगा है। इसका ललाट एवं भव्याकार भी इसके पुण्यातिशयकी साक्षी देता है। मैंने जो गत रातमें अपनी कन्याका रत्नाकरसे पाणिग्रहण होनेका स्वप्न देखा है वह रत्नाकर वास्तवमें यही है। इस प्रकार विचार करनेके बाद शेठने विनयपूर्वक हाथ जोड़ श्रेणिकसे पूछा कि महाभाग! आप किसके यहाँ पाहुने हैं? व कहाँसे पधारे हैं? श्रेणिकने भद्रतासे जवाब दिया कि अभी तो आपहीके यहाँ आया हूँ। श्रेणिकके उपरोक्त इष्ट वचनको सुनकर शेठ बहुत प्रसन्न हुआ और बहुमानके साथ श्रेणिकको अपने घर ले गया। तथा अपने भोजनसे भी विशिष्ट भोजनके द्वारा उसका सत्कार किया। शेठके यहाँ प्रतिदिन विशेष धनवृद्धि होने लगी। कुछ दिनोंके बाद प्रसन्न होकर शेठने अपनी लड़की नन्दाके साथ श्रेणिकका सम्बन्ध-विवाह कर दिया। श्रेणिक भी उस नन्दाके साथ सांसारिक सुखको अनुभव करता हुआ रहने लगा। कुछ दिनोंके बाद नन्दाको गर्भाधान हुआ। इधर राजा प्रसेनजित श्रेणिकके चले जानेपर कुछ चिन्तातुर बन गया तथा खोज करते २ प्रसेनजितको ऐसा मालूम हुआ कि श्रेणिकका बेन्नातट किसी शेठकी कन्यासे विवाह हो गया और वह वहाँ सुखपूर्वक रहता है। अब प्रसेन

जितको ऐसा मालूम हुआ, तब अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर राजाने श्रेणिकको बुलानेके लिये आदमी भेजे। भेजे हुए राजपुरुषोंने वेन्नातटमें आकर श्रेणिकसे विनती की कि देव! महाराज प्रसेनजित आपको जल्दी बुलाते है, अत आप शीघ्र चल। श्रेणिक भी पीताकी आज्ञाको शिरोधार्य समझकर व सगर्भा नंदासे पूछकर राजपुरुषोंके साथ राजगृहीको चल दिया। जाते समय अपना परिचय व निवास आदि पत्नीकी जानकारीके लिए भीतके किसी एक भागपर लिख दिया। तीन महिने बीत जानेपर नंदाको ऐसा दोहद-मनोरथ उत्पन्न हुआ कि हाथीपर बैठी हुई सब लोगोंको द्रव्यदान देती हुई मै अभयदान करू अर्थात् भयभीत प्राणियोंको निर्भय करूँ। नंदाके पिताको जब यह बात मालूम हुई तब राजाकी अनुमति लेकर उसने उसका मनोरथ पूर्ण कर दिया। कालक्रमसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए पुत्ररत्नका जन्म हुआ। बारहवे दिन दोहदके अनुसार पुत्रका अभयकुमार यह नाम रक्खा गया। कुमार भी नंदनवनके कल्पवृक्षकी तरह सुखपूर्वक बढने लगा। यथासमय कलाओंका अध्ययन कर कुमार सुयोग्य बन गया। एक दिन उसने अपनी मातासे पूछा कि मां! मेरे पिता कौन एवं कहाँ है? माताने मूलसे लेकर सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा उनका लिखा हुआ वह परिचय लेख भी दिखा दिया। अपना पिता राजगृहम ही राजा है इस प्रकार माताके वचन व लेखसे समझकर अभयकुमार अपनी मासे बोला कि मा! हम सब भी साथसे राजगृह चले तो पिताजीसे मिलना हो जायगा, एक विचार हो जानेपर दोनों मांबेटे राजगृह चले आए। फिर नगरीके बाहर उद्यानमें माताको छोडकर अभयकुमार नगरीका हाल समझने व पिताको परिचय देने तथा दर्शन करनेके लिए खुद नगरीम गया। वहाँ जाते ही एक सूखे (निर्जल) कूपके पास अभयकुमारने बहुतसे लोगोंको चारों तरफ इकट्ठे देखा। तब उसने एकसे पूछा कि भाई! यहाँ लोगोंका यह जमाव क्यों है? उत्तरमे किसीने कहा कि राजाका अगुलीयाभरण (अगूठी) इस कूपमे गिरा हुआ है। कूपके बाहर खडे रहकर जो इसको निकाल ले उसको राजा बहुत बडी वृत्ति देता है। उसीको निकालनेके उपायोंकी खोजम ही यहाँ सब लोक खडे है। अभयकुमारने पासमे खडे राजपुरुषोसे विशेष निर्णयके लिए पूछा, उन लोगोंने भी ऐसाही कहा, तब अभयकुमार बोला कि मैं बाहर खडा रहकेही निकाल लेता हूं, मगर राजाको अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी होगी। इसपर राजपुरुष बोले-अच्छा! तुम निकालो, राजा अपनी प्रतिज्ञा जरूर पालन करेगा। अभयकुमारने उस अगूठीको अच्छीतरह देखकर उसपर गीला गोवर गिरा दिया जिससे अंगुलीका वह आभरण गोवरम मिलगया और कुछ समयके बाद गोवरके सूख जानेपर कूपको पानीसे भरदिया इससे वह अगुलीयक भी गोवरके साथ ऊपर आके तिरने लगा। उसी समय अभयकुमारने बाहर खडे २ ही अंगुलीयक निकाल लिया, जिसपर लोगोंमें हर्षजन्य बहुत कोलाहल

सुनाने लगा। वैद्यने अच्छी तरह परीक्षा की तो मालूम हुआ कि इसको केवल भ्रम हुआ है और कुछ नहीं, ऐसा सोचकर वैद्यने कहा कि मैं तेरा रोग मिटा देता हूँ किन्तु सौ रूपये लूँगा। इसपर उसने स्वीकार करलिया। तब वैद्यने उसको विरेचक दिया और एक मिट्टीके मांडमें लाक्षारससे भरा हुआ सरट रखके उसको मलत्याग करनेको कहा। विरेचन साफ हो जानेपर वैद्यने मांडसे सरट निकालके दिखाया कि देखो यह निकल गया है। तत्कालही उसकी शंका दूर होगई और वह नीरोग तथा कुछही समयमें शरीरसे सबल होगया। यह हुई वैद्यकी औत्पत्तिकी बुद्धि।

७ काग-काक-कौएका दृष्टान्त इस प्रकार है-वेन्नातटमें एक बौद्ध भिक्षुने किसी जैनसे पूछा कि अजी! तुम्हारे देव सर्वज्ञ हैं और तुम उनके भक्त हो तो कहो कि इस गांवमें काग (कौए) कितने हैं? इसपर वह आर्हतभक्त सोचने लगा कि यह शठ है सरलतासे केवल समझनेवाला नहीं है, वास्ते ऐसाही उत्तर देना चाहिए। इस प्रकार सोचके वह बोला कि साठ हजार काग इस गांवमें रहते हैं, अगर कभी इनमसे कुछ बाहर जाते हैं तो कम हो जाते हैं और जब कुछ बाहरसे मेहमान आते हैं तो बढ जाते हैं। बौद्ध भिक्षु इसकी जांच अशक्य जानके सिर खुजलाता हुआ चुपचाप चला गया। यह हुआ क्षुल्लककी औत्पत्तिकी बुद्धिका दृष्टान्त।

८ उच्चार-मलपरीक्षा—उदाहरण इस प्रकार है-किसी शहरमें एक ब्राह्मण रहा करता था। उसकी स्त्री सुन्दरता व प्रौढावस्थाके कारण अधिकतासे काममें उन्मत्त रहा करती थी। एकदिन वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ देशान्तरको जा रहा था, रास्तेमें ब्राह्मणको एक धूर्त मिल गया और ब्राह्मणीके साथ कुछ बात करके उसने उसको अपने प्रेममें खींच लिया। कुछ दूर जाकर धूर्तने ब्राह्मणसे विवाद करना शुरू किया और बोलने लगा कि यह स्त्री मेरी है, वास्ते इधर मत आओ। तब ब्राह्मण बोला-अजी। नहीं, यह तो मेरी स्त्री है। विवाद बढ जानेसे दोनों न्याय करानेके लिए राजकुलमें पहुँचे। अधिकारियोंने दोनोंका मामला समझकर दोनोंको अलग २ करदिए और उनसे पूछा कि तुमने कल क्या खाया था? ब्राह्मणने कहा-मैं अपनी स्त्रीके साथ कल तिलका मोदक खाया था, धूर्तने कुछ और ही कहा, जब विरेचन देकर परीक्षा की गई तो ब्राह्मणका कथन सत्य निकला। तब उसी समय न्यायाधीशने ब्राह्मणको उसकी स्त्री दिला दी और धूर्तको दण्ड देकर निकाल दिया।

९ गय-गज (हाथी)-से बुद्धि परीक्षाका उदाहरण इस प्रकार है-वसंतपुरके राजाने अतिशयबुद्धिसम्पन्न मन्त्रीको पानेके लिए चतुष्पथ (चौक) में आलानस्तम्भपर एक हाथी बंधवा दिया और साथही यह घोषणा करवाई कि इस हाथीको जो तोल देगा उसको राजा बडी वृत्ति (बख्शीस) देगा।

सावधानीपूर्वक उस गोलीको थोडीसी गरम करके सर्वथा निकाल ली। यह सुवर्णकारकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१२ खम-स्तम्भ-का उदाहरण, जैसे-किसी योग्य मन्त्रीकी तलाशमें एक राजाने शहरके बडे तालाबके बीच एक स्तम्भ लगवाया और ऐसी घोषणा करवाई कि जो किनारेपर खडे होकर इस स्तम्भको डोरीसे बांधेगा उसको राज्यकी ओरसे लाख रुपये इनाम मिलेंगे। इस प्रकारकी घोषणा सुनकर एक बुद्धिमान् पुरुषने वैसा करना कबूल करलिया। उसने किनारेपर एक कील गडवादी तथा डोरीको उससे बांधकर चारों किनारे डोरीको लिये हुए घूम आया। इससे वह मध्यका स्तम्भ डोरीसे बँधगया। उसकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न होकर राजा भी उसको अपना मन्त्री बनालिया। यह उस पुरुषकी स्तम्भबन्धनकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१३ खुड्डग-क्षुल्लक (बालक)का उदाहरण जैसे-किसी नगरमें अतिकुशल कर्मा एक परिव्राजिका रहती थी उसने राजाके पास यह प्रतिज्ञा की कि मैं सबकुछ कर सकती हूँ। मुझे कोई भी कलामें पराजित नहीं कर सकता। इस पर राजाने घोषणा करवा दी कि अगर कोई अपनेको श्रेष्ठ कलाकार समझता हो तो कलामें इस परिव्राजिकाको जीत ले मैं उसे बहुत इनाम दूंगा। भिक्षाके लिये घूमते हुए किसी क्षुल्लकने घोषणा सुनी और राजासे निवेदन किया कि कल मैं परिव्राजिकाको हरा दूंगा। किन्तु अपराधकी क्षमा मिलनी चाहिये। राजाने उसको खुशी इजाजत दी। इसपर परिव्राजिका मुंह बनाती हुई बोली कि यह छोटासा है मुझसे क्षुल्लक क्या जीतेगा! परिव्राजिकाके ऐसा कहनेपर क्षुल्लकने अपनी लंगोट हटाली और नग्नमुद्रासे नृत्य व अनेकविध अद्भुत आसन कर दिखावे फिर परिव्राजिकासे बोला कि अब आप अपनी कुशलता दिखलाइये इसी नग्न मुद्रासे आसन आदि होने चाहिए। ऐसा करनेमें असमर्थ परिव्राजिका हार मानकर लज्जित हो घर चली गई। लोगोंने क्षुल्लककी जीत घोषित करदी यह उसकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१४ मग्ग-मार्ग-का उदाहरण जैसे—कोई पुरुष अपनी भार्याको लेकर वाहनसे दूसरे गांव जा रहा था। बीचमें किसी जगह शरीरचिन्ताके लिए उसकी स्त्री नीचे उतरी और कुछ दूर जाकर शंकानिवारण करने लगी। इतनेहीमें एक उस जङ्गलमें रहनेवाली व्यन्तरी व्यामुग्ध पुरुषके सौन्दर्य आदि पर मुग्ध हुई उसी स्त्रीके रूपसे जल्दीमें आकर वाहनपर आरूढ हो गई। जब वह अपनी स्त्री शरीरचिन्ता निवारण कर वाहनके पास आई तो अपने सदृश रूपवाली किसी अन्य स्त्रीको वाहनपर बैठी देखी। व्यन्तरीने उसको पास आई देखकर पुरुषसे कहा कि यह कोई व्यन्तरी मेरासा रूप बनाकर

१ टीकामें इसका अन्यरीत्या वर्णन है और हमने कुछ परिवर्तन किया है—सम्पादक

टीका गाथार्थ ७१—मधुच्छत्र १७ मुद्रिका १८ अङ्क १९ नाणक १० भिक्षुक ११ चेटक ( बालक ) १२ और निधान १३ शिक्षा १४ अर्थशास्त्र १५ बड़ी इच्छा १६ सौ हजार १७। इन सबोंके दृष्टान्त निम्नप्रकार हैं, जैसे—

१७ महुसित्थ-मधुसिक्थ-मधुच्छत्र—किसी पहाडी छोटी नदीके दोनों किनारेपर कुछ धीवर ( मछुए ) रहते थे। दोनों ( किनारेवाला ) मे जातीय सम्बन्ध होनेपर भी आपसमें मनमुटाव था। इसलिए दोनों किनारेवालोंने अपनी २ स्त्रीको पर तीर जानेकी मनाई करदी थी। किन्तु धीवरलोग जब अपने २ व्यवसायके लिए बाहर चले जाते तब उनकी स्त्रियाँ एक दूसरेके यहाँ आती जाती थी। एक धीवरीने एकदिन उस पारसे अपने घरके पास कुंजमें मधुच्छत्र देखा। दूसरे दिन उसका पति जब मधु खरीदने लगा, तब उसकी स्त्रीने कहा कि मधु मत खरीदो चलो, मैं तुम्हें अपने घरके पासही मधु च्छत्र दिखा देती हूँ। ऐसा कहकरके वह अपने पतिको साथ लेकर छत्र दिखाने गई। किन्तु ढूंढनेपर भी उसे मधुच्छत्र दिखाई नहीं पडा, तब वह विस्मितसी होकर बोल उठी कि सामनेके तीरसे बराबर दिखता है वहा चलो देख आवें। धीवर भी उसके साथ दूसरे किनारे गया, वहाँ उस स्त्रीने निषिद्ध घरके पासही खडी रहकर मधुच्छत्र दिखाया। धीवरने अनायासही यह समझ लिया कि मेरी स्त्री इस निषिद्ध घरमें आती जाती है। यह उस धीवरकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१८ मुद्दिय-मुद्रिका-का दृष्टान्त-किसी नगरमें एक पुरोहित सर्वत्र सत्य वादीके नामसे प्रसिद्ध था, लोगोंको विश्वास था कि यह समय बीत जाने पर भी दूसरोंका निक्षेप ( ठेव ) नहीं पचाता किन्तु पीछे दे देता है। इसी विश्वासपर एक गरीब आदमी उसके पास अपनी ठेव रखकर देशान्तर चला गया। विदेशमें बहुत समय बिताकर जब वह अपने घर जाने लगा तो पुरो हितजीसे अपनी ठेव मागी। किन्तु पुरोहितने एकदम अस्वीकार कर दिया व कहने लगा कि तुम कौन हो? तुम्हारी ठेव कौनसी व कैसी थी? इस पर वह गरीब अपनी ठेव गुम होते देख बहुत चिन्तातुर हुआ। दूसरे दिन राजाका प्रधान कहीं बाहर जा रहा था। उसको जाते देखकर उसने कहा कि महानुभाग! मेरी हजार रुपयोंकी नोली पुरोहितके पास रक्खी हुई है, कृपया वह मुझे दिलादो। बड़ा उपकार होगा। सारा हाल समझकर प्रधानको उसपर दया होगई। उसने राजासे कह दिया, तब राजाने ठेव रखनेवाले पुरोहितको बुलाया और कहा कि तुम्हारे यहाँ इसकी जो ठेव रक्खी हुई है, वह पीछे इसे लौटा दो। पुरोहितने जवाब दिया कि राजन्! मैंने इसका कुछ लियाही नहीं तो देऊँ क्या? इसपर राजा चुप रहगया। पुरोहितके घर लौट आनेपर राजाने उस ठेव रखनेवाले गरीबको पूछा कि सचसच बोल तू उसके यहाँ किसके सामने व कब ठेव रक्खी थी? इसपर उसने देनेका स्थान समय व साक्षी बता दिए।

तब राजाने निर्णय करना चाहा और एकदिन उस पुरोहितके साथ खेल खेलना शुरू किया। क्रीडाक्रमसे अपनी और पुरोहितकी अंगूठी अदलबदल करली। पुरोहितसे छिपकर उसकी अंगूठी एक आदमीको दी और उसके द्वारा पुरोहितानीको कहलाया कि पुरोहितजीने उस गरीबकी ठेवमें रक्खी हुई नोली (थैली) मांगी है और सबूतके लिए यह अपनी अंगूठी भेजी है। इसपर विश्वास कर पुरोहितानीने नोली भेजदी। राजाने दूसरी अनेक नोलिओंके बीच उस थैलीको रखकर ठेव रखनेवालेसे अपनी नोली लेनेको कहा। उसने पहचानकर अपनी नोली उठाली। तब राजाने उसे सच्चा समझकर लेजानेकी आज्ञा दी और पुरोहितको कठोर दण्ड दिया। यह राजाकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१९ अंक-अङ्क-का दृष्टान्त, जैसे-एक आदमीने किसी शेठके पास हजार रुपयोंसे भरी एक नोली रखदी। उस शेठने नोलीके नीचेका कुछ भाग काटकर उससे असली रुपये निकाल लिए तथा बदलेमें नकली रुपये उसमें भरके कटे भागको सिलाकर ज्योंका त्यों रखदिया। पीछे जब ठेव रखनेवालेने अपनी चीज मांगी तो शेठने उसे नोली देदी। उसने जब खोलकर देखी तो पता चला कि असल रुपये गुम हैं। आखिर उसने राजाके पास अभियोग चलाया। न्यायाधीशने पूछा कि तुम्हारी नोलीमें कितने रुपये रखे जा सकते हैं? उसने जवाब दिया-हजार रुपये। न्यायाधीशने परीक्षा की तो जितना भाग उस नोलीका कटा था उतनेही रुपये बाकी बचे थे शेष सभी समागए। इसपर न्यायाधीशको उसकी बात सच्ची मालूम पडी। अभियुक्तसे अनुशासनपूर्वक उसके रुपये दिलादिए। वह खुशी २ घर चला गया। यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२० नाण-नाणक-दृष्टान्त निम्न प्रकार है-कोई वणिक् किसी शेठके पास अपनी मोहरोंसे भरी हुई एक थैली रखके देशान्तर गया। कुछ समय बीतनेपर थैली रखनेवाले उस शेठने थैलीसे उत्तम सुवर्णमय मुद्राओंको निकालकर उतनीही संख्यामें हलके कमकीमती-सोनेकी मुद्राएं उसमें भरदी, और थैली उसी तरह सीदी। कई दिनोंके बाद वह थैली रखनेवाला वणिक् विदेशसे घर आया और शेठसे अपनी थैली मांगी। शेठने भी उसको थैली देदी। उसने भी अच्छीतरह देखा तो थैली वही मालूम हुई, किन्तु घर आकर जब उसको खोला तो पता चला कि इसमें असली सुवर्णमुद्राएँ नहीं हैं, जो मेरी पहले थीं, उनकी जगह नकली मुद्राएँ रक्खीं हुई हैं। उसने शेठसे आकर कारण पूछा तो शेठने जवाब दिया कि तुमने जो मुझे रखनेको दी थी वही थैली हमने पीछे दी है। असली नकली हम नहीं जानते। इसपर उसने न्यायालयमें फरियाद की। न्यायाधीशने दोनों अभियोक्ता व अभियुक्त-को बुलाकर उनके बयान सुने। सुननेके बाद न्यायाधीशने उस वणिक्से पूछा

कि तुमने शेठके पास थैली किस वर्ष व किस दिन रक्खी थी? उसने वह वर्ष व वह दिन बता दिया। फिर मुद्राओंपर बननका काल देखा तो उसके बादका निकल आया। उसी समय न्यायाधीशने शेठसे कहा कि ये मोहर इसकी नहीं हैं क्योंकि नवीन ढाली हुई हैं, अतः इसकी मोहर जो असली हैं वे इसे देदो। यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२१ भिक्खु-भिक्षु-दृष्टान्त भावना जैसे—किसी साहुकारने एक मठाधिपति भिक्षुकके पास एक हजार मोहर ठवरूपम रक्खीं। कालान्तरमें जब वह भिक्षुकके पास मागनेको गया तो भिक्षुक आजकलका बहाना करने लगा। तब साहुकारने कुछ जुआरियोंसे मैत्री की और भिक्षुकसे अपनी ठेव लनकी बात कही। जुआरियोंने कहा कि हम तुम्हें भिक्षुकसे सब रुपय दिलादेंगे। ऐसा कहकर वे लोक किसी गरुएँ वस्त्रवाले साधुका वेष बनाकर एक बडी सोनेकी खूटी लिए उस भिक्षुकके पास गए और बोले कि हम लोग यात्राम जाते हैं आप बड विश्वासपात्र हैं इसलिए यह सुवर्ण खूटी हम आपके पास रखजाते हैं। इसप्रकार वे कह रहे थ इसी बीचम वह साहुकार आगया और बोला महाराज! मेरी रकम दे दीजिए। भिक्षुकने सुवर्ण खूटीकी लालचसे उसी समय उसकी ठेव-रकम देदी। वे जुआरी कुछ समय विचारकर बोले—महाराज! कुछ यहाँका जरूरी काम आगया है इसलिए अभी हमको नहीं जाना है ऐसा कहके वे सुवर्ण खूटी लिए चले गय। यह जुआरीकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२२ चेडगनिहाणे-चटक और निधान दृष्टान्त इस प्रकार है-किसी गावम परस्पर भिन्न स्वभाववाले दो पुरुष रहते थे। सयोगवश दोनोंकी विशेष परिचयसे मैत्री होगई। एकदिन एकको किसी जगह निधान प्राप्त हुआ। उसी समय मायावी मित्रने उससे कहा कि मित्र! आजका मुहूर्त ठीक नहीं है कल्ह शुभमुहूर्तमें अपने इस निधानको लगे। दूसरेने सरल मनसे ऐसा स्वीकार करलिया। इधर मायावी मित्रने रातम उस जगह आकर निधान लेलिया और वहाँ कोयले डालदिए। दूसरे दिन दोनों साथ आकर देखते है तो निधानकी जगह कोयले मिल। तब मायावी कपटपूर्वक रोन लगा और बोला कि हा! हम भाग्यहीन हैं जिसलिए कि देवन निधान की जगह हमको कोयले दिखाये। एक तरहसे उसने आंख देकर हमसे छिनली है। ऐसा कहते हुए वह वारंवार दूसरेकी ओर देखन लगा। दूसरने उसकी नकली चिन्तासे असलियत समझ ली और आकारको बदलकर कहा-मित्र! कुछ चिन्ता मत करो, गया हुआ निधान कुछ दुःख करनेस नहीं आता, चलो अपने भाग्य ऐसेही है। इस प्रकार शान्त होकर दोनों अपने २ घर गए। इधर सच्चाईको प्रकट करनके लिये बुद्धिबलस दूसरेने उस मायावीकी लेप्यमय प्रतिमा बनाई और दो पालतू बन्दर भी रक्खे। प्रतिदिन प्रतिमाके हाथ शिर व स्कन्ध आदि अगोपर उन बन्दरोंके खाने योग्य वस्तुएँ रख देता और खानेके लिय बन्दरोंको छोड देता।

भूख प्याससे पीडित बन्दर भी वहाँ आकर उस प्रतिमाके देहपरसे भक्ष्य पदार्थ खाया करते। कई दिनोंसे उनकी यह शैली बन गई। एकदिन किसी पर्वको लेकर दूसरे मित्रने मायावीके दोनों पुत्रोंको अपने यहाँ भोजनके लिए निमन्त्रण दिया और बडे प्रेमसे दोनोंको अच्छीतरह भोजन कराके सुखपूर्वक वहीं कहीं दूसरी जगह छिपादिए। दूसरे दिन जब बालक नहीं आए तब मायावी मित्र उनकी खोज करने मित्रके यहाँ आया और पूछा-दोनों लडके कहाँ हैं! वह बोला-मित्र! बडा खेद है कि वे तुम्हारे दोनों पुत्र बन्दर हो गए। मायावी घरमें गया तब दूसरे मित्रने उन पालतू बन्दरोंको खोल दिये वे किलकिलाहट करते आए और इसके अंगोंपर आ लगे व कुछ चाटने लगे। इसपर दूसरा बोला-मित्र! देखिए ये आपके प्रति अपना प्रेम पुत्रवत्‌ही दिखा रहे हैं। तब मायावी बोला-मित्र! क्या मनुष्य भी तत्का-लमें बन्दर हो सकते हैं! दूसरा बोला-भाई! जैसे अपने कर्मके फेरसे निधान कोयला होगया ऐसेही तुम्हारे कर्मकी प्रतिकूलतासे तुम्हारे पुत्र बन्दर हो गए हैं। मायावीने सोचा कि अहो! इसने जरूर मेरा निधान जान लिया है अब अगर चिल्लाता हूँ तो राजकुलमें झगडा होगा और पुत्र भी नहीं मिलेंगे, ऐसा समझकर उसने निधानका सब हाल कहकर उसको आधा हिस्सा देदिया। दूसरेने भी उसके पुत्र मिला दिये। यह चेटक और निधान विषयक उसकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२१ सिक्खा य-सिक्ख-शिष्यका दृष्टान्त, जैसे—धनुर्वेदमें कुशल एक आचार्य किसी नगरमें आया और कुछ धनियोंके पुत्रोंको पढाने लगा। बालकोंसे उस कलाचार्यने बहुतसा धन प्राप्त करलिया। इसपर शेठने सोचा कि बालकोंने इसको बहुतसा धन दिया है, अतः जब यह यहाँसे जावेगा तो इसको मारके सब धन ले लेना चाहिये। कलाचार्यने किसी तरह यह हाल जानलिया, और दूसरे गाँवमें रहे हुए अपने बन्धुओंको ऐसी खबर दी कि अमुक रातको मैं गोबरके पिण्डोंको नदीमें फेंकूँगा (गिराऊँगा), तुम इनको लेलेना। उनके स्वीकार कर लेनेपर कलाचार्यने द्रव्यके साथ गोबरके पिण्ड धूपमें सुखालिये। फिर शेठके लडकोंसे कहा कि अमुक तिथिपर्वमें हम स्नान व मंत्रके साथ नदीमें गोबरके पिण्डको गिराते हैं, ऐसी हमारी कुलविधि है। इसपर बालकोंने भी कहा ठीक है, जैसी आपकी इच्छा हो। फिर कलाचार्यने उन बालकोंके सहयोगसे उस रातमें मन्त्रपूर्वक गोबरके पिण्डोंको नदीमें फेंकदिये। उधर वे गोबर पिण्ड बन्धुओंने लेलिए। फिर कुछ दिनोंके बाद उन बालकों व शेठ आदिको कहकर सिर्फ देहरक्षणके वस्त्रमात्र लिए हुए कलाचार्य अपने गाँवको चला। शेठने भी देखा कि इसके पास तो कुछ नहीं है, फिर क्यों मारना! इसप्रकार उस कलाचार्यने तन व धन बचा लिए। यह कलाचार्यकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२४ अत्यसत्थे-अर्थशास्त्रका दृष्टान्त, जैसे-एक शठको दो स्त्रियाँ थीं, उनमें एकको पुत्र नहीं था और दूसरीको था, किन्तु विना पुत्रवाली भी उस लड़केको बहुत प्यार करती थी, जिससे वह बालक दोनों माम कुछ भेद नहीं समझता। एकवार वह शेठ व्यवसायके लिए घूमता हुआ श्रीसुमतिनाथ स्वामीकी जन्मभूमि हस्तिनापुरमें पहुँचा और सयोगवश वहीं मरगया तब दोनों पत्नियोंमें सम्पत्तिके लिए कलह होने लगा, एक कहती कि यह मेरा पुत्र है अत गृहकी स्वामिनी मैं हूँ। दूसरी बोलती-नहीं गृहस्वामिनी मै हूँ क्यो कि यह मेरा पुत्र है। विवाद बढते २ राजकुलमे गया। महारानी मङ्गलादेवीको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने दोनोंको अपने पास बुलाकर कहा कि कुछ दिनोंके बाद मुझको पुत्र होगा और वह बडा होकर इस अशोकवृक्षके नीचे बेठा हुआ तुम्हारा न्याय करेगा, तबतक तुम दोनों सुख पूर्वक यहाँ रहो। और अपने पुत्रको हमारे अधीन कर दो, न्याय होनेके बाद जिसका होगा देदिया जायेगा। जिसका पुत्र नहीं था उसने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया। इससे महारानीजी सत्य समझ गई और पुत्रवालीको पुत्र दे दिया तथा गृहस्वामिनी बना दी। झूठा वाद करनेसे दूसरी तिरस्कारपूर्वक हटा दी गई। यह महारानीजीकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२५ इच्छा य मह-इच्छा महत्-का दृष्टान्त, जैसे-एक शेठानीके पतिका देहान्त हो गया। जब ब्याज आदिपर दिए हुए उसके रूपये लोगोंने देने बन्द कर दिये, तब उसने अपने पतिके मित्रसे रूपय वसूल करानेको कहा। उसने जवाब दिया कि यदि प्राप्त द्रव्यमेसे मुझे भी कुछ दो तो मै वसूल करा सकता हूँ। शेठानीने कहा-जैसी तुम्हारी मर्जी हो मै वैसाही करूँगी। इसपर उसने लोगोंसे सब रकम वसूल कर ली और उसका थोडा भाग शेठानीको देना चहा। किन्तु शेठानी इसपर राजी न हुई और उसने राजकुलमे फरियाद की। तब अधिकारियोंने वसूल किया हुआ सब द्रव्य मँगाकर दो भागोंमें विभक्त कर दिया, एक भाग बडा और दूसरा छोटा। फिर वसूल करनेवालेसे पूछा कि तूं कौनसा भाग लेना चाहता है? वह बोला-बडा भाग। तब न्यायाधीशने अक्षरार्थका विचारकर कहा कि बडा भाग इसका भी दूसरा हिस्सा तुम्हारा है, इस प्रकार न्यायाधीशने मामला निपटा दिया। यह अधिकारिओंकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

२६ सयसहस्से-शतसहस्रका दृष्टान्त इसप्रकार है-किसी परिव्राजकके पास चाँदीका एक बडा माड था और साथही उस परिव्राजकमे यह भी खुबी थी कि जिसको वह एकवार सुनलेता उसे धारण किये विना नहीं छोडता। इससे बुद्धिका उसे अहंकार होगया और उसने ऐसी घोषणा करदी कि जो कोई मुझे कुछ अश्रुतपूर्व बात सुना दे उसको मैं आपना यह रजतमाड दे दूँगा। किन्तु उसको कोई भी अपूर्व बात नहीं सुना सका क्यों कि सुन

लेनेके बाद अपनी धारणाशक्तिके बलपर यह सुनानेवालेको ज्योंका त्यों सुना देता और कहता यह तो मैंने पहलेसे ही सुनी है। किसी सिद्धपुत्रने यह प्रतिज्ञा सुनी और कहा कि मैं परिव्राजकजीको अपूर्व बात सुना दूंगा, बशर्ते कि वह प्रतिज्ञापर दृढ रहे।

यह बात राजाके कानतक पहुँची और निर्णयके लिए राजभवनही स्थान चुना गया। हजारों आदमी दर्शकके रूपमें इकट्ठे होगए, परिव्राजकजी भी वहाँ आए और राजाके सामने कार्यक्रम चालू हुआ। सिद्धपुत्रने आगेका श्लोक पढ़ा-

गाहा–तुज्झ पितामह पिउणो, धारेइ अणूणयं सयसहस्सं।

जइ सुयपुव्वं दिज्जउ, अह न सुयं खोरयं देसु॥ १॥

जिसका भाव यह है कि-तेरा पिता मेरे पिताके एक लाख रुपये धारता है, अगर पहले सुना है तो वह द्रव्य चुकाओ अगर नहीं सुना है तो प्रतिज्ञाके अनुसार मुझे चाँदीका भाग दो। इसपर परिव्राजकको पराजित होकर यह भांड देना पडा। यह सिद्धपुत्रकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

ये औत्पत्तिकी बुद्धिके उदाहरण समाप्त हुए। अब आगे जाकर शास्त्रकार वैनयिकी बुद्धिकी चर्चा करते हैं—

मूल—गाहा–७३

भरनित्थरणसमत्था, तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला।

उभओलोगफलवई, विणयसमुत्था हवइ बुद्धी॥ १॥

छाया–गाथा–७३

भरनिस्तरणसमर्था, त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतपेयाला ( प्रमाणा )

उभयलोकफलवती, विनयसमुत्था भवति बुद्धिः॥ १॥

टीका—कठिन कार्यभारसे निस्तरण-निर्वाह करनेमें समर्थ तथा धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गके वर्णन करनेवाले सूत्र और अर्थका प्रमाण या सार ग्रहण करनेवाली तथा जो इस लोक और परलोक दोनोंमें फलदायिनी है वह विनयसे होनेवाली बुद्धि है। अर्थात् विनयसे उत्पन्न हुई बुद्धि कठिनसे कठिन प्रसंगको भी सुलझानेवाली और नीतिधर्म व अर्थशास्त्रके सारको ग्रहण करनेवाली होती है। इसीलिए यह दोनों लोकोंमें सुखदायिनी है। इसपर कुछ उदाहरण दिखाते हैं—

मूल—गाहा–७४

निमित्ते[1] १ अत्थसत्थे २ अ, लेहे ३ गणिए ४ अ कूव ५

---

1 स–भा. म.

अस्से ६ य। गद्दभ(ह) ७ लक्खण ८ गंठी ९ अगए १०
रहिए ११ य गणिया १२ य ॥ २ ॥

छाया-गाथा-७४

निमित्त १ अर्थशास्त्रे २ च, लेखे ३ गणिते च ४ (उदाहरणानि) कूपाश्वौ च ५, ६ गर्दभ ७ लक्षण ८ ग्रन्थय गदाः ९।१०, रथिकश्च ११ गणिका १२ च ॥ २ ॥

टीका—गाथार्थ-७४ निमित्त १, अर्थशास्त्र २, लेख ३, गणित ४, कूप ५, अश्व ६, गर्दभ ७, लक्षण ८, ग्रन्थि ९, अगद १०, रथिक और गणिका ११-१२ इन सब उदाहरणोंका कथारूपसे विशेष स्पष्टीकरण नीचे करते हैं—

१ निमित्ते-निमित्त का दृष्टान्त जैसे-किसी नगरमें एक सिद्धपुत्र अपने दो शिष्योंको निमित्तशास्त्र पढा रहा था। शिष्योंमें एक जो विनयसम्पन्न था वह गुरुके उपदेशको यथावत् बहुमानपूर्वक स्वीकार करता और बाद अपने चित्तमें विचार करते हुए जहाँ भी सन्देह हुआ तत्काल गुरुके पास जाकर विनयपूर्वक पूछ लेता। इस प्रकार निरन्तर विनय और विवेकके साथ शास्त्र पढते हुए उसने तीव्र बुद्धि प्राप्त कर ली। दुसरा इन गुणोंसे रहित होनेके कारण केवल शब्दज्ञानही मिला सका। एक दिन दोनों गुरुके आदेशसे किसी पासके गांव में जा रहे थे। मार्गमें किसी बडे जन्तुके चरण चिन्ह दिखाई देते थे। विनयी शिष्यने दूसरेसे पूछा कि बन्धु! ये किसके पाँव है? उसने कहा इसमें क्या पूछना? ये साफ हाथीके पाँवके चिन्ह दिखते हैं। विनयीने कहा-नहीं ऐसा नहीं हो सकता, ये हथिनीके चरणचिन्ह हैं, और वह हथिनी बांयी आंखसे काणी है तथा उसपर किसी बडे घरकी सधवा स्त्री बैठके जा रही है व एक दो दिनमेंही उसको बालक पैदा होगा क्योंकि उसके मास अब पूरे हो गये हैं। विनयीके ऐसा कहनेपर दूसरेने पूछा-अजी! यह किसपरसे समझते हो? विनयी बोला-ज्ञानका सारही विश्वास होना है चलो आगे इसका निर्णय हो जायगा। ऐसा कहके दोनों उस गांवमें पहूँचे। जातेही देखते हैं कि गांवके बाहर तालावके किनारे किसी रानीका डेरा है। और हथिनी भी बाँयी आंखसे काणी है। इसी बीचमें एक दासीने आकर मंत्रीसे कहा कि स्वामिन्! राजाको पुत्रलाभ हुआ है, बधाई दीजिए। विनयीने ऐसा सुनकर दूसरेसे कहा कि क्यों बन्धु? दासीका वचन सुना? उसने कहा-हाँ, तेरी सब बात सच्ची है। फिर तालावमें हाथ पाँव धोकर दोनों विश्रामके लिए एक वटवृक्षके नीचे बैठे। उधरसे मस्तकपर पानीका घडा रक्खे हुए एक बुढिया जा रही थी उसने इन दोनोंकी आकृति प्रकृति देखकर सोचा कि ये दोनों कोई विद्वान् है। अतः इनसे पूछना चाहिए

१ गणिया य रहिए य-त्ति-आ. म. वृत्ती।

कि मेरा देशान्तरमें गया हुआ पुत्र कब लौटेगा। ऐसा सोचकर पास गई और नम्रतापूर्वक पूछने लगी। उसी समय मस्तकसे गिरकर घडा टुकडी २ होगया तुरन्त दूसरा यह देखके बोल उठा-मा! तेरा पुत्र घडेकी तरह मरगया है। इसपर विनयीन कहा-मित्र! ऐसा मत कहो। इसका पुत्र अभी घरपर आया हुआ है और बुढियासे भी बोला कि मा! घर जाओ अपने चिरबिछुडे पुत्रका मुह देखो।

विनयीकी वातसे प्रसन्न हुई बुढिया उसको आशीर्वाद देती हुई घर गई और उसी समय घरपर आए हुए पुत्रको देखा। पुत्रके प्रणाम करनेपर आशीर्वाद देकर बुढियाने नैमित्तिकका कहा हुआ सब वृत्तान्त पुत्रसे कह सुनाया। फिर पुत्रको पूछकर कुछ रुपये व वस्त्रयुगल बुढियाने विनयीको अर्पण किये। तब दूसरा सोचने लगा कि-अहो! गुरुने मुझे अच्छा नहीं पढाया है अन्यथा जैसा यह जानता है, वैसा मैं क्यो नहीं जानता?। कार्य हो जानेपर दोनों गुरुके पास आए। गुरुके दर्शन करतेही विनयीने अञ्जलि जोडे हुए शिरको नमाकर आनन्दाश्रुपूर्वक गुरुके चरणोंमे प्रणाम किया। दूसरा शैलस्तम्भकी तरह थोडा भी विना नमे मात्सर्य धरता हुआ गुरुके सामने खडा रहा। तब उससे गुरु बोले-अरे! क्या आज प्रणाम भी नहीं करता? यह बोला-जिसको अच्छीतरह सिखाये हो वह प्रणाम करेगा हम पक्षपाती गुरुको प्रणाम नहीं करते। गुरु बोले-क्या तुमको अच्छा नहीं पढाया? इसपर उसने पहलेका सब हाल कह सुनाया। तब गुरुने विनयीसे पूछा-वत्स! तुमने यह सब कैसे जाना? कहो। यह बोला-गुरुदेव! मैंने आपका कृपासे विचार करना शुरू किया कि हाथीके तो पाँव दिखतेही हैं किन्तु विशेष क्या है! फिर उसकी लघुशंकाको देखकर निश्चय किया कि ये हथिनीके पाँव है। दक्षिण बाजूके सब वृक्ष खाये हुए थे किन्तु वायी बाजूके नहीं, इससे यह समझा कि बायी आखसे वह काणी है। साधारण मनुष्य हाथीकी सवारी नहीं कर सकता इससे निश्चय किया कि इसपर राजकीय मनुष्य है। वृक्षपर लगे हुए रंगीन वस्त्रके धागसे सधवा राणी और भूमिपर लघुशंका करनेका बाद हाथ टेकके उठनेसे गर्भवती है तथा दक्षिणचरण और हाथपर अधिक भार पडनेसे अल्पसमयमही पुत्रोत्पत्ति होगी ऐसा समझा। उस वृद्धाके प्रश्न करतेही जब घडा गिरकर टूटगया तब मैंने सोचा कि जैसे घडेका मिट्टीभाग मिट्टीमे और पानी पानीमे मिलगया है वैसे वृद्धाको भी इसका पुत्र मिलना चाहिए। विनयीके इसप्रकार विवेकपूर्वक ज्ञानको सुन कर आचार्यने प्रेम प्रकट किया, और उसकी समझकी तारीफ की, फिर दूसरेसे बोले वत्स! इसमे हमारा दोष नहीं, यह तेराही दोष है कि तू विचार नहीं करता, हम तो शास्त्र समझानेके अधिकारी हैं विमर्श करना तो तुम्हारा कार्य्य है। विनयी शिष्यकी यह निमित्त विषयमे वैनयिकी बुद्धि हुई।

१ अथसत्थे-अर्थशास्त्रके विषय में कल्पक मन्त्रीका दृष्टान्त है।

३-४ लेहे-लिपिज्ञान और गणिए-गणितज्ञान में कुशलता भी विनयजा बुद्धि है।

५ कूव-कूप भूमि विज्ञानमें कुशल ऐसे पुरुषका उदाहरण, जैसे-किसी खोदकार्यमें कुशल पुरुषने एक किसानको कहा कि यहाँ इतनी दूरमें पानी है। जब उतनी जमीन खोदलेनेपर भी पानी नहीं निकला तब किसानने उससे कहा पानी तो नहीं निकला! तब उसने कहा-बाजूकी भूमिपर जरा (थोडा) एडीसे प्रहार करो। किसानके ऐसा करतेही पानी निकल आया। यह उसकी वैनयिकी बुद्धि है।

६ अस्से-अश्वके ग्रहणमें वासुदेवकी बुद्धिका उदाहरण, जैसे-किसी समय बहुतसे घोडेके व्यापारी घोडे बेचनेको द्वारिका गये। उस समय यदुवंशी राजकुमारोंने सब आकार प्रकारसे बडे घोडे खरीदे, वासुदेवने लक्षणसम्पन्न एक दुर्बल घोडा खरीदा। कुछही दिनोंमें यह घोडा सब हृष्ट-पुष्ट घोडोंको पीछे चलानेवाला और कार्यक्षम सिद्ध हुआ। यह वासुदेवकी विनयजा बुद्धि थी।

७ गद्दभ-गर्दभका दृष्टान्त, जैसे-किसी राजपुत्रको युवावस्थाके प्रारम्भ मेंही राज्यपद मिला था, इससे वह सभी कार्योंमें युवावस्थाकोही समर्थ मानता था। इसीलिये उसने अपने सैन्यमें भी सब युवकोंकोही भर्ती किये, तथा वृद्धोंको निकाल दिये। एक दिन सैन्य लेकर राजा कहीं युद्धको गया हुआ था, जब कि अकस्मात् मार्ग भूलजानेसे किसी अटवीमें पड गया और पानी नहीं होनेसे साथके सभी लोग प्यासके मारे व्याकुल होगए। तब राजा भी किंकर्तव्यविमूढ बन गया। उस समय एक सेवकने कहा-देव! वृद्ध पुरुषकी बुद्धिरूप नौकाके सिवाय यह दुःखसागर पार नहीं किया जा सकता। अतः आप किसी वृद्ध पुरुषकी तलाश करें। इसपर राजाने सब कटकमें वृद्धकी तलाश की व घोषणा करवाई। वहाँ एक पितृभक्त सैनिकने छिपाकर अपने पिताको रक्खा था। वह बोला-देव! मेरा पिता वृद्ध है, सुनकर राजाने उसे बुलाया और आदरसे पूछा-महाभाग! मेरे सैन्यको इस अटवीमें पानी कैसे मिलेगा! कहो, वृद्धने कहा-स्वामिन्! कुछ गदहोंको स्वतन्त्र छोड दीजिए और जहाँ वे भूमिको सूंघे वहीं आसपासमें पानी है यह समझ लेवें। वैसाही किया गया जिससे कटकको पानी मिलगया और सभी लोग स्वस्थ होगये। यह स्थविरकी विनयजा बुद्धि थी।

८ लक्खण-लक्षण का दृष्टान्त, जैसे—पारसदेशीय एक गृहस्थ बहुतस घोडोंका मालिक था। उसने किसी योग्य आदमीको घोडोंके रक्षणके लिए रक्खा और उससे कहा कि इतने वर्षतक तुम काम करोगे तो दो घोडे तुमको परिश्रमके बदले दिये जायेंगे। उसने भी यह स्वीकार करलिया। रहते २ स्वामीकी लडकीके साथ उसका बडा स्नेह होगया। एक दिन उसने कन्यासे

पूछा-इन सब घोडोंमें कौन दो घोडे सबसे अच्छे हैं? स्वामिकन्याने कहा कि यों तो सभी घोडे विश्वासपात्र हैं, किन्तु दो घोडे जो वृक्षोंसे गिराए हुये बडे पत्थरोंके शब्दोंको सुनकर भी नहीं डरते वे उत्तम हैं। उसने उसी प्रकार परीक्षा की और उन घोडोंको पहचान लिया। फिर वेतन लेनेके समयमें स्वामीसे बोला कि मुझे अमुक २ दो घोडे दीजिए। स्वामी बोला-अरे! दूसरे अच्छे २ घोडे हैं। उनको ले इन दोको लेकर क्या करेगा? ये अच्छे भी नहीं हैं। लेकिन उसने यह बात नहीं मानी। तब शेठने सोचा-इसको घरजमाई बनालेना चाहिए, नहीं तो इन उत्तम घोडोंको लेके यह चला जायगा। लक्षणसम्पन्न घोडेसे कुटुम्ब व अश्वसम्पत्तिकी भी वृद्धि होगी। ऐसा सोचकर कन्याकी अनुमतिसे उन दोनोंका विवाह करादिया। उसको घरजमाई बनानेसे लक्षणसम्पन्न घोडे बचालिए गये। यह अश्वस्वामीकी विनयजा बुद्धि थी।

९ गंठि-ग्रन्थि के द्वार समझनेमें पादलिप्ताचार्यकी बुद्धिका दृष्टान्त इस प्रकार है-किसी समय पाटलिपुरमें मुरंड नामका राजा राज्य करता था। परराष्ट्रके राजाने एकदिन कौतुकके लिए उसके पास तीन चीजें भेजी। १ मूढसूत्र-छिपी गाँठवाला सूत, २ समयष्टि-सममागवाली लकडी, व ३ लाखसे चिपकाया हुआ छिपे द्वारका डब्बा। राजाने अपने सभी दरबारियोंको ये चीजें दिखाई किन्तु कोई भी नहीं समझ सका। तब राजाने पादलिप्त नामके आचार्यको बुलाकर पूछा-भगवन्! आप इनके ग्रन्थिद्वार जानते हो? आचार्यने कहा-हाँ जानता हूँ। ऐसा कहके उसी समय सूतको गरमपानीमें डाला तो उष्ण पानीके संयोगसे सूतका मल हट गया और अन्त-ग्रन्थिका भाग-दिख पडा। लकडी को भी पानीमें गिराया जिससे मालूम हुआ कि मूल भारी है, और भारी भागपरही ग्रन्थि होती है। फिर डब्बेको भी गरम कराया जिससे लाखका सब भाग गल जानेपर द्वार प्रकट होगया। राजा आदि सभी दर्शक इस कौतुकको देखकर खुश हुए, फिर राजाने आचार्यसे कहा-महाराज! आप भी कोई, ऐसा दुर्ज्ञेय कौतुक करिये जिसको मैं वहाँ भेज सकूँ। तब आचार्यने किसी तुम्बाके एकप्रदेशमें एक खण्ड हटाकर वहाँ रत्न भर दिए तथा उस खण्डको इस प्रकार सींदिया कि किसीको लक्षित ही नहीं हो। फिर परराष्ट्रके राजपुरुषोंको सूचना करदी कि इसको भाँग (फोड) कर इससे रत्न ले लेवें। किन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी उनको रत्नोंका पता नहीं चला।

यह आचार्यकी विनयजा बुद्धि थी।

१० अगए-अगद, वैद्यकी विषोपशमनबुद्धिका दृष्टान्त जैसे-किसी राजाके राज्यको शत्रुपक्षके राजाओंने चारों ओरसे घेर लिया। छोटे सैन्यसे उनका मुकाबला करना अशक्य है, ऐसा सोचकर राजाने पानीमें विषयोग करवाना शुरू किया। सभी लोग अपने २ पासका विष लाने लगे। एक वैद्य यवमात्र

विष लेकर राजाको भेट किया। बहुत थोडा विष देखकर राजा वैद्यपर बहुत क्रुद्ध हुआ। तब वैद्य बोला–महाराज! यह विष सहस्रवेधी है, थोडा देखकर आप नाराज न होवें। इसपर राजाने पूछा कि इसके सहस्रवेधी होनेमें क्या सबूत है? वैद्य बोला–देव! किसी पुराने हाथीको मगवाइये मैं प्रयोग करके दिखाता हूँ। उसी समय एक बूढा हाथी लाया गया और वैद्यने उसकी पुच्छका एक बाल उखाडकर उस बालसे हाथीके भिन्न २ अगोंमें विषप्रयोग किया। जिस २ अंगमे विष फैलता गया उन २ अंगोंको नष्टसा करदिया। तब वैद्य बोला–देव! हाथी विषमय होगया है अब जो भी इसको खायगा वह भी विषमय हो जायगा। इसप्रकार यह विष क्रमश हजारतक पहुँचता है। हाथीकी मृत्युसे राजा कुछ उदास होकर बोला–क्या अब हाथीको जिलानेका भी उपाय है? वैद्य बोला–जरूर! उसी बालके रन्ध्र–( खड्डे )मे एक औषध दिया गया जिससे कुछही समयमे यह विषविकार शान्त होगया। हाथी अच्छा बनगया और राजा भी वैद्यपर सन्तुष्ट हुआ। यह वैद्यकी विनयजा बुद्धि हुई।

११-१२ रहिए अ गणिआ–रथिक और गणिकाकी वैनयिक-बुद्धिमें उदाहरण–स्थूलभद्रकी कथामें एक रथिकका आम्रफलोंकी लुम्बी तोडना और गणिकाका सर्षपकी राशिपर नाचना। ये भी विनयजा बुद्धिके क्रमश उदाहरण बताए गए है।

मूल—गाहा–७५

> सीआ साडी दीहं च तणं, अवसव्वयं च कुंचस्स १३ ।
> निव्वोदए[1] १४ य गोणे, घोडग पडणं च रुक्खाओ १५ ॥ ३ ॥

छाया–गाथा–७५

> शीता साटी दीर्घश्च तृणम्, अपसव्यश्च क्रोञ्चस्य १३ ।
> नीव्रोदकं १४ च गौः, घोटक–(मरणं) पतनञ्च वृक्षात् १५ ॥३॥

टीका—गाथार्थ ७५ सूखी साडीको ठडी कहने और तृणको लम्बा कहने, एव क्रौंचका वामभागमे घूमनेसे आचार्यका बोध १३। विषमय पानीसे जारमरण १४, व बैलका चोरी जाना घोटेका मरण और वृक्षसे पतन १५ इनका भाव दृष्टान्तसे समझें।

१३ साटी आदिका दृष्टान्त, जैसे– कुछ राजकुमारोंको एक कलाचार्य शिक्षण दे रहा था। राजकुमारोंने भी उपकारके बदलेमें बहुमूल्य द्रव्योंसे समय २ पर आचार्यका सन्मान किया। इसप्रकार अपने पुत्रोंके बहुमूल्य द्रव्य देनेपर

[1] ' निव्वोदए '–इत्यपि पाठान्तरम्।

क्रुद्ध होकर राजाने आचार्यको मरवाना चाहा। किसीतरह राजपुत्रोंको यह बात मालूम हो गई। उन्होंने सोचा कि विद्यादाता होनेसे आचार्य भी हमारे पिता हैं, अतः इनको विपत्तिसे बचा लेना हमारा कर्त्तव्य है। थोडी देरके बाद आचार्य भोजनके लिए आए और धोती मांगने लगे। इसपर कुमारोंने सूखी होते हुए भी कहा-साटी गीली है, तथा द्वारके सामने एक छोटा तृण खडा करके बोले-तृण बहुत दीर्घ-लम्बा है। ऐसेही क्रौंचशिष्य पहले सदा आचार्यकी दक्षिण ओरसे प्रदक्षिणा करता किन्तु अभी वह वामभागसे घूमने लगा। इसप्रकार कुमारोंके विपरीत कथन और क्रौंचके वामभ्रमणसे आचार्य समझगये कि सभी मेरेसे विरुद्ध (उलटे) हैं, केवल ये कुमारही भक्ति जतारहे हैं ऐसा सोचकर राजाको लक्षित न हो इसप्रकारसे आचार्य चले गए। यह आचार्य और कुमारोंकी विनयजा बुद्धि हुई।

१४ निव्वोदए-नीव्रोदक-कोतवालकी मृतकपरीक्षाका दृष्टान्त, जैसे—बहुत दिनोंसे किसी वणिक् स्त्रीका पति विदेशमें गया हुआ था। एक दिन उस वणिक् वधूने कामातुर होकर अपनी दासीसे किसी पुरुषको लानेके लिये कहा। दासी भी एक युवावस्थासम्पन्न पुरुषको ले आई। फिर नाईसे उसके नख केश आदिका संस्कार करवाया गया। रातमें उस पुरुषके साथ सेठानी दूसरे मजिलपर गई। कुछ समयके बाद उस पुरुषको प्यास लगी। उसने तत्काल बरसा हुआ मेघका पानी पीलिया। पानी त्वचामें विषवाले सर्पसे छूआ गया था, अतः पानी पीनेके दूसरेही क्षण वह पुरुष मरगया। इस आकस्मिक घटनासे भयभीत हो उस वणिग्वधूने रातके पिछले भागमें किसी शून्य देवलमें वह शव लेजाकर रखवा दिया। प्रातःकाल होतेही लोगोंकी दृष्टि पडी तो तुरन्त कोतवालको सूचना दीगई। उसने आकर देखा तो मालूम हुआ कि इस मृतपुरुषके नखकेशादि थोडेही समय पहले बनाए गये हैं। इसपर नाइयोंसे पूछा गया, उनमेंसे एकने कहा कि स्वामिन्! अमुक सेठकी दासीके कहनेसे इसके नख आदि मैंने बनाए हैं। दासीसे भी इस बातकी जांच करके भेद खुलवा लिया। यह नगररक्षककी विनयजा बुद्धि हुई।

१५ गोणे, घोडग-(मरणं), पडणं च रुक्खाओ-बैलकी चोरी होना, प्रहारसे घोडेका मरण और पुराने वस्त्रके टूटनेके कारण वृक्षसे गिरना इनका अभिप्राय निम्न दृष्टान्तसे समझ, जैसे-किसी गांवमें एक पुण्यहीन पुरुष रहता था। एक दिन वह अपने मित्रसे बैल मांगकर हल चलाने गया। कार्य हो जानेपर सन्ध्याके समय बैलको बाडेमें लाकर छोड दिया। मित्र भोजन कररहा था, अतः वह उसके पास नहीं गया, केवल मित्रने बैलको देखलिया है इसलिए मित्रको विना कहेही वह घर चला गया। बैल असावधानीके कारण बाडेसे निकलकर कहीं चला गया और चोरोंने मौका पाकर उसको चुरा लिया। मित्र बाडेमें बैलको न देखकर उससे मांगने लगा, किन्तु वह कहांसे देता? क्योंकि

यह तो चोरी हो गया था। तब न्याय करानेके लिए वह मित्र पुण्यहीनको राजकुलमें ले चला। मार्गमें घोडेपर चढा हुआ एक आदमी सामनेसे आ रहा था, अकस्मात् घोडेके चौंकनेसे वह उसपरसे गिर गया और घोडा भागने लगा। ये लोग सामने आ रहे थे वास्ते उसने कहा कि घोडेको जरा मारके वहीं रोक रखना। पुण्यहीनने उसकी बात सुनतेही घोडेके मर्मस्थलपर एक प्रहार करदिया, घोडा कोमल प्रकृतिका होनेसे प्रहार लगतेही मरगया, अब तो घोडावाला भी पुण्यहीनपर अभियोग चलानेको साथ हो गया, जबतक ये लोग नगरके पास आये तबतक सूर्य्य अस्त हो गया, इसलिए रातमें तीनोंही नगरके बाहर ठहर गये। वहाँ बहुतसे नट सोये हुए थे। उसी समय वह पुण्यहीन सोचने लगा कि इस प्रकारके दुःखसे तो गलेमें पाश डालके मर जाना अच्छा है, जिससे कि सदाके लिए विपत्तिका पिण्डही छूट जाय। ऐसा सोचकर अपने वस्त्रका वृक्षपर पाश बाँधके गलेमें डाल लिया। अत्यन्त जीर्ण होनेसे वह वस्त्र भार पडतेही टूट गया, इससे वह बेचारा नीचे सोये हुये एक नटके मुखियेपर जा गिरा, जिससे वह नट मरगया।

नटोंने भी उस पुण्यहीनको पकडा और सुबह होतेही तीनों पुण्यहीनको लिए हुए राजकुलमें पहुँचे। राजकुमारने उन सबोंकी बातें सुनकर पुण्यहीनसे पूछा। उसने दीनताके साथ कहा कि महाराज! इन सबका कहना सच्चा है। तब राजकुमार इसपर दया करके उसके मित्रसे बोले कि यह तुमको बैल देगा किन्तु तुम्हारी आँखें उखाड लेगा, क्योंकि जिसी समय तुमने अपने सामने बैल देखलिया उसी समय यह ऋणमुक्त हो गया। अगर तुम नहीं देखे होते तो यह भी अपने घर नहीं जाता, क्यों कि जो जिसको कुछ देनेके लिए आता है वह बिना उसको समझाये अपने घर नहीं जा सकता। इसने तुम्हारे सामने लाकर बैल छोडा था अतः वह निर्दोष है। फिर घोडेवालेको बुलाया और कहा कि हम तुम्हारा घोडा दिलायेंगे, किन्तु तुमको अपनी जीभ काटकर इसको देनी होगी, क्यों कि तुम्हारे कहनेपरही इसने घोडेपर प्रहार किया है, बिना कहे नहीं, अतः तुम्हारी जीभही पहले दोषी होती है, उसको उखाडकर अलग कर देना चाहिये। इसी प्रकार नटोंको बुलाकर कहा-देखो, इसके पास कुछ भी नहीं जो तुमको दण्डमें दिलायें, इन्साफ इतनाही कहता है कि जैसे गलेमें पाश डालके यह वृक्षसे तुम्हारे स्वामीपर गिरा, इसी प्रकार तुम्हारेमेंसे कोई प्रधान इसपर वृक्षसे गिरे यह नीचे सो जायगा। कुमारकी ऐसी बातें सुनकर सभी चुप हो गये और वह पुण्यहीन अभियोगसे मुक्त हो गया। यह राजकुमारकी वैनयिकी बुद्धि हुई।

कर्मजा बुद्धिका विवरण—

मूल—गाथा-७६

उवओगदिट्ठसारा, कम्मपसंगपरिघोलणविसाला।
साहुक्कारफलवई, कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ १ ॥

गाथा–७७

हेरण्णिए १करिसए२,कोलिअ ३डोवे ४ य मुत्ति ५घय ६पवए ७।
तुन्नाए ८ वड्ढइ ९ य पूयइ १० घड ११ चित्तकारे १२ य॥ २॥

छाया–गाथा–७६

उपयोगदृष्टसारा, कर्मप्रसङ्गपरिघोलनविशाला ।
साधुकारफलवती, कर्मसमुत्था भवति बुद्धिः ॥ १ ॥

७७ हैरण्यकः १, कर्षकः २, कौलिकः ३, डोवः ( दर्वीकारश्च ) ४,
मौक्तिक–घृत–प्लवकाः ५।६।७। तुन्नागो ८ वर्द्धकिश्च ९
आपूपिकः १० घट–चित्रकारौ च ११।१२ ॥ २ ॥

टीका-गाथार्थ ७६— अब कर्मजा बुद्धिका लक्षण कहते हैं—एकाग्रचित्तसे उपयोगसे कार्योंके परिणामको देखनेवाली, तथा अनेक कार्योंके अभ्यास और विचार-चिन्तनसे विशाल एव विद्वानोंसे की हुई प्रशंसारूप फलवाली ऐसी कर्मसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धि कर्मजा कहाती है ॥ १ ॥

कर्मजा बुद्धिके विषयमें दृष्टान्त— १ सुवर्णकार, २ कर्षक, ३ कौलिक, ४ डोव-दर्वी आदि बनानेवाला याने लोहकार, ५ मणिकार, ६ घृतविक्रयी, ७ प्लवक-उछलनेवाला, ८ तुन्नाग-सीनेवाला, ९ वर्द्धकि-बढई, १० आपूपिक-हलवाई, ११ कुम्भकार, १२ चित्रकार आदि ॥ २ ॥

इन दृष्टान्तोंका विशेषरूपसे स्पष्टीकरण—

१ हैरण्यक–सुवर्णकार–जिस सुवर्णकारने अपने विज्ञानमें अच्छीतरह अनुभव प्राप्त कर लिया है वह समय पाकर हस्तस्पर्श तथा देखनेमात्रसेही सोनेचांदीकी यथार्थ परीक्षा कर लेता है, यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

२ कर्षक–किसी चोरने रातमें एक धनीके घरमें पद्मके आकारकी सेंध खोदी। प्रातःकाल वहाँ बहुतसे लोग जमा हुए और चोरके सेंध खोदनेकी प्रशंसा करने लगे। छिपेरूपसे चोर भी सुन रहा था। उसी समय एक किसान बोला कि जिसने जिस कार्यका अधिक अभ्यास किया है वह उसमें कुशल होताही है इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं। किसानकी बात सुनकर चोरको बहुत क्रोध हुआ। उसने एक आदमीसे पूछा कि यह कौन है तथा कहाँ रहता है? पता समझकर कुछ देरके बाद किसानके पास खेतमें पहुँचा और बोला-अरे! आज मैं तुझे मारता हूँ। किसान बोला-क्यों? चोरने कहा-तूने लोगोंके सामने मेरी सेंधकी प्रशंसा नहीं की इसलिये। वह बोला-

---

१ उन्नाग ८ वड्डई ९ पूइए १० य-वि आ म ए नि गा १४७।

प्रशंसा नहीं करनेका कारण ठीक है, जो जिस कार्यमें सदा अभ्यास करता है, वह उस विषयमें कुशल होता है, देखो, मैंही उसमें दृष्टान्त हूँ। हाथमें लिए हुए इन मूंगोंको अगर कहो तो सब उल्टे मुंह डालूं और कहो तो ऊर्ध्व-मुख-ऊपरमुख से, या बाजूसे गिराऊँ। इसपर चोर बहुत विस्मित हुआ और बोला कि सभीको नीचे मुखसे गिराओ। किसानने भूमिपर एक कपड़ा फैलाकर सभी मूंग अधोमुख-नीचे मुंह-से गिरादिये। चोरको बड़ा विस्मय हुआ। किसानकी कुशलताको वारंवार सराहता हुआ वह चला गया। कर्षकके प्राण बच गये। यह कर्षककी कर्मजा बुद्धि हुई।

३ कोलिय-कौलिक-तन्तुवाय-कपड़ा बुननेवाला अपनी मुष्टिमें तन्तुओं-(सूतों)-को लेकर जान लेता है कि इतने कंडोंसे इतना वस्त्र बनेगा। यह तन्तुवायकी कर्मजा बुद्धि है।

४ दर्वी-डोय बनानेवाला-लोहकार यह सहजमें जान जाता है कि इसमें इतनी वस्तु समायेगी यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

५ मौक्तिक-मणिकार अपने अभ्याससे मोतीको आकाशमें उछालकर नीचे युक्तिसे रक्खे हुए शूरके बालमें उसे इस प्रकार धरते हैं कि वह मोती बालमें पिरोलिया जाता है। यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

६ घय-घृत-विक्रयी-घी बेचनेवाला अधिक अभ्याससे ऐसा कुशल बन जाता है कि चाहे तो गाडीमें रहा हुआ भी नीचेकी कुण्डीकी नालमें घी डाल देता है।

७ प्लवक-कूदनेवाला भी अपनी क्रियाके अनुभवसे आकाशमें अनेक प्रकारके खेल दिखा देता है।

८ तुन्नाग-सीनेवाला अपने क्रिया-कौशलसे वैसा सीलेता है जो किसीको लक्षित भी न हो।

९ वड्ढकि-कुशल रथकार विना मापे ही रथ आदिमें लगने वाली लकडीका प्रमाण जान लेता है।

१० आपूपिक-निपुण हलवाई विना तौले अपूप-मालपूए आदिका माप जान लेता है और आदेशानुसार वस्तु बना देता है।

११ घड-घटकार-अनुभवी कुम्भार विना वजन किये ही घड़े बनाने जितने मृत्पिण्ड ले लेता है।

१२ चित्रकार-कुशल चितारा चित्रकी भूमि विना मापेही चित्रका प्रमाण जान लेता है और कूंचीमें उतना ही रंग लेता है जितनेका उसको प्रयोजन होता है।

तन्तुवायसे लेकर चित्रकारतक ये सब कर्मजा बुद्धिके उदाहरण हैं।

मूल—गाहा–७८

अणुमाण–हेउ–दिट्ठंत–साहिया वयविवागपरिणामा।
हियनिस्सेयसफलवई, बुद्धी परिणामिया नाम ॥ १ ॥

७९ अभए १ सिंट्ठि २ कुमारे ३, देवी ४ उदिओदए हवइ राया ५।
साहू य नंदिसेणे ६, धणदत्ते ७ सावग ८ अमच्चे ९ ॥ २ ॥

छाया–गाथा–७८

अनुमानहेतुदृष्टान्त–साधिका, वयोविपाकपरिणामा।
हितनिःश्रेयसफलवती, बुद्धिः पारिणामिकी नाम ॥ १ ॥

७९ अभयः १ श्रेष्ठिकुमारौ २।३, देवी ४, उदितोदयो भवति राजा ५।
साधुश्च नन्दिषेणः ६, धनदत्तः ७, श्रावकोऽमात्यः ८।९ ॥ २ ॥

टीका—गाथार्थ–७८–७९ अनुमान, हेतु और दृष्टान्तसे विषयको सिद्ध करनेवाली, अवस्थाके परिपाकसे पुष्ट तथा उन्नति और मोक्षरूप फलवाली बुद्धि पारिणामिकी है अर्थात् जो स्वार्थानुमान हेतु और दृष्टान्तसे विषयको सिद्ध करती है तथा लोकहित व लोकोत्तर मोक्षको देनेवाली है ऐसी अवस्थाके परिपाकसे होनेवाली बुद्धि पारिणामिकी है ॥ १ ॥

अभयकुमार १ श्रेष्ठी २ कुमार ३ देवी ४ उदितोदय राजा ५ मुनि और नंदिषेण कुमार ६ धनदत्त ७ श्रावक ८ अमात्य ९ ॥ २ ॥ ये पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं।

१ अभयकुमार–चंडप्रद्योतसे अभयकुमारने चार वर मांगे, और चंडप्रद्योतको बांधकर रोते हुए अभयकुमार नगरमें ले आया था। यह अभयकुमारकी पारिणामिकी बुद्धि है।

२ सिट्ठि–श्रेष्ठी, जैसे–किसी शेठने अपनी भार्याके दुश्चरित्रको देखकर दीक्षा स्वीकार की। उधर उस स्त्रीको परपुरुषके समागमसे गर्भ रह गया, तब राजपुरुष उसको राजाके पास ले आए। उसी समय एक मुनि भी विहारक्रमसे घूमते हुए उस गांवसे निकले। स्त्रीने उनको देखकर राजपुरुषोंके सुनते हुए कहा कि हे मुनि! यह गर्भ तुम्हारा है और तू इसको छोडकर दूसरे गांव जा रहा है फिर इसका क्या होगा? मुनिने यह सुनकर विचारा कि असत्य-भाषणसे यह स्त्री जिनशासन और सुसाधुओंकी अकीर्ति करेगी, अतः इसका

---

1 सेट्ठि–इति पाठान्तरम्।

२ स्पष्ट समझनेके लिये परिशिष्ट देखें। सम्पादक

निवारण करना चाहिए। ऐसा सोचकर मुनिने उस स्त्रीको शाप दिया कि यदि यह गर्भ मेरा किया हो तो पूर्ण समयपर योनिसे निकले, अगर हमारा नहीं हो तो पेट फाडकरही निकले, इस शापसे समय पूर्ण होनेपर भी गर्भ नहीं निकला, इससे उस स्त्रीको भयङ्कर कष्ट होने लगा, तब उस स्त्रीने राजकर्मचारिओंके सामने मुनिराजसे प्रार्थना की कि महाराज! यह गर्भ आपका किया हुआ नहीं है, मैंने झूठा आपको कलङ्क दिया, अब फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूंगी, उसके असह्य कष्टको देखकर कारुणिक मुनिने अपना शाप हटालिया, इस प्रकार धर्मका मान और उस स्त्रीके प्राण दोनों बचालिये, यह उनकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

३ कुमार- एक राजकुमारको मिष्टान्न बहुत प्रिय था, एक दिन उसने भरपेट मोदक खा लिया, अधिक खानेसे अजीर्ण हो गया, अजीर्णके कारण मुखसे दुर्गन्धि निकलने लगी। दुःखी होकर राजकुमारने सोचा कि इस अशुचि शरीरसे संयोग पाकर मधुर जैसा मनोहर पदार्थ भी बिगड गया। इसी शरीरके लिये लोग अनेक पाप करते हैं, अवश्य यह धिक्कारने योग्य है। ऐसा सोचकर वह विरक्त हो गया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

४ देवी-पुष्पवती नामकी देवीने अपनी पुष्पचूला नामक पुत्रीको स्वर्ग-नरक दिखाकर प्रतिबोध दिया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

५ उदितोदय राजाका दृष्टान्त, जैसे-पुरिमताल नगरमें उदितोदय नामका राजा था, श्रीकान्ता नामकी उसकी विशेष रूपवती रानी थी, जिसके लिये वानारसीके धर्मरुचि नामक राजाने अपने सैन्यसे पुरिमताल नगरको घेर लिया। कुछ समय तक घेरे रहा तो उदितोदयने निष्कारण जनक्षय होगा ऐसा सोचकर तपोबलसे वैश्रमण देवका आवाहन किया। देवने धर्मरुचि राजाको उसके नगरमें साहरण कर दिया। इसप्रकार बिना जनक्षयके उदितोदय राजाने अपना व प्रजाजनोंका रक्षण कर लिया यह राजाकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

६ साधु और नंदिषेण कुमारका दृष्टान्त, जैसे- भगवान् महावीरके समवसरणमें एक साधु चित्तकी चंचलतासे साधुव्रत छोडना चाहता था। उसी समय प्रभुको वंदन करनेके लिये राजकुमार नंदिषेण अपने अंतःपुरके साथ आया था। रूपलावण्यसे उसका अंतःपुर अप्सरावृन्दको भी जीतनेवाला था, फिर भी प्रभुके उपदेशसे नंदिषेणने विरक्त होकर उन सबोंको छोड दिया। यह देखकर वह साधु भी विशेषरूपसे संयममें स्थिर हो गया। यह उस साधुकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

७ धनदत्तका दृष्टान्त, जैसे-किसी समय चिलातीपुत्र चोरने धनदत्तकी पुत्री सुसुमाको द्रव्यलोभसे जंगलमें ले जाके मार गिराथा। शेठ भी खोजते

१ घटी कठिनाईसे उस अटवीमें पहुँचा और लड़कीको मरी पड़ी एक खड्डेमें देखा। भूखसे बहुत व्याकुल होकर फल खोजने लगा, किन्तु फलोंके नहीं मिलनेसे उसीसे देह निर्वाह किया-प्राण बचाया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

८ सावग-श्रावक-व्रतरक्षामें पत्नीकी बुद्धि, जैसे-किसी श्रावकने परस्त्री-गमनका त्याग किया था। एक दिन अपनी स्त्रीकी सखीको देखकर यह कामातुर हो गया। स्त्रीने उसकी चिंताके कारणको समझ लिया और सोचा कि ऐसे कुविचारोंमें यदि इसकी मृत्यु हो गई तो यह दुर्गतिमें चला जायगा। इसलिए कोई उपाय करूँ जिससे इसकी रक्षा हो, ऐसा सोचकर यह पतिसे बोली-स्वामिन्! चिन्ता मत करो, मैं संध्या होनेपर उसको लानेका उपाय करती हूँ। श्रावकने मँजूर किया। इधर संध्या होतेही यह स्त्री अपनी सखीके वस्त्रभूषण पहनकर उसी रूपमें श्रावकके पास एकान्तमें गई। उसने भी अपनी स्त्रीको सखी समझकर उसके साथ संभोग किया, फिर कुछ समयके बाद कामका ज्वर उतरा तब हित व डोकेके चलते व्याकुल होता हुआ बोलने लगा कि हाय! मेरा तो व्रत खण्डित कर दिया। अब संसारमें किस मुंहसे बोलूंगा? उस स्त्रीने श्रावकजीको अधिक चिन्तातुर देखकर सच्ची बात कह दी, जिससे यह कुछ स्वस्थ हुआ। प्रातःकाल गुरुके पास जाकर मानसिक कुविचार व परस्त्रीके संकल्पसे विषयसेवनके लिए प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ। उस श्रावकपत्नीने अपने पतिका व्रत और प्राण दोनोंकी रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

९ अमात्य-मंत्रीका उदाहरण, जैसे-वरधनु मंत्रीने स्वामिपुत्र ब्रह्मदत्तकी रक्षाके लिए सुरंग खुदाकर ब्रह्मदत्तको उससे निकाल लिया, यह मंत्रीकी पारिणामिकी बुद्धि है।

मूल—गाहा—८०

खमए १० अमयपुत्ते ११, चाणक्के १२ चेव थूलभद्दे १३ य।
नासिक्कसुंदरिनंदे १४, वइरे १५ परिणामिया बुद्धीए ॥ ३ ॥
८१ चलणाहण* १६ आमंडे १७, मणी १८ य सप्पे १९ य खग्गि २०
थूभिंदे २१।२२। परिणामियबुद्धीए एवमाई उदाहरणा ॥ ४ ॥
से त्तं अस्सुयनिस्सियं।

१ व दुंवी नंदि हा. टि. ... १४१। २ परिणामिया बुद्धी–टि. १५०।
* चलणाहण (गइ)।

छाया—गाथा—८०

क्षपकोऽमात्यपुत्रः १०।११, चाणक्यश्चैव १२ स्थूलभद्रश्च १३।
नासिक्ये सुन्दरीनन्दः १४, वज्रः १५ परिणामबुद्ध्याः ॥ ३ ॥

८१ चलनाहत १६ आमलके १७ मणिश्च १८ सर्पश्च १९ खड्ग २० स्तूपेन्द्रः २१। पारिणामिक्या बुद्ध्या एवमादीनि उदाहरणानि ॥ ४ ॥

तदेतदश्रुतनिश्रितम्।

टीका—गाथार्थ-८०-८१ खमए-साधु १० अमात्यपुत्र-मंत्रिपुत्र ११ चाणक्य १२ और स्थूलभद्र १३ तथा नासिकपुरमें सुंदरीपति नंद १४ वज्रस्वामी १५ ये पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं ॥ ३ ॥

चलणाहण-चलनाहत याने चरणाहतको क्या दण्ड देना। (राजाका प्रश्न) १६ आमलक १७ मणि १८ सर्प १९ खड्ग (गेंडा) २० स्तूप २१, इत्यादिक पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं ॥ ४ ॥

१० क्षपक-साधुका दृष्टान्त, जैसे-कोई साधु क्रोधके आवेशमें मरनेके कारण सर्प हो गया था, वहाँसे मरकर शुभकर्मोदयसे एक राजाके यहाँ जन्म लिया और मुनियोंके उपदेशसे विरागी होकर फिर साधु बन गया तथा नम्र भावसे गुरुजनोंकी सेवा करने लगा। भिक्षाके समय एक दिन साधुओंने उसके पात्रमें थूँक गिरा दिया, फिर भी वह अपने ही दुर्गुणोंकी निन्दा करता रहा कि मैं पापी हूँ, सदा खाते रहता हूँ व आपलोग धन्य हैं, जो तपस्यामें अपने देहका बल लगा रहे हैं। इस प्रकार प्रतिकूल संयोगमें शान्त रहके केवलपद मिला लिया। यह उसकी परिणामिकी बुद्धि है।

११ अमात्यपुत्र—मंत्रीके लडकेकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे-ब्रह्मदत्तके विषयमें दीर्घपृष्ठ राजाने वरधनु मंत्रीसे बहुत प्रश्न किए, उन सबोंके उत्तर और वैसे अन्य प्रसंगोंमें मंत्री वरधनुने इस प्रकारसे काम लिया कि दीर्घपृष्ठको भी मालुम नहीं हो सका कि यह मेरा विरोधी है और साथ २ ब्रह्मदत्तकी भी रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

१२ चाणक्यकी बुद्धिके बहुतसे उदाहरण हैं, उनमेंसे एक यहाँ दिया जाता है, जैसे--चन्द्रगुप्तके राज्य करते हुए जब भंडार समाप्त होने लगा तो चाणक्यने एक दिनके उत्पन्न हुए अश्व आदिकी याचना की और भंडारकी पूर्ति की। यह चाणक्यकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१३ स्थूलभद्रकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे-स्थूलभद्रके पिताको मार

देने पर नंदनने मंत्रिपदके लिए स्थूलभद्रको बहुत कुछ कहा, किन्तु उन्होंने भोगभावनाको नाशका कारण और संसारके सम्बन्धको दुःखकर मानकर मुनि-दीक्षा ले ली, यह स्थूलभद्रकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१४ नासिक्ये सुन्दरीनंद, जैसे-नासिकपुरके सुंदरीपतिको उसके भाई साधुने मेरुके शिखरपर ले जाके देवदेवी दिखाये। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

१५ वज्र-वज्रस्वामीकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे-वज्रस्वामीने बालकपनमें भी माताके प्रेमकी उपेक्षा करके संघका बहुमान किया, याने संघके दिखाये हुए रजोहरण-मुखवस्त्रिकारूप साधुवेशको लिया। किन्तु माताकी ओरसे दिए जाते हुए खिलौने आदि नहीं लिए।

१६ चरणाहत याने मस्तकपर चरण-प्रहार करनेवालेको क्या दण्ड देना चाहिए? इस विषयमें राजा और वृद्धोंकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे-कुछ तरुण सेवकोंने एक राजासे कहा कि देव! पके हुए केश और जीर्ण शरीरवाले बुड्ढोंको न रखकर तरुणोंको ही अपनी सेवामें रक्खें। वे आपके सभी काम कर सकेंगे। इसपर परीक्षाके लिए राजाने युवकोंसे पूछा कि यदि कोई मेरे शिरपर पाँवका प्रहार करे तो क्या दण्ड देना चाहिए? तरुणोंने कहा-महाराज! तिल जितने छोटे २ टुकडे कर उसको मरवा देना चाहिए। राजाने यही प्रश्न फिर वृद्धोंसे पूछा। वृद्धोंने कहा-स्वामिन्! हम विचार करके कहेंगे, ऐसा कहके वृद्ध एकान्तमें चले गए और विचारने लगे कि रानीके सिवाय अन्य राजाके मस्तकपर कौन पाँवका प्रहार कर सकता है? और रानी तो विशेष सम्मान करनेके लायक होती है इस प्रकार सोचके वृद्ध राजाके पास आकर बोले-देव! उसका विशेष सत्कार करना चाहिए। इसपर राजा बुड्ढोंकी बुद्धिपर बहुत प्रसन्न हुआ और सदा उनकोही अपने पासमें रखता। यह राजा और वृद्धोंकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१७ आमंडे-आमलक फलका दृष्टान्त, जैसे-किसी कुम्भकारने एक आदमीको एक बनावटी आंवला दिया। रंग रूप समान होनेपर भी उसने अतिशय कठिन स्पर्श और आंवलेके फलनेकी यह ऋतु नहीं, इससे समझ लिया कि यह असली नहीं है। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१८ मणि-एक सर्प वृक्षपर चढके सदा पक्षियोंके बच्चे खाया करता था। किसी दिन वह सर्प चूककर वृक्षसे नीचे गिर गया और मणि वृक्षके ही किसी प्रदेशपर रह गई। मणिके प्रकाशमें घूमनेवाला वह सर्प मणिके छूट जानेपर अपने अङ्गको बराबर नहीं संभाल सका। वृक्षके नीचे एक कूप था, उसमें जा पडा, ऊपर रहे हुए मणिकी किरणोंके कारण उस कूपका सारा जल लाल दिखने लगा। खेलते हुए किसी बालकने एकाएक यह आश्चर्यकी बात

देखी व आकर अपने पितासे निवेदन की उस बुड्ढेने भी वहाँ आकर अच्छी तरह देखा और कारणका पता लगाकर मणिको प्राप्त कर लिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१९ सर्प-चण्डकौशिककी बुद्धि, जैसे-भगवान् महावीरके अलौकिक रक्तके आस्वादको विचारपूर्वक देखकर चण्डकौशिकने ज्ञान प्राप्त करलिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

२० खड्ग-गेंडा-(अरण्य पशु विशेष)-की बुद्धि जैसे-किसी श्रावकने युवावस्थाके मदमें व्रतोंकी विना आलोचना किये ही प्राणत्याग किया। जिससे वह एक जंगलमें खड्ग-पशुके रूपमें उत्पन्न हुआ। और अटवीमें आने वाले मनुष्यको मारकर खाने लगा। किसी समय उस मार्गसे कुछ साधु चले आ रहे थे उसने साधुओंपर आक्रमण करना चाहा किन्तु उनके आत्मबलसे वैसा नहीं कर सका फिर विचार करते १ जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा अनशन करके देवलोक गया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

२१ स्तूपका दृष्टान्त, जैसे-विशाला नगरीके नाशके लिए कुलवालुक मुनिने कहा कि मुनिसुव्रत स्वामीके पादुकायुक्त स्तूपको उखड़वा दिया जाय तो नगरीका भंग हो सकता है। यह मुनिकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

यह उपरोक्त स्वरूपवाला अश्रुत निश्रित मतिज्ञान हुआ।

**मूल—से किं तं सुयनिस्सियं ? सुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—उग्गहे १ ईहा २ अवाओ ३ धारणा ४ ॥ सू. २६ ॥**

**छाया—अथ किन्तत्-श्रुतनिश्रितम् ? श्रुतनिश्रितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा—अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४ ॥ सू. २६ ॥**

टीका—प्र०-अब श्रुतनिश्रित मतिज्ञान कौनसा है ? उ०-श्रुतनिश्रित मतिज्ञान चार प्रकारका है, जैसे-अवग्रह १ ईहा २ अवाय ३ और धारणा ४।

स्पष्टीकरणरूप आदिकी विशेषतारहित पदार्थके सामान्यरूपका ज्ञान करना अवग्रह कहलाता है। अवग्रहसे गृहीत पदार्थमें क्या है क्या नहीं इस प्रकार विचारके तर्कको ईहा कहते हैं। विचारके उत्तर क्षणमें जो पदार्थका निश्चय होता वह अवाय कहाता है। अवग्रहसे निर्णीत अर्थका कुछ कालतक अविच्छिन्न उपयोग रहना अविच्युति और उससे जो संस्कार धारण हुआ वह वासना कहाती है यह संख्यात या असंख्यात काल तक रहती है, फिर कालान्तरमें किसी वैसे पदार्थको देखने आदिसे ऐसा ज्ञान होना कि यह वही पदार्थ है जो मैंने पहले देखा था इसको स्मृति कहते है, अविच्युति वासना

१ चलते हुए जिसके दोनों बाजूके चमड़े खड़करे रहते हैं।

और स्मृति ये तीनों धारणाके अवान्तर भेद हैं, अर्थात् अवायसे निर्णीत अर्थमें उपयोग, स्मरण और वासनाको धारणा कहते हैं॥ सू. २६॥

मूल—से किं तं उग्गहे? उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–अत्थुग्गहे य वंजणुग्गहे य॥ सू. २७॥

छाया–अथ कः सोऽवग्रहः? अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–अर्थावग्रहश्च व्यञ्जनावग्रहश्च॥ सू. २७॥

टीका–प्र०–यह अवग्रह कौनसा है? उ०–अवग्रह दो प्रकारका कहा गया है, जैसे–अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह॥ सू. २७॥

मूल—से किं तं वंजणुग्गहे? वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–सोइंदियवंजणुग्गहे, घाणिंदियवंजणुग्गहे, जिब्भिंदियवंजणुग्गहे, फासिंदियवंजणुग्गहे, से त्तं वंजणुग्गहे॥ सू. २८॥

छाया–अथ कः स व्यञ्जनावग्रहः? व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, एष व्यञ्जनावग्रहः॥ सू. २८॥

टीका–प्र०–यह व्यञ्जनावग्रह किस प्रकार है? उ०–व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारका है, जैसे–१ श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, २ घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, ३ जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, ४ स्पर्शेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, यह हुआ व्यञ्जनावग्रह। श्रोत्र आदि पांच उपकरणेन्द्रियोंका शब्द गन्ध आदि पुद्गलोंके साथ सम्बन्ध होनेको व्यञ्जन कहते हैं, उस सम्बन्धसे शब्द आदि पदार्थोंका जो अव्यक्त ज्ञान् होता है वह व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। अथवा इन्द्रियोंसे प्राप्त शब्द आदि द्रव्योंका अस्पष्ट ज्ञान भी व्यञ्जनावग्रह कहाता है। अर्थात् शब्द आदिके साथ उपकरणेन्द्रियके सम्बन्ध–क्षणसे लेकर अर्थावग्रहसे पूर्वतक जो सुप्त प्रमत्त या मूर्च्छित पुरुषकी तरह केवल शब्द गंध रस और स्पर्श कुछ है, ऐसा जो अव्यक्त ज्ञान होता है, वह व्यञ्जनावग्रह है। चक्षु और मनरूप आदिका सम्बन्ध किये विना ही ज्ञान करते हैं अतः इनसे व्यञ्जनावग्रह नहीं होता है। इसलिए व्यञ्जनावग्रहके चारही प्रकार हैं॥ सू. २८॥

मूल—से किं तं अत्थुग्गहे? अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–सोइंदिय–अत्थुग्गहे, चक्खिंदिय–अत्थुग्गहे, घाणिंदिय–अत्थु-

ग्गहे, जिब्भिंदिय–अत्थुग्गहे, फासिंदिय–अत्थुग्गहे, नोइंदिय–अत्थुग्गहे ॥ सू. २९ ॥

छाया–अथ कः सोऽर्थावग्रहः ? अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः, चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः, घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः, जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः, नोइन्द्रियार्थावग्रहः ॥ सू. २९ ॥

टीका–प्र०–यह अर्थावग्रह किसप्रकार है ? उ०–अर्थावग्रह छ प्रकारका कहा गया है, जैसे–१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, २ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह, ३ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, ४ रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह, ५ स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह, ६ नोइन्द्रिय(मन) अर्थावग्रह। पांच इन्द्रिय और मनसे पदार्थोंके सामान्य ज्ञान करनेको अर्थावग्रह कहते हैं, आश्रयके भेदसे वह छ प्रकारका है, जैसे–मार्गमें जल्दीसे चलते हुए कुछ दिख पडता है तो दर्शक यही कहता है कि मैंने कुछ देखा था, इसे अर्थावग्रह कहते हैं ॥ सू. २९ ॥

मूल—तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामभिज्जा भवंति, तं जहा–ओगेण्हणया, उवधारणया, सवणया, अवलंबणया, मेहा, से त्तं उग्गहे ॥ सू. ३० ॥

छाया–तस्येमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा–अवग्रहणता, उपधारणता, श्रवणता, अवलम्बनता, मेधा–स एषोऽवग्रहः ॥ सू. ३० ॥

टीका–उस अवग्रहके ये पांच नाम अनेकविध घोष और अनेक व्यञ्जनयुक्त होते हैं, जैसे–१ अवग्रहणता, २ उपधारणता, ३ श्रवणता, ४ अवलम्बनता, और ५ मेधा। यह अवग्रहका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू. ३० ॥

१ प्रथमसमयमें आए हुए शब्द आदि पुद्गलोंका ग्रहण करना अवग्रह कहलाता है। २ व्यञ्जनावग्रहके दूसरे आदि समयोंमें नवीन २ शब्द आदि पुद्गलोंका प्रतिसमय ग्रहण करना और पूर्वगृहीतका धारण करना यही उपधारणता है। ३ एक समयमें होनेवाला सामान्यरूपसे अर्थग्रहणरूप बोध श्रवणता है। ४ अर्थग्रहणही अवलम्बनता है। ५ मेधा स्पष्ट ही है।

मूल—से किं तं ईहा ? ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–सोइंदिय-ईहा चक्खिंदिय–ईहा, घाणिंदिय–ईहा, जिब्भिंदिय–ईहा, फासिंदिय–ईहा, नोइंदिय–ईहा, तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावं-

जणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा—आभोगणया, मग्गणया, गवेसणया, चिंता, विमंसा, से त्तं ईहा ॥ सू. ३१ ॥

छाया—अथ का सा ईहा ? ईहा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियेहा, चक्षुरिन्द्रियेहा, घ्राणेन्द्रियेहा, जिह्वेन्द्रियेहा, स्पर्शेन्द्रियेहा, नोइन्द्रियेहा, तस्या इमानि—एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—आभोगनता, मार्गणता, गवेषणता, चिन्ता, विमर्शः (मीमांसा) सा—एषा ईहा ॥ सू. ३१ ॥

टीका—प्र०—हे भगवन्! यह ईहा क्या है? उ०—ईहा छ प्रकारकी कही गई है, जैसे—१ श्रोत्रेन्द्रिय ईहा, २ चक्षुरिन्द्रिय ईहा, ३ घ्राणेन्द्रिय ईहा, ४ रसनेन्द्रिय ईहा, ५ स्पर्शेन्द्रिय ईहा, ६ नोइन्द्रिय ईहा। यह ईहारूप यह श्रुतनिश्रित मतिज्ञान हुआ।

इन्द्रियोंके पांच विषय और हर्ष विषाद आदि मानसिक भावके सम्बन्धमें ईहा-निर्णयार्थ विचार होता है अतएव इसके छ भेद किये गये हैं। उस ईहाके भी भिन्न घोष और नाना व्यंजनवाले ये एकार्थक पांच नाम होते हैं, जैसे कि १ आभोगनता, २ मार्गणता, ३ गवेषणता, ४ चिन्ता और ५ विमर्श। सामान्यरूपसे एकार्थक होते हुए भी विशेषमें ये भिन्नार्थक हैं, जैसे-अर्थावग्रहके बाद ही सद्भूत अर्थ-विशेषका आलोचन करना आभोगनता है। अन्वय व व्यतिरेक धर्मका अन्वेषण करना मार्गणा, और व्यतिरेक अर्थात् विरुद्ध धर्मके त्यागपूर्वक अन्य धर्मकी आलोचना करना गवेषणा है। सद्भूत अर्थका बारंबार चिन्तन करना चिन्ता और स्पष्ट विचार करना विमर्श ये पांचों ईहाके नामान्तर हैं, यह हुआ ईहाका वर्णन ॥ सू. ३१ ॥

मूल—से किं तं अवाए ? अवाए छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदिय-अवाए, चक्खिंदिय-अवाए, घाणिंदिय-अवाए, जिब्भिंदिय-अवाए, फासिंदिय-अवाए, नोइंदिय-अवाए, तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा—आउट्टणया, पच्चाउट्टणया अवाए, बुद्धी, विण्णाणे, से त्तं अवाए ॥ सू. ३२ ॥

छाया—अथ कः सोऽवायः ? अवायः षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियावायः १, चक्षुरिन्द्रियावायः २, घ्राणेन्द्रियावायः ३,

जिह्वेन्द्रियावायः ४, स्पर्शेन्द्रियावायः ५, नोइन्द्रियावायः ६, तस्य इमानि-एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यंजनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा-आवर्त्तनता १, प्रत्यावर्त्तनता २, अवायः ( अपायः ) ३, बुद्धिः ४, विज्ञानं ५, स एषोऽवायः ॥ सू. ३२ ॥

टीका-प्र०-भगवन्! यह अवायज्ञान कौनसा है? उ०-अवायज्ञान छ प्रकारका है, जैसे कि श्रोत्रेन्द्रिय अवाय १, चक्षुरिन्द्रिय अवाय २, घ्राणेन्द्रिय अवाय ३, रसनेन्द्रिय अवाय ४, स्पर्शेन्द्रिय अवाय ५, नोइन्द्रिय अवाय ६। श्रोत्रेन्द्रियके अर्थावग्रहको लेकर जो निश्चय किया जाता है वह श्रोत्रेन्द्रिय अवाय है, ऐसे आगे भी समझें, इस अवायके ये एकार्थक पांच नाम नानाघोष और नानाव्यंजनवाले होते हैं, जैसे कि १ आवर्त्तनता-ईहासे हटकर अवायके सम्मुख रहनेवाला ज्ञान, २ प्रत्यावर्त्तनता, ३ अवाय-सर्वथा ईहासे निवृत्त पदार्थका ज्ञान, ४ बुद्धि-उसी निर्णीत अर्थको स्थिरतासे बारंबार स्पष्टरूपमें जानना, ५ विज्ञान-विशिष्टज्ञान। यह अवायज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ। ॥ सू. ३२ ॥

मूल—से किं तं धारणा? धारणा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-सोइंदियधारणा, चक्खिंदियधारणा, घाणिंदियधारणा, जिब्भिंदियधारणा, फासिंदियधारणा, नोइंदियधारणा, तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा-धरणा, धारणा, ठवणा, पइट्ठा, कोट्ठे, से त्तं धारणा॥सू. ३३॥

छाया—अथ का सा धारणा? धारणा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियधारणा १, चक्षुरिन्द्रियधारणा २, घ्राणेन्द्रियधारणा ३, जिह्वेन्द्रियधारणा ४, स्पर्शेन्द्रियधारणा ५, नोइन्द्रियधारणा ६, तस्या इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यंजनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा-धरणा, धारणा, स्थापना, प्रतिष्ठा, कोष्ठः, स एषा धारणा ॥ सू. ३३ ॥

टीका-प्र०-गुरुदेव! वह धारणा कौनसी है? उ०-धारणा छ प्रकारकी है, जैसे कि १ श्रोत्रेन्द्रियधारणा, २ चक्षुरिन्द्रियधारणा, ३ घ्राणेन्द्रियधारणा, ४ रसनेन्द्रियधारणा, ५ स्पर्शेन्द्रियधारणा, ६ नोइन्द्रियधारणा। उस धारणाके ये एकार्थक पांच नाम-नामान्तर होते हैं, जो नानाघोष और नाना-

व्यञ्जनवाले हैं, जैसे कि-१ धरणा-जाने हुए अर्थको अविच्युतिपूर्वक अंत मुंहूर्ततक धरे रहना, २ धारणा-जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्य कालके बाद भी स्मरण (रखना), ३ स्थापना-हृदयमें उसको स्थापन करना, ४ प्रतिष्ठा-धृत अर्थको ही प्रभेदके साथ हृदयमें स्थापन करना, ५ कोष्ठ-कोठेकी तरह धारण किये अर्थको सुरक्षित रखना, यह धारणारूप मतिज्ञान सम्पूर्ण हुआ ॥ सू. ३३ ॥

मूल—उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ॥ सू. ३४ ॥

छाया—अवग्रह एकसामयिकः, आन्तर्मुहूर्तिकीहा, आन्तर्मुहूर्तिकोऽवायः, धारणा संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्॥सू. ३४॥

टीका—अब अवग्रह आदिका कालमान कहते हैं-अवग्रहज्ञान एक समय-तक रहता है। ईहा अंतर्मुहूर्त स्थितिवाली है और अवाय भी अंतर्मुहूर्तकी स्थितिवाला है। धारणा संख्यात काल या युगलिक आदिकी अपेक्षा असंख्य-कालतक भी रहती है ॥ सू. ३४ ॥

मूल—एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स वंजणुग्गहस्स परूवणं करिस्सामि पडिबोहगदिट्ठंतेण मल्लगदिट्ठंतेण य। से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं ? पडिबोहगदिट्ठंतेणं से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहिज्जा अमुगा अमुगत्ति, तत्थ चोयगे पन्नवगं एवं वयासी—किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? एवं वयंतं चोयगं पण्णवए एवं वयासी—नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, से त्तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं।

छाया—एवमष्टाविंशतिविधस्य-आभिनिबोधिकज्ञानस्य व्यञ्जनावग्र-

हस्य प्ररूपणं करिष्यामि प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च । अथ किं तत्प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ? प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः कंचित्पुरुषं सुप्तं प्रतिबोधयेत् अमुक-अमुक ! इति, तत्र चो(नो)दकः प्रज्ञापकमेवमवादीत्-किमेकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? यावद्दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? एवं वदन्तं नोदकं प्रज्ञापक एवमवादीत्-नो एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, यावन्नो दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, तदेतत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ।

टीका-( अर्थावग्रहके चार प्रकार, व्यञ्जनावग्रहके छह, ईहाके छह, अवायके छह, और धारणाके भी छह, इसप्रकार ये सब मिलकर मतिज्ञानके १८ भेद होते हैं ) इस तरह अट्ठाइस प्रकारका आभिनिबोधिक ज्ञान है। उस मतिज्ञानके व्यञ्जनावग्रहकी प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्तसे प्ररूपणा करूंगा । प्र०-प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे यह व्यञ्जनावग्रह किस प्रकार है ? उ०-प्रतिबोधक-जगानेवालेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा इस प्रकार है-जैसे कोई पुरुष किसी अनिर्दिष्टनामवाले सोये हुए पुरुषको ओ अमुक ! ओ अमुक ! ऐसा कहकर जगावे, इस विषयमें शिष्य गुरुको ऐसा पूछता है-भगवन् ! क्या एक समयके प्रविष्ट (कर्णमें गए हुए) पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं ? या यावत् दश समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते है ? या संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या असंख्येय समयके कानमें पडे हुए पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? इसप्रकार पूछते हुए शिष्यको आचार्य उत्तर फरमाते हैं-एक समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें नहीं आते, न दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते, यावद्दश समयतकके पुद्गल भी ग्रहणमें नहीं आते हैं, न संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहणमें आते, किन्तु असंख्यसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहण करनेमें आते हैं, यह प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप हुआ ।

व्यञ्जनवाले हैं, जैसे कि-१ धरणा-जाने हुए अर्थको अविच्युतिपूर्वक अंतर्मुहूर्ततक धरे रहना, २ धारणा-जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यकालके बाद भी स्मरण (रखना), ३ स्थापना-हृदयमें उसको स्थापन करना, ४ प्रतिष्ठा-धृत अर्थको ही प्रभेदके साथ हृदयमें स्थापन करना, ५ कोष्ठ-कोठेकी तरह धारण किये अर्थको सुरक्षित रखना, यह धारणारूप मतिज्ञान सम्पूर्ण हुआ ॥ सू. ३३ ॥

मूल—उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ॥ सू. ३४ ॥

छाया-अवग्रह एकसामयिकः, आन्तर्मुहूर्तिकीहा, आन्तर्मुहूर्तिकोऽवायः, धारणा संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् ॥सू. ३४॥

टीका-अब अवग्रह आदिका कालमान कहते हैं-अवग्रहज्ञान एक समयतक रहता है। ईहा अंतर्मुहूर्त स्थितिवाली है और अवाय भी अंतर्मुहूर्तकी स्थितिवाला है। धारणा संख्यात काल या युगलिक आदिकी अपेक्षा असंख्यकालतक भी रहती है ॥ सू. ३४ ॥

मूल—एवं अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स वंजणुग्गहस्स परूवणं करिस्सामि पडिबोहगदिट्ठंतेण मल्लगदिट्ठंतेण य। से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं ? पडिबोहगदिट्ठंतेणं से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहिज्जा अमुगा अमुगत्ति, तत्थ चोयगे पन्नवगं एवं वयासी—किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? एवं वयंतं चोयगं पण्णवए एवं वयासी—नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो संखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, असंखिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, से त्तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं।

छाया—एवमष्टाविंशतिविधस्य-आभिनिबोधिकज्ञानस्य व्यञ्जनावग्र-

हस्य प्ररूपणं करिष्यामि प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च । अथ किं तत्प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ? प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः कंचित्पुरुषं सुप्तं प्रतिबोधयेत् अमुक–अमुक ! इति, तत्र चो(नो)दकः प्रज्ञापकमेवमवादीत्–किमेकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? यावद्दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? एवं वदन्तं नोदकं प्रज्ञापक एवमवादीत्–नो एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, यावन्नो दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, तदेतत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ।

टीका–( अर्थावग्रहके चार प्रकार, व्यञ्जनावग्रहके छह, ईहाके छह, अवायके छह, और धारणाके भी छह, इसप्रकार ये सब मिलकर मतिज्ञानके १८ भेद होते हैं ) इस तरह अट्ठाइस प्रकारका आभिनिबोधिक ज्ञान है। उस मतिज्ञानके व्यञ्जनावग्रहकी प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्तसे प्ररूपणा करूंगा । प्र०–प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे यह व्यञ्जनावग्रह किस प्रकार है ? उ०–प्रतिबोधक–जगानेवालेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा इस प्रकार है–जैसे कोई पुरुष किसी अनिर्दिष्टनामवाले सोये हुए पुरुषको ओ अमुक ! ओ अमुक ! ऐसा कहकर जगावे, इस विषयमें शिष्य गुरुको ऐसा पूछता है–भगवन् ! क्या एक समयके प्रविष्ट ( कर्णमें गए हुए ) पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं ? या यावत् दश समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या असंख्येय समयके कानमें पडे हुए पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? इसप्रकार पूछते हुए शिष्यको आचार्य उत्तर फरमाते हैं–एक समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें नहीं आते, न दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते, यावद्दश समयतकके पुद्गल भी ग्रहणमें नहीं आते हैं, न संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहणमें आते, किन्तु असंख्यसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहण करनेमें आते हैं, यह प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप हुआ ।

मूल—से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं ? मल्लगदिट्ठंतेण से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खे- विज्जा से नट्ठे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्ठे, एवं पक्खिप्प- माणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं भरिहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं पवाहेहिति, एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्प- माणेहिं अणंतेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरियं होइ, ताहे 'हुं' ति करेइ, नो चेव णं जाणइ के एस सद्दाइ ? तओ ईहं पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं ।

छाया—अथ किं तत् (प्ररूपणं) मल्लकदृष्टान्तेन ? मल्लकदृष्टान्तेन स यथानामकः कश्चित्पुरुषः आपाकशीर्षतो मल्लकं गृहीत्वा तत्रैक- मुदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः, अन्योऽपि प्रक्षिप्तः, सोऽपि नष्टः, एवं प्रक्षिप्यमाणेषु २ भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं रावेहिति—आर्द्रयिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तस्मिन् मल्लके स्थास्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं भरि- ष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं प्रवाहयिष्यति, एवमेव प्रक्षिप्यमाणैः२ अनन्तैः पुद्गलैर्यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं भवति तदा हुमिति करोति, नो चैव जानाति क एष शब्दादिः ? तत ईहां प्रविशति ततो जानाति अमुक एष शब्दादिः, ततोऽ- वायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् ।

टीका-प्र०- मल्लक दृष्टान्तसे वह व्यञ्जनावग्रह कैसा है ? उ०-शरावेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप इस प्रकार है जैसे-यथानाम किसी पुरुषने किसी आपाकशीर्ष याने कुम्भारोंके भाण्ड पकानेके स्थानमें लगी हुई भाण्डराशि से एक मल्लक-शराया लेकर उसपर पानीकी एक बूंद डाली वह नष्ट हो गई, दूसरी बूंद डाली तो वह भी नष्ट हो गई,

इस प्रकार बिंदुओंके गिराते २ एक वह जलबिंदु होगा जो उस शरावेको गीला कर देगा, फिर इसीप्रकार बिंदुओंके गिरनेसे दूसरा वह जलबिंदु होगा जो उस शरावेपर ठहरेगा, फिर निरन्तर बिन्दुओंके डालनेसे एक वह जलबिन्दु होगा जिससे वह शरावा भरजायगा, ऐसेही एक वह जलबिन्दु होगा जो उस शरावेसे बाहर बह निकलेगा, इसी प्रकार (शरावेपर जलबिन्दुकी तरह) कर्णेन्द्रियपर शब्दयोग्य अनन्त पुद्गलोंके वारंवार निरन्तर गिराते २ जब वह व्यञ्जन (इन्द्रिय अथवा उपकरणेन्द्रिय और पुद्गलोंका सम्बन्ध) पूर्ण हो जाता है याने भर जाता है तब वह श्रोता 'हुं' ऐसा करता है याने अर्थावग्रहसे शब्द आदिका ग्रहण करता है, फिर भी नहीं जानता कि यह शब्द आदि कैसा है व किसका है! (अर्थावग्रहसे पूर्वका सामान्यमात्रग्राही ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है।) यही मल्लकदृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा हुई। फिर जब पदार्थोंका सामान्यग्रहणरूप अवग्रह हो गया तब ईहा-विचारणा-मे प्रवेश करता है अर्थात् यह क्या ? इसका विचार करने लगता है, उसके फलस्वरूप जानता है कि यह अमुक शब्द आदि हैं, तब अवायमें प्रवेश करता है, फिर अवायके बाद अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त वह शब्दादि ज्ञान उपगत-आत्मामें परिणत रहता है, उसके बाद धारणामें प्रवेश करता है, फिर सख्यात काल या असंख्यात कालपर्यन्त हृदयमें धारण करता है-धारे रहता है।

*उपरोक्त अवग्रह आदिका क्रम जागृत अवस्थामें कैसे घटित होगा ? क्योंकि जगे हुए प्राणीको शब्दश्रवणके समकालही अवग्रह ईहाके विना अवाय ज्ञान होता दिखता है, इस शंकाके निवारणार्थ—*

*अवग्रह ईहा अवाय और धारणाका छ भेदोंमें उदाहरणके साथ वर्णन करते हैं—*

मूल—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा तेणं सद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा तेणं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रूवत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रूवे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ ण धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घा-

मूल—से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं ? मल्लगदिट्ठंतेण से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खे- विज्जा से नट्ठे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्ठे, एवं पक्खिप्प- माणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिंति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं भरिहिंति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं पवाहेहिंति, एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्प- माणेहिं अणंतेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरियं होइ, ताहे 'हुं' ति करेइ, नो चेव णं जाणइ के एस सद्दाइ ? तओ ईहं पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं ।

छाया—अथ किं तत् ( प्ररूपणं ) मल्लकदृष्टान्तेन ? मल्लकदृष्टान्तेन स यथानामकः कश्चित्पुरुषः आपाकशीर्षतो मल्लकं गृहीत्वा तत्रैक- मुदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः, अन्योऽपि प्रक्षिप्तः, सोऽपि नष्टः, एवं प्रक्षिप्यमाणेषु २ भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं रावेहिति—आर्द्रयिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तस्मिन् मल्लके स्थास्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं भरि- ष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं प्रवाहयिष्यति, एवमेव प्रक्षिप्यमाणैः२ अनन्तैः पुद्गलैर्यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं भवति तदा हुमिति करोति, नो चैव जानाति क एष शब्दादिः ? तत ईहां प्रविशति ततो जानाति अमुक एष शब्दादिः, ततोऽ- वायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् ।

टीका-प्र०- मल्लक दृष्टान्तसे वह व्यञ्जनावग्रह कैसा है ? उ०-शरावेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप इस प्रकार है जैसे-यथानाम किसी पुरुषने किसी आपाकशीर्ष याने कुम्भारोंके भाण्ड पकानेके स्थानमें लगी हुई भाण्डराशि से एक मल्लक-शरावा लेकर उसपर पानीकी एक बूंद डाली वह नष्ट हो गई, दूसरी बूंद डाली तो वह भी नष्ट हो गई,

इस प्रकार बिंदुओंके गिराते २ एक वह जलबिंदु होगा जो उस शरावेको गीला कर देगा, फिर इसीप्रकार बिंदुओंके गिरनेसे दूसरा वह जलबिंदु होगा जो उस शरावेपर ठहरेगा, फिर निरन्तर बिन्दुओंके डालनेसे एक वह जल बिन्दु होगा जिससे वह शरावा भरजायगा, ऐसेही एक वह जलबिन्दु होगा जो उस शरावेसे बाहर वह निकलेगा, इसी प्रकार (शरावेपर जलबिन्दुकी तरह) कर्णेन्द्रियपर शब्दयोग्य अनन्त पुद्गलोंके वारंवार निरन्तर गिराते २ जब वह व्यञ्जन (इन्द्रिय अथवा उपकरणेन्द्रिय और पुद्गलोंका सम्बन्ध) पूर्ण हो जाता है याने भर जाता है तब वह श्रोता 'हु' ऐसा करता है याने अर्थावग्रहसे शब्द आदिका ग्रहण करता है, फिर भी नहीं जानता कि यह शब्द आदि कैसा है व किसका है! (अर्थावग्रहसे पूर्वका सामान्यमात्रग्राही ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है।) यही मल्लकदृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा हुई। फिर जब पदार्थोंका सामान्यग्रहणरूप अवग्रह हो गया तब ईहा-विचारणा-में प्रवेश करता है अर्थात् यह क्या? इसका विचार करने लगता है, उसके फलस्वरूप जानता है कि यह अमुक शब्द आदि है, तब अवायमें प्रवेश करता है, फिर अवायके बाद अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त वह शब्दादि ज्ञान उपगत-आत्मामें परिणत रहता है, उसके बाद धारणामें प्रवेश करता है, फिर संख्यात काल या असंख्यात कालपर्यन्त हृदयमें धारण करता है-धारे रहता है।

उपरोक्त अवग्रह आदिका क्रम जागृत अवस्थामें कैसे घटित होगा? क्यों कि जगे हुए प्राणीको शब्दश्रवणके समकालही अवग्रह ईहाके बिना अवाय ज्ञान होता दिखता है, इस शंकाके निवारणार्थ—

अवग्रह ईहा अवाय और धारणाका छ भेदोंमें उदाहरणके साथ वर्णन करते हैं—

मूल—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा तेणं सद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा तेणं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रूवत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रूवे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घा-

मूल—से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं ? मल्लगदिट्ठंतेण से जहानामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदुं पक्खेविज्जा से नट्ठे, अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि नट्ठे, एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उदगबिंदू जे णं तंसि मल्लगंसि ठाहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं भरिहिति, होही से उदगबिंदू जे णं तं मल्लगं पवाहेहिति, एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्पमाणेहिं अणंतेहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरियं होइ, ताहे 'हुं' ति करेइ, नो चेव णं जाणइ के एस सद्दाइ ? तओ ईहं पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं।

छाया—अथ किं तत् ( प्ररूपणं ) मल्लकदृष्टान्तेन ? मल्लकदृष्टान्तेन स यथानामकः कश्चित्पुरुषः आपाकशीर्षतो मल्लकं गृहीत्वा तत्रैकमुदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नष्टः, अन्योऽपि प्रक्षिप्तः, सोऽपि नष्टः, एवं प्रक्षिप्यमाणेषु २ भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं रावेहिति—आर्द्रयिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तस्मिन् मल्लके स्थास्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं भरिष्यति, भविष्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं प्रवाहयिष्यति, एवमेव प्रक्षिप्यमाणैः२ अनन्तैः पुद्गलैर्यदा तद् व्यञ्जनं पूरितं भवति तदा हुमिति करोति, नो चैव जानाति क एष शब्दादिः ? तत ईहां प्रविशति ततो जानाति अमुक एष शब्दादिः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्।

टीका-प्र०- मल्लक दृष्टान्तसे यह व्यञ्जनावग्रह कैसा है ? उ०-शरावेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप इस प्रकार है जैसे-यथानाम किसी पुरुषने किसी आपाकशीर्ष याने कुम्भारोंके भाण्ड पकानेके स्थानमें लगी हुई भाण्डराशि से एक मल्लक-शरावा लेकर उसपर पानीकी एक बूंद डाली वह नष्ट हो गई, दूसरी बूंद डाली तो वह भी नष्ट हो गई,

इस प्रकार बिंदुओंके गिराते २ एक वह जलबिंदु होगा जो उस शरावेको गीला कर देगा, फिर इसीप्रकार बिंदुओंके गिरनेसे दूसरा वह जलबिंदु होगा जो उस शरावेपर ठहरेगा, फिर निरन्तर बिन्दुओंके डालनेसे एक वह जलबिन्दु होगा जिससे वह शरावा भरजायगा, ऐसेही एक वह जलबिन्दु होगा जो उस शरावेसे बाहर बह निकलेगा, इसी प्रकार (शरावेपर जलबिन्दुकी तरह) कर्णेन्द्रियपर शब्दयोग्य अनन्त पुद्गलोंके वारंवार निरन्तर गिराते २ जब वह व्यञ्जन (इन्द्रिय अथवा उपकरणेन्द्रिय और पुद्गलोंका सम्बन्ध) पूर्ण हो जाता है याने भर जाता है तब वह श्रोता 'हुं' ऐसा करता है याने अर्थावग्रहसे शब्द आदिका ग्रहण करता है, फिर भी नहीं जानता कि यह शब्द आदि कैसा है व किसका है। (अर्थावग्रहसे पूर्वका सामान्यमात्रग्राही ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है।) यही मल्लकदृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा हुई। फिर जब पदार्थोंका सामान्यग्रहणरूप अवग्रह हो गया तब ईहा-विचारणा-में प्रवेश करता है अर्थात् यह क्या ? इसका विचार करने लगता है, उसके फलस्वरूप जानता है कि यह अमुक शब्द आदि है, तब अवायमें प्रवेश करता है, फिर अवायके बाद अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त वह शब्दादि ज्ञान उपगत-आत्मामें परिणत रहता है, उसके बाद धारणामें प्रवेश करता है, फिर संख्यात काल या असंख्यात कालपर्यन्त हृदयमें धारण करता है-धारे रहता है।

उपरोक्त अवग्रह आदिका क्रम जागृत अवस्थामें कैसे घटित होगा ? क्योंकि जगे हुए प्राणीको शब्दश्रवणके समकालही अवग्रह ईहाके बिना अवाय-ज्ञान होता दिखता है, इस शंकाके निवारणार्थ—

अवग्रह ईहा अवाय और धारणाका छ भेदोंमें उदाहरणके साथ वर्णन करते हैं—

मूल—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा तेणं सद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा तेणं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रूवत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रूवे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ ण धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं। से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घा-

इज्जा तेणं गंधत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस गंधेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस गंधे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ. तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रसं आसाइज्जा तेणं रसोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रसेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रसे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखिज्जं वा कालं असंखिज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं फासं पडिसंवेइज्जा तेणं फासेत्ति उग्गहिए, नो चेव ण जाणइ के वेस फासओत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस फासे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पासिज्जा तेणं सुमिणोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सुमिणेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सुमिणे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं, से त्तं मल्लगदिट्ठंतेणं ॥ सू. ३५ ॥

छाया–अथ यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं शब्दं शृणुयात् तेन शब्द इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति को वैष शब्दादिः ? तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति–अमुक एष शब्दः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । अथ यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं रूपं पश्येत् तेन रूपमित्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति किं वैतद् रूपमिति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति–अमुकमेतद्रूपम्, ततोऽवायं प्रविशति, ततस्तदुपगतं भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा

कालमसंख्येयं वा कालम्। स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं गन्धमाजिघ्रेत्-तेन गन्ध इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति को वैष गन्ध इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष गन्ध इति, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्। स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं रसमास्वादयेत तेन रस इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति-को वैष रस इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष रसः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्। स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं स्पर्शं प्रतिसंवेदयेत्, तेन स्पर्श इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति-को वैष स्पर्श इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष स्पर्शः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्। स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं पश्येत्, तेन स्वप्न इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति-को वैष स्वप्न इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष स्वप्नः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्, सैषा (प्ररूपणा) मल्लकदृष्टान्तेन ॥सू. ३५॥

टीका—श्रुत इन्द्रियसे अवग्रह आदिका स्वरूप कहते हैं-यथानामक किसी जागृत पुरुषने अव्यक्त शब्दको सुना और कुछ शब्द है ऐसा उसने ग्रहण किया, किन्तु जाति आदिसे नहीं जानता कि यह शब्द क्या है! फिर ईहा-तर्कमें प्रवेश करता है तब जानता है कि यह अमुक शंख आदिका शब्द है, इसके बाद अवाय-निश्चयज्ञानमें प्रविष्ट होता है तब वह सुना हुआ शब्द उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है तब संख्येय-काल वा असंख्येयकालपर्यन्त हृदयमें धारण किये रहता है। चक्षुरिन्द्रियसे अवग्रहादि, जैसे-यथानामक किसी पुरुषने अव्यक्तरूपको देखा और कोई रूप है ऐसा उसने ग्रहण किया, फिर भी यह रूप कौनसा है! ऐसा नहीं जानता, तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमुक मनुष्य आदिका

रूप है, बाद अवाय-निश्चयमें प्रवेश करता है, तब यह देखा हुआ रूप उपगत होता है, फिर धारणामें प्रविष्ट होता है, उसके बाद संख्येयकाल या असंख्येयकालतक उस रूपको हृदयमें धारण किये रहता है। घ्राणेन्द्रियसे अवग्रह आदि, जैसे-यथानामक कोई पुरुष अव्यक्त-जाति आदिसे अज्ञात गंधको सूंघता है, उससमय सामान्य रूपसे उसने गंध ऐसा ग्रहण किया, किन्तु कौनसा गंध है ! ऐसा नहीं जानता, तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमुक गंध है, फिर अवायको प्राप्त करता है, तब यह गंधज्ञान उपगत-प्राप्त होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, बाद संख्येयकाल या असंख्येयकालतक उसको धारण किये रहता है। रसनेन्द्रियसे अवग्रह आदि जैसे-कोई यथानामक पुरुष पहलेपहल अव्यक्त रसका आस्वाद करता है, उससमय उसने कोई रस है ऐसा ग्रहण किया, फिर भी यह कौनसा रस है ! ऐसा नहीं जानता, तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे अमुक रस है ऐसा जानता है, तब अवायमें प्रवेश करता है, उसके बाद यह रसज्ञान उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है तब संख्येयकाल या असंख्येय कालपर्यन्त उस रसज्ञानको धारण किये रहता है। अब स्पर्शेन्द्रियसे अवग्रह आदिका स्वरूप दिखाते हैं, जैसे-अज्ञात नामवाला कोई पुरुष अव्यक्तस्पर्शका प्रतिसंवेदन-अनुभव करता है, उससमय कोई स्पर्श है ऐसा उसने ग्रहण किया, किन्तु ऐसा नहीं जानता कि यह कौनसा स्पर्श है ! तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमुक स्पर्श है, फिर अवाय-निश्चयमें प्रवेश करता है, बाद यह स्पर्शज्ञान उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, तब संख्येयकाल अथवा असंख्येयकालतक उसको धारण कर रखता है। नोइन्द्रिय-मनसे अर्थावग्रह आदि ज्ञान इसप्रकार है, जैसे-किसी सामान्यनामा पुरुषने अव्यक्त स्वप्न देखा, प्रारम्भमें उसने कुछ स्वप्न है ऐसा ग्रहण किया, फिर भी ऐसा नहीं जानता कि यह कौनसा स्वप्न है ! तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे ऐसा जानता है कि यह अमुक स्वप्न है, फिर जब अवायमें प्रवेश करता है, तब यह स्वप्न उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, तब संख्येयकाल या असंख्येयकालतक उसको धारण किए रहता है, यह मल्लक दृष्टान्तसे अवग्रह आदिका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू. १५ ॥

मूल—तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ, न पासइ। खेत्तओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ, न पासइ। कालओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ, न पासइ। भावओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ, न पासइ।

छाया–तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतो नु–आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति, न पश्यति। क्षेत्रत आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति, न पश्यति। कालत आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वं कालं जानाति, न पश्यति। भावतो नु–आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वान् भावान् जानाति, न पश्यति।

टीका–यह आभिनिबोधिकज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भावसे। इनमें द्रव्यसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब द्रव्योंको जानता है किन्तु देखता नहीं, क्षेत्रसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सर्वक्षेत्रको जानता है किन्तु देखता नहीं, कालकी अपेक्षासे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब कालको जानता है परन्तु देखता नहीं, भावसे मतिज्ञानी सब भावोंको सामान्य प्रकारसे जानता है किन्तु देखता नहीं।

मतिज्ञानका उपसंहार–

मूल–गाहा–८२

उग्गह ईहाऽवाओ, य धारणा एव हुंति चत्तारि।
आभिणिबोहियनाण,–स्स भेयवत्थू समासेणं ॥ १ ॥

८३ अत्थाणं उग्गहणं,–मि उग्गहो तह वियालणे ईहा।
ववसायम्मि अवाओ, धरणं पुण धारणं बिंति ॥ २ ॥

८४ उग्गह इक्कं समयं, ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु।
कालमसंखं संखं, च धारणा होइ नायव्वा ॥ ३ ॥

८५ पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु।
गंधं रसं च फासं, च बद्धपुट्ठं वियागरे ॥ ४ ॥

८६ भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ।
वीसेढी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ५ ॥

८७ ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं ॥ ६ ॥
से त्तं आभिणिबोहियनाणपरोक्खं, से त्तं मइनाणं ॥ सू. २६ ॥

छाया–गाथा–८२

अवग्रह ईहाऽवायश्च, धारणा–एवं भवन्ति चत्वारि।
आभिनिबोधिकज्ञानस्य, भेदवस्तूनि समासेन ॥ १ ॥

छाया–तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतो नु–आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति, न पश्यति। क्षेत्रत आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति, न पश्यति। कालत आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वं कालं जानाति, न पश्यति। भावतो नु–आभिनिबोधिकज्ञानी–आदेशेन सर्वान् भावान् जानाति, न पश्यति।

टीका–वह आभिनिबोधिकज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे–१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भावसे। इनमें द्रव्यसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब द्रव्योंको जानता है किन्तु देखता नहीं, क्षेत्रसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सर्वक्षेत्रको जानता है किन्तु देखता नहीं, कालकी अपेक्षासे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब कालको जानता है परन्तु देखता नहीं, भावसे मतिज्ञानी सब भावोंको सामान्य प्रकारसे जानता है किन्तु देखता नहीं।

मतिज्ञानका उपसंहार–

मूल–गाहा–८२

उग्गह ईहाऽवाओ, य धारणा एव हुंति चत्तारि।
आभिणिबोहियनाण,–स्स भेयवत्थू समासेणं ॥ १ ॥

८३ अत्थाणं उग्गहणं,–मि उग्गहो तह वियालणे ईहा।
ववसायम्मि अवाओ, धरणं पुण धारणं बिंति ॥ २ ॥

८४ उग्गह इक्कं समयं, ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु।
कालमसंखं संखं, च धारणा होइ नायव्वा ॥ ३ ॥

८५ पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु।
गंधं रसं च फासं, च बद्धपुट्ठं वियागरे ॥ ४ ॥

८६ भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ।
वीसेढी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ५ ॥

८७ ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा।
सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं ॥ ६ ॥

से त्तं आभिणिबोहियनाणपरोक्खं, से त्तं मइनाणं ॥ सू. २६ ॥

छाया–गाथा–८२

अवग्रह ईहाऽवायश्च, धारणा–एवं भवन्ति चत्वारि।
आभिनिबोधिकज्ञानस्य, भेदवस्तूनि समासेन ॥ १ ॥

८३ अर्थानामवग्रहणे, अवग्रहस्तथा विचारणे-ईहा ।
व्यवसायेऽवायः, धरणं पुनर्धारणां ब्रुवते ॥ २ ॥

८४ अवग्रह एकं समयम्, ईहावायौ मुहूर्तमर्द्धं तु ।
कालमसंख्यं संख्येय(ख्य)ञ्च, धारणा भवति ज्ञातव्या ॥ ३ ॥

८५ स्पृष्टं शृणोति शब्दं, रूपं पुनः पश्यत्यस्पृष्टन्तु ।
गन्धं रसञ्च स्पर्शञ्च, बद्धस्पृष्टं व्यागृणीयात् ॥ ४ ॥

८६ भाषा समश्रेणीतः, शब्दं यं शृणोति मिश्रितं शृणोति ।
विश्रेणिं पुनः शब्दं, शृणोति नियमात्पराघाते ॥ ५ ॥

८७ ईहाऽपोहविमर्शाः, मार्गणा च गवेषणा ।
संज्ञा, स्मृतिः, मतिः, प्रज्ञा, सर्वमाभिनिबोधिकम् ॥ ६ ॥

तदेतदाभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षम्, तदेतन्मतिज्ञानम् ॥ सू. ३६ ॥

टीका-गाथार्थ-१ अवग्रह, २ ईहा, ३ अवाय है तथा ४ धारणा, इसप्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानके संक्षेपसे चार भेद होते हैं ॥ ८२ ॥

अर्थोंके ग्रहण होनेपर अवग्रहज्ञान, तथा उनके पर्यालोचन-विचारमें ईहाज्ञान होता है, अर्थोंके निश्चय होनेपर अवायज्ञान होता है तथा वासना आदिरूपसे धारण करनेको धारणा कहते हैं ॥ ८३ ॥

अवग्रह आदिका स्थिति-मान कहते हैं—

अवग्रह एक समयतक रहता है, ( विशेष एवं सामान्य अर्थावग्रह पृथक् अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है, ) ईहा और अवाय अर्द्धमुहूर्ततक होते हैं ( परमार्थसे अन्तर्मुहूर्त समझना चाहिए ), धारणा संख्यातकाल और असंख्यकालतक वासनारूपसे होती है, ऐसा समझना चाहिए ॥ ८४ ॥

शब्द स्पृष्ट-छूआ गया-(प्राप्त)-सुना जाता है और रूपको मनुष्य अस्पृष्ट-अप्राप्त याने इंद्रियसे बिना छूए देखता है, रस और गंध व स्पर्शको ( घ्राण आदि इन्द्रियोंके साथ ) स्पृष्ट व बद्ध-आत्मप्रदेशोंसे गृहीत होनेपर ही प्राणी निश्चय करता है अर्थात् जानता है ऐसा कहना चाहिए ॥ ८५ ॥

भाषाकी समश्रेणिमें रहा हुआ-शब्दरूपसे छोडा जाता हुआ पुद्गलसमूह भाषा कहाता है, उसके प्रचारार्थ क्षेत्रप्रदेशकी पंक्तियाँ समश्रेणि हैं जो हरएक वक्ताके छहों दिशाओंमें होती हैं, उनमें छोडी गई भाषायें प्रथमसमयमेंही लोकान्ततक चली जाती है, उन श्रेणियोंमें रहा हुआ जो सुनता है वह मिश्र-बीचके शब्दद्रव्योंसे मिश्रित शब्दको सुनता है, और विश्रेणिमें नियमसे परद्रव्योंसे अभिहत उत्कृष्ट शब्दद्रव्योंके अभिघातसे आहत होनेपर ही शब्दको सुनता है ॥ ८६ ॥

ईहा, अपोह, विमर्श और मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति व प्रज्ञा ये सब आभिनिबोधिक ज्ञान है, अर्थात् मतिज्ञानके पर्याय नाम है ॥ ८७ ॥

स्पष्टीकरण-सदर्थकी पर्यालोचनाको ईहा और निश्चय करनेको अपोह कहते हैं, अन्य भी काल व सूक्ष्मताकृत-भेदसे भिन्नार्थक नाम होते हैं, जो सुगम हैं। यह आभिनिबोधिक परोक्षज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ, यह पांच ज्ञानोंमें पहला मतिज्ञान पूर्ण हुआ ॥ सू. ३६ ॥

अब श्रुतज्ञानका वर्णन करते है।

मूल—से किं तं सुयनाणपरोक्खं ? सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पण्णत्तं, तं जहा—अक्खरसुयं १, अणक्खरसुयं २, सण्णिसुयं ३, असण्णिसुयं ४, सम्मसुयं ५, मिच्छासुयं ६, साइयं ७, अणाइयं ८, सपज्जवसियं ९, अपज्जवसियं १०, गमियं ११, अगमियं १२, अंगपविट्ठं १३, अणंगपविट्ठं १४ ॥ सू. ३७ ॥

छाया—अथ किं तच्छ्रुतज्ञानपरोक्षम् ? श्रुतज्ञानपरोक्षं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—१ अक्षरश्रुतम्, २ अनक्षरश्रुतम्, ३ संज्ञिश्रुतम्, ४ असंज्ञिश्रुतम्, ५ सम्यक्-श्रुतम्, ६ मिथ्याश्रुतम्, ७ सादिकम्, ८ अनादिकम्, ९ सपर्यवसितम्, १० अपर्यवसितम्, ११ गमिकम्, १२ अगमिकम्, १३ अङ्गप्रविष्टम्, १४ अनङ्गप्रविष्टम् ॥ सू. ३७ ॥

टीका-प्र०-वह श्रुतज्ञानरूप परोक्षज्ञान किस प्रकार है ? उ०-श्रुतज्ञानरूप परोक्षज्ञान चौदह प्रकारका कहा गया है, जैसे कि-१ अक्षरश्रुत २ अनक्षरश्रुत ३ संज्ञिश्रुत ४ असंज्ञिश्रुत ५ सम्यक्श्रुत ६ मिथ्याश्रुत ७ सादिश्रुत ८ अनादिश्रुत ९ सपर्यवसितश्रुत १० अपर्यवसितश्रुत ११ गमिकश्रुत १२ अगमिकश्रुत १३ अङ्गप्रविष्ट और १४ अनङ्गप्रविष्ट ॥ सू. ३७ ॥

क्रमशः श्रुतज्ञानके प्रत्येक भेदोंका स्वरूप सूत्रकार स्वयं करते है—

मूल—से किं तं अक्खरसुयं ? अक्खरसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—सन्नक्खरं, वंजणक्खरं, लद्धिअक्खरं। से किं तं सन्नक्खरं ? सन्नक्खरं अक्खरस्स संठाणागिई, से त्तं सन्नक्खरं। से किं तं वंजणक्खरं ? वंजणक्खरं—अक्खरस्स वंजणाभिलावो, से त्तं वंजणक्खरं। से किं तं लद्धिअक्खरं ? लद्धिअक्खरं—अक्खरलद्धियस्स लद्धिअक्खरं समुप्पज्जइ, तं जहा—सोइंदियलद्धिअक्खरं, चक्खिंदियलद्धिअक्खरं, घाणिंदियलद्धिअक्खरं,

रसणिंदियलद्धिअक्खरं, फासिंदियलद्धिअक्खरं, नोइंदियलद्धिअक्खरं, से त्तं लद्धिअक्खरं, से त्तं अक्खरसुयं ।

से किं तं अणक्खरसुयं? अणक्खरसुयं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा-

गाहा-८८

ऊससियं नीससियं, निच्छूढं खासियं च छीयं च ।
निस्सिंघियमणुसारं, अणक्खरं छेलियाईयं ॥ १ ॥

से त्तं अणक्खरसुयं ॥ सू. ३८ ॥

छाया-अथ किं तदक्षरश्रुतम्? अक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-संज्ञाक्षरं १, व्यञ्जनाक्षरं २, लब्ध्यक्षरम् ३ । अथ किं तत् संज्ञाक्षरम्? संज्ञाक्षरम्-अक्षरस्य संस्थानाऽऽकृतिः, तदेतत्संज्ञाक्षरम् । अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरम्? व्यञ्जनाक्षरम्-अक्षरस्य व्यञ्जनाभिलापः, तदेतद् व्यञ्जनाक्षरम् । अथ किं तल्लब्ध्यक्षरम्? लब्ध्यक्षरम्-अक्षरलब्धिकस्य लब्ध्यक्षरं समुत्पद्यते, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, घ्राणेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, रसनेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, स्पर्शेन्द्रियलब्ध्यक्षरम्, नोइन्द्रियलब्ध्यक्षरम् ६, तदेतल्लब्ध्यक्षरम्, तदेतदक्षरश्रुतम् ।

अथ किं तदनक्षरश्रुतम्? अनक्षरश्रुतमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-

गाथा-८८

उच्छ्वसितं निश्श्वसितं, निष्ठ्यूतं काशितञ्च क्षुतञ्च ।
निस्सिङ्घितमनुस्वार,-मनक्षरं सेंटितादिकम् ॥ १ ॥

तदेतदनक्षरश्रुतम् ॥ सू. ३८ ॥

टीका-प्र०-वह अक्षरश्रुत कौनसा है? उ०-अक्षरश्रुत तीन प्रकारका कहा गया है, जैसे-संज्ञाक्षर १ व्यञ्जनाक्षर २ लब्ध्यक्षर ३। प्र०-वह संज्ञाक्षर क्या है? उ०-आकार आदि-अक्षरकी पट्टी आदिपर बनाई हुई[1] संस्थानाकृति-रचना विशेषको संज्ञाक्षर कहते हैं, यह हुआ संज्ञाक्षर। प्र०-अब वह व्यञ्जनाक्षर किस प्रकार है? उ०-अक्षरके व्यञ्जनाभिलापको व्यञ्जनाक्षर कहते हैं, अर्थात् अकार आदि अक्षरोंके अर्थका स्पष्ट बोध हो उस तरह उच्चारण करना व्यञ्जनाक्षर है,

१ ज्ञान आत्मासे कभी नहीं हटता वास्ते यह अक्षर है, उपयोगशून्यावस्थामें भी जीवका स्वभाव होनेसे ज्ञान रहता ही है, उस भावाक्षरके कारण अकारादि वर्ण भी उपचारसे अक्षर कहाते हैं। अक्षररूप श्रुतको अक्षरश्रुत कहते हैं।

यह हुआ व्यञ्जनाक्षर। प्र०-वह लब्धि-अक्षर क्या है? उ०-अक्षरलब्धिवाले जीवको लब्धिअक्षर-भावश्रुत उत्पन्न होता है, वह छह प्रकारका है, जैसे-श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षर १, चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षर २, घ्राणेन्द्रियलब्ध्यक्षर ३, रसनेन्द्रियलब्धि-अक्षर ४, स्पर्शेन्द्रियलब्धि-अक्षर ५, नोइन्द्रियलब्धि-अक्षर ६, यह लब्ध्यक्षरका वर्णन हुआ यह पूर्वोक्त अक्षरश्रुत पूर्ण हुआ। स्पष्टीकरण-श्रोत्रेन्द्रियसे शब्द सुननेपर यह शङ्खका शब्द है इत्यादि अक्षरानुविद्ध जो शब्दार्थकी पर्यालोचनाका विज्ञान होता है वह श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तक होनेसे श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धिअक्षर कहाता है, इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये,

प्र० अब यह अनक्षरश्रुत किस प्रकार है? उ०-अनक्षरश्रुत अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे कि-उच्छ्वसित-ऊर्ध्वश्वास लेना, नि श्वसित-नीचा श्वास लेना, निष्ठ्यूत-थूँकना, काशित-खांसना, और छींकना नाक निसंघना और अनुस्वारयुक्त चेष्टा करना इसप्रकार सेण्टितादिक अनक्षरश्रुत हैं। यह अनक्षरश्रुतका वर्णन हुआ। स्पष्टीकरण ये उच्छ्वसित आदि ध्वनिमात्र भाव श्रुतके कारण होनेसे द्रव्यश्रुत कहाते हैं, अभिप्रायपूर्वक कुछ विशेषताके साथ किसीको कुछ अर्थ समझानेके लिए जब उच्छ्वास आदिका प्रयोग किया जाता है, तब चेष्टाएँ प्रयोगकर्ताके भावश्रुतकी फलरूप और श्रोताके भाव श्रुतकी कारण होती है और सुनी जाती हैं, इसलिए इनको अनक्षरात्मक श्रुत कहते हैं। हस्त आदिकी चेष्टाएँ इसप्रकार सुनी नहीं जाती अतः इनका अनक्षरश्रुतमें ग्रहण नहीं होता है॥ सू. ३८॥

मूल—से किं तं सण्णिसुयं? सण्णिसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा-कालिओवएसेणं, हेऊवएसेणं, दिट्ठिवाओवएसेणं, से किं तं कालिओवएसेणं? कालिओवएसेणं जस्स णं अत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं असण्णीति लब्भइ, से त्तं कालिओवएसेणं। से किं तं हेऊवएसेणं? हेऊवएसेणं जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं असण्णीति लब्भइ, से त्तं हेऊवएसेणं। से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं? दिट्ठिवाओवएसेणं सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ, असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ, से त्तं दिट्ठिवाओवएसेणं, से त्तं सण्णिसुयं, से त्तं असण्णिसुयं॥ सू. ३९॥

छाया–अथ किन्तत् संज्ञिश्रुतम्? संज्ञिश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन, दृष्टिवादोपदेशेन, अथ कोऽयं कालिक्युपदेशेन (संज्ञी)? कालिक्युपदेशेन यस्याऽस्ति ईहा, अपोहः, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्शः, स संज्ञीति लभ्यते, यस्य नास्ति ईहा, अपोहः, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्शः, सोऽसंज्ञीति लभ्यते, सोऽयं कालिक्युपदेशेन। अथ कोऽयं हेतूपदेशेन (संज्ञी)? हेतूपदेशेन यस्याऽस्ति–अभिसन्धारणपूर्विका करणशक्तिः स संज्ञीति लभ्यते, यस्य नास्ति–अभिसन्धारणपूर्विका करणशक्तिः, सोऽसंज्ञीति लभ्यते, सोऽयं हेतूपदेशेन। अथ कोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन (संज्ञी)? दृष्टिवादोपदेशेन संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञी लभ्यते, असंज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन असंज्ञी लभ्यते, सोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन (संज्ञी) तदेतत् संज्ञिश्रुतम्, तदेतदसंज्ञिश्रुतम् ॥ सू. ३९ ॥

टीका–प्र०–अब वह संज्ञिश्रुत क्या है? उ०–संज्ञिश्रुत तीन प्रकारका कहा गया है जैसे–१ कालिकी उपदेशसे, २ हेतूपदेशसे, ३ दृष्टिवादोपदेशसे। प्र०–अब कालिकी उपदेशसे वह संज्ञी क्या है? उ०–कालिकी उपदेशसे–जिस जीवको ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श[1] ये हैं, वह संज्ञी ऐसा प्राप्त होता–कहाता है। जिस जीवको ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श ये नहीं हैं, वह असंज्ञी ऐसा–कहाता है। (सम्मूर्च्छज, पञ्चेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय आदि अतिशय अल्प मनोलब्धिवाले होनेसे अस्फुट अर्थकोही जानते हैं, इससे उनकी आहारादि संज्ञा अव्यक्त रूपमें होती है ईहा आदि मानसिक क्रियाके अभावसे वे असंज्ञी है) यह दीर्घकालिकी उपदेशसे संज्ञी असंज्ञी हुए। प्र०–अब हेतूपदेशसे वह संज्ञी असंज्ञी किस प्रकार है? उ०–हेतूपदेशसे संज्ञी असंज्ञी, जैसे–जिस प्राणीको अव्यक्त या व्यक्त विचारपूर्वक क्रियामें प्रवृत्ति होती है वह हेतूपदेशसे संज्ञी प्राप्त होता है, सारांश–जो बुद्धिपूर्वक अपने देहके पालनके लिए इष्ट आहार आदिमें प्रवृत्ति करता और अनिष्टसे निवृत्त होता है, वह हेतूपदेशसे संज्ञी है, इस प्रकार विकलेन्द्रिय भी संज्ञी कहाते हैं। जिस जीवको विचारपूर्वक क्रिया करनेमें प्रवृत्ति नहीं है वह असंज्ञी कहाता है (जैसे–एकेन्द्रिय जीव), यह हेतूपदेशसे संज्ञी व असंज्ञीका विचार हुआ। प्र०–दृष्टि–सम्यक्त्वआदिके कथनकी अपेक्षा वह संज्ञी कौन है?

१ यह ऐसाही है या वैसाही इस प्रकारके विचारको विमर्श कहते हैं याने यथावस्थित वस्तुका वर्णन करना विमर्श है।

उ०-सम्यग्दृष्टिके श्रुतका क्षयोपशम होनेसे दृष्टिवादोपदेशके द्वारा संज्ञी होता है, ऐसेही असंज्ञिश्रुत-मिथ्याश्रुतके क्षयोपशमसे असंज्ञी कहाता है, यह दृष्टिवादोपदेशसे संज्ञी असंज्ञीका वर्णन हुआ। संज्ञी व असंज्ञी जीवोंके भेदसे संज्ञि असंज्ञिश्रुत भी तीन प्रकारका होता है। यह संज्ञिश्रुत हुआ। यह असंज्ञिश्रुतभी वर्णनसे पूर्ण हुआ॥ सू. ३९॥

मूल—से किं तं सम्मसुयं? सम्मसुयं जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं तेलुक्कनिरिक्खियमहियपूइएहिं तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा—आयारो १, सूयगडो २, ठाणं ३, समवाओ ४, विवाहपण्णत्ती ५, नायाधम्मकहाओ ६, उवासगदसाओ ७, अंतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्हावागरणाइं १०, विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२, इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं, अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुयं, तेण परं भिण्णेसु भयणा, से तं सम्मसुयं ॥ सू. ४० ॥

छाया—अथ किन्तत्सम्यक्-श्रुतम्? सम्यक्-श्रुतं यदिदम्—अर्हद्भिर्भगवद्भिरुत्पन्नज्ञानदर्शनधरैस्त्रैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः, अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः, सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः प्रणीतं द्वादशाङ्गं[1] गणिपिटकम्, तद्यथा—आचारः १, सूत्रकृतम् २, स्थानम् ३, समवायः ४, विवाहप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञाताधर्मकथाः ६, उपासकदशाः ७, अन्तकृद्दशाः ८, अनुत्तरौपपातिकदशाः ९, प्रश्नव्याकरणानि १०, विपाकश्रुतम् ११, दृष्टिवादः १२, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्-श्रुतम्, अभिन्नदशपूर्विणः सम्यक्-श्रुतम्, ततः परं भिन्नेषु भजना, तदेतत्सम्यक्-श्रुतम् ॥ सू. ४० ॥

टीका—प्र०-अब वह सम्यक्श्रुत कौनसा है? उ०-उत्पन्न हुए केवलज्ञान और केवलदर्शनको धारण करनेवाले तथा जो देव दानव मानव आदि प्राणिवर्गसे आदरपूर्वक देखे गये और स्तुति नमस्कारको प्राप्त करनेवाले हैं व भूत भविष्य वर्तमानके ज्ञाता होनेसे सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हैं, उन अर्हत् भग-

१ द्वादशानामङ्गानां समाहारे द्वादशाङ्गीति रूपम्, अत्र तु द्वादशाङ्गानि अस्मिन्निति बहुव्रीहि समासे द्वादशाङ्गमिति।

वन्त-तीर्थङ्करोंसे प्रणीत जो यह द्वादशाङ्गी गणिपिटक-शेठके रत्नपिटक (पेटी)की तरह आचार्यका सर्वस्व है, वह सम्यक्श्रुत है, उसके बारह अङ्ग हैं, जैसे-आचाराङ्ग १, सूत्रकृताङ्ग २, स्थानाङ्ग ३, समवायाङ्ग ४, विवाहप्रज्ञप्ति-अङ्ग ५, ज्ञाता-धर्मकथाङ्ग ६, उपासकदशाङ्ग ७, अन्तकृद्दशाङ्ग ८, अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग ९, प्रश्नव्याकरण १०, विपाकश्रुत ११, दृष्टिवाद १२, इस प्रकार यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक चौदहपूर्वीको सम्यक्श्रुत है तथा अभिन्नदशपूर्वी-सम्पूर्ण दश पूर्वका ज्ञान धारण करनेवालेको सम्यक्श्रुत है, क्योंकि-दशपूर्वका सम्पूर्ण ज्ञान सम्यक्त्वीको ही होता है, उससे आगे पूर्वोंके भिन्न होनेपर याने कुछ कम दश नव आदि पूर्वज्ञान हो तो सम्यक्श्रुतपनकी भजना है याने उसके लिये यह सम्यक्श्रुत भी हो सकता है और मिथ्या भी, नियम नहीं है। यह सम्यक्श्रुत हुआ ॥ सू. ४० ॥

मूल—से किं तं मिच्छासुयं ? मिच्छासुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं, तं जहा—भारहं, रामायणं, भीमासुरुक्खं(क्कं), कोडिल्लयं, सगडभद्दियाओ, खोड(घोडग)मुहं, कप्पासियं, नागसुहुमं, कणगसत्तरी, वइसेसियं, बुद्धवयणं, तेरासियं, काविलियं, लोगाययं, सट्ठितंतं, माढरं, पुराणं, वागरणं, भागवयं, पायंजली, पुस्सदेवयं, लेहं, गणियं, सउणरुयं, नाडयाइं, अहवा बावत्तरि कलाओ, चत्तारि य वेया संगोवंगा, एयाइं मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहियाइं मिच्छासुयं, एयाइं चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहियाइं सम्मसुयं, अहवा मिच्छदिट्ठिस्स वि एयाइं चेव सम्मसुयं, कम्हा ? सम्मत्तहेउत्तणओ, जम्हा ते मिच्छदिट्ठिया तेहिं चेव समएहिं चोइया समाणा केइ सपक्खदिट्ठीओ चयंति, से त्तं मिच्छासुयं ॥ सू. ४१ ॥

छाया—अथ किं तन्मिथ्याश्रुतम् ? मिथ्याश्रुतं यदिदमज्ञानिकैर्मिथ्यादृष्टिकैः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्, तद्यथा—भारतम् १, रामायणम् २, भीमासुरोक्तम् ३, कौटिल्यकम् ४, शकटभद्रिकाः ५, खोडा(घोटक)मुखम् ६, कार्पासिकम् ७, नागसूक्ष्मम् ८, कनकसप्ततिः ९, वैशेषिकम् १०, बुद्धवचनम् ११, त्रैराशिकम् १२, कापिलिकम् १३, लौकायतिकम् १४, षष्टितन्त्रम् १५, माठरम्

१ कुरुवंशके इतिहासको वर्णन करनेवाला ग्रन्थ। २ कणादका वैशेषिकदर्शन। ३ त्रैराशिक संप्रदायका एक ग्रन्थ देखो परिशिष्ट। ४ माठर—सांख्य तत्त्वस्थापक एक न्यायशास्त्र।

१६, पुराणम् १७, व्याकरणम् १८, भागवतम् १९, पातञ्जलिः २०, पुष्यदैवतम् २१, लेखम् २२, गणितम् २३, शकुनरुतम् २४, नाटकानि २५, अथवा द्वासप्ततिः कलाः, चत्वारश्च वेदाः साङ्गोपाङ्गाः, एतानि मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिगृहीतानि मिथ्याश्रुतम्, एतानि चैव सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि सम्यक्-श्रुतम् । अथवा मिथ्यादृष्टेरप्येतानि चैव सम्यक्-श्रुतम्, कस्मात् ? सम्यक्त्वहेतुत्वात्, यस्मात्ते मिथ्यादृष्टयस्तैश्चैव समयैर्नोदिताः सन्तः केचित्स्वपक्षदृष्टीस्त्यजन्ति, तदेतन्मिथ्याश्रुतम् ॥ सू. ४१ ॥

टीका-प्र०-वह मिथ्याश्रुत क्या है ? उ०-अल्पमति मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा अपनी इच्छानुसार बुद्धिकी कल्पनासे कल्पित जो ये ग्रन्थ वे मिथ्याश्रुत हैं, जैसे-भारत १, रामायण २, भीमासुर कथितग्रन्थ ३, कौटिल्य-अर्थशास्त्र ४, शकटभद्रिका ५, खोड (घोटक) मुख ६, कार्पासिक ७, नागसूक्ष्म ८, कनकसप्तति ९, वैशेषिक १०, बुद्धवचन ११, त्रैराशिक १२, कापिलीय[1] १३, लोकायत १४, षष्ठितन्त्र १५, माठर १६, पुराण १७, व्याकरण-शब्दशास्त्र या पाशावली आदिके प्रश्नोत्तर[2] १८, भागवत १९, पातञ्जलि २०, पुष्यदैवत २१, लेख २२, गणित २३, शकुनरुत २४ नाटक २५, अथवा ७२ कलाएँ और अङ्गोपाङ्गसहित चार वेद, ये सबग्रन्थ मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वरूपसे परिगृहीत-ग्रहण किये गये मिथ्याश्रुत हैं और ये ही भारत आदि सम्यग्दृष्टिवालेको सम्यक्त्वरूपसे परिगृहीत याने यथार्थरूपसे ग्रहण किये गये सम्यक्श्रुत हैं, अथवा मिथ्यादृष्टिके भी येही सम्यक् श्रुत हैं, क्योंकि उनकेसम्यक्त्वमें ये हेतु होते हैं, जिसलिये वे मिथ्यादृष्टि उन भारत आदिशास्त्र ग्रन्थोंसेही प्रेरणा-बोध पाये हुए कई स्वपक्षदृष्टि-अपनी मिथ्यादृष्टिको छोड देते हैं, इसलिये उनके लिये भी ये वेद आदि सम्यक्श्रुत हो जाते हैं । यहांमिथ्याश्रुतका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू. ४१ ॥

मूल—से किं तं साइयं सपज्जवसियं? अणाइयं अपज्जवसियं च ? इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठयाए साइयं सपज्जवसियं, अवुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइयं अपज्जवसियं, तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ दव्वओ णं सम्मसुयं एगं पुरिसं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, खेत्तओ णं पंच भरहाइं पंचेरवयाइं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं,

१ यह कपिलमुनिकृत शास्त्र है। २ अनुयोगद्वारमें इसको लौकिकागमके नामसे कहा है।

पंच महाविदेहाइं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, कालओ णं उस्सप्पिणिं ओसप्पिणिं च पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, नोउस्सप्पिणिं नोओसप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, भावओ णं जे जया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, तया ते भावे पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, खाओवसमियं पुण भावं पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, अहवा भवसिद्धियस्स सुयं साइयं सपज्जवसियं च, अभवसिद्धियस्स सुयं अणाइयं अपज्जवसियं च, सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणियं पज्जवक्खरं निप्फज्जइ, सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ ( चिट्ठइ ) । जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा—

" सुट्ठुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंदसूराणं । "

से त्तं साइयं सपज्जवसियं, से त्तं अणाइयं अपज्जवसियं ॥सू ४२॥

छाया—अथ किं तत्सादिकं सपर्यवसितम् ? अनादिकमपर्यवसितञ्च ? इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं व्युच्छित्तिनयार्थतया सादिकं सपर्यवसितम्, अव्युच्छित्तिनयार्थतयाऽनादिकमपर्यवसितम्, तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः नु सम्यक्-श्रुतम्—एकं पुरुषं प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, बहून् पुरुषांश्च प्रतीत्य अनादिकमपर्यवसितम्, क्षेत्रतो नु पञ्च भरतानि पञ्चैरावतानि प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, पञ्चमहाविदेहानि प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम्, कालत उत्सर्पिणीमवसर्पिणीञ्च प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितं, नोउत्सर्पिणीं नोअवसर्पिणीञ्च प्रतीत्याऽनादिकमपर्यवसितम्, भावतो नु ये यदा जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, तदा तान् भावान् प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, क्षायोपशमिकं पुनर्भावं प्रतीत्याऽनादिकमपर्यवसितम्, अथवा भवसिद्धिकस्य श्रुतं सादिकं सपर्यवसितञ्च, अभव-

सिद्धिकस्य श्रुतमनादिकमपर्यवसितञ्च । सर्वाकाशप्रदेशाग्रं सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितं पर्यवाक्षरं निष्पद्यते, सर्वजीवानामपि च अक्षरस्याऽनन्तभागो नित्यमुद्घाटितः ( तिष्ठति ), यदि पुनः सोऽपि–आव्रियेत तेन जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात् ॥

'सुट्ठुवि मेघसमुदये भवति प्रभा चंद्रसूर्याणाम् ।'

तदेतत् सादिकं सपर्यवसितम्, तदेतदनादिकमपर्यवसितम् ॥ सू ४२ ॥

टीका–प्र०–भगवन्! यह सादि सपर्यवसित–आदि अन्तवाला और अनादि अनन्त–श्रुत किस प्रकार है। उ०–पूर्वोक्त यह द्वादशाङ्गी गणिपिटक व्यवच्छित्तिनय–पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे सादि और सान्त है, तथा अव्यवच्छित्तिनय–द्रव्यार्थिकनयके अर्थकी अपेक्षा याने द्रव्यकी अपेक्षासे आदि अन्तरहित है। द्रव्य क्षेत्र आदिकी अपेक्षा सादि व अनादि श्रुतका विचार करते हैं–वह सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित श्रुत संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे कि १ द्रव्यसे २ क्षेत्रसे ३ कालसे व ४ भावसे, इनमें द्रव्यसे एक पुरुषकी अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि सान्त है और बहुतसे पुरुषोंकी अपेक्षासे कभी अभाव नहीं होनेके कारण अनादि अनन्त है, क्षेत्रसे पांच भरत व पांच ऐरावतको लेकर सादि सान्त है और पांच महाविदेहकी अपेक्षा श्रुत आदि व अन्तसे रहित है, कालसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालकी दृष्टिसे सादि सान्त है, और नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी–हानि वृद्धिरहित कालकी अपेक्षासे अनादि अनन्त भी है, भावसे जिनप्रज्ञपित जो भाव जिस समय कहे जाते, नाम आदि भेदसे दिखाये जाते व प्ररूपण दर्शन निदर्शन और उपनयरूप उपदर्शनसे कहे जाते है, उस समयके उन भावोंका आश्रयण करके सादि सपर्यवसित श्रुत है, और क्षायोपशमिक भावकी अपेक्षा अनादि अनन्त है, अथवा भवसिद्धिकका श्रुत सादि सान्त है क्योंकि मिथ्याश्रुतके त्याग और केवलज्ञानकी उत्पत्तिकी अपेक्षासे भव्यका श्रुत आदि अन्तवाला है, अभवसिद्धिकका श्रुत–मिथ्याश्रुत अनादि और अन्तरहित है, सभी आकाशके प्रदेशाग्रको सभी आकाश–प्रदेशोंसे अनन्तवार गुणन करनेपर पर्यायाक्षर निष्पन्न होता है। अर्थात् एक आकाश प्रदेशपर अनन्त अगुरुलघु पर्यायें होती हैं, अतः पर्यायपरिमाणका अक्षरज्ञान होता है, धर्मास्तिकाय आदि अल्पपरिमाणमें होनेसे सूत्रमें साक्षात् नहीं कहे गये हैं, किन्तु यहाँ उनका भी ग्रहण करना चाहिए, अर्थात् सब द्रव्यपर्यायोंका जितना परिमाण होता है, अक्षर परिमाण भी उतना होता है, वह अक्षर ज्ञानरूप और अकारादि वर्णरूप है, अकार ककार आदि प्रत्येक अक्षर ह्रस्व दीर्घ प्लुत आदि स्वपरपर्यायोंसे सभी द्रव्यपर्यायके समान अनन्त है और यह उत्कृष्ट श्रुतकेवलीको होता है। और अन्य सब

जीवोंको भी अक्षरका अनन्तवां भाग अर्थात् श्रुतज्ञानका अनन्तवां भाग सदा खुला रहता है, अगर फिर वह अनन्तवां भाग भी आवृत हो जाय तो उससे जीव अजीवपनको प्राप्त कर जाय, क्योंकि चैतन्य जीवका लक्षण है, इस विषयको दृष्टान्तसे कहते हैं-"बहुत सघन बादलके पटलसे आच्छादित होनेपर भी चन्द्र सूर्यकी प्रभा होती है यानी कुछ तो प्रकाश होता ही है, (इसी प्रकार अनन्तानन्त ज्ञानावरण-दर्शनावरणके कर्मपरमाणुसे आत्मप्रदेशके वेष्टित होनेपर भी आत्माको सर्वजघन्य ज्ञानमात्रा रहतीही है, यह ज्ञानमात्रा मतिश्रुतात्मक है, इसलिये श्रुतज्ञानका अनादिपन विरुद्ध नहीं होता है,) यह सादि सपर्यवसित श्रुत तथा अनादि अपर्यवसित श्रुतका भी वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू० ४१ ॥

मूल—से किं तं गमियं ? गमियं दिट्ठिवाओ, से किं तं अगमियं ? अगमियं कालियं सुयं, से त्तं गमियं, से त्तं अगमियं ।

छाया—अथ किं तद्गमिकम् ? गमिकं दृष्टिवादः। अथ किं तदगमिकम् ? अगमिकं कालिकं श्रुतम्, तदेतद् गमिकम्, तदेतदगमिकम् ।

टीका-प्र०-वह गमिक श्रुत किस प्रकार है? उ०-जिस सूत्रके आदि मध्य और अन्तमें कुछ विशेषतासे वारंवार उसी पाठका उच्चारण हो उसको गमिक कहते हैं, दृष्टिवाद गमिक श्रुत है। वह अगमिक श्रुत कौनसा है? उ०-अगमिक-गमिकसे विपरीत, आचाराङ्ग आदि कालिक श्रुत अगमिक हैं। यह गमिक श्रुत व अगमिक श्रुतका वर्णन पूर्ण हुआ।

मूल— अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च। से किं तं अंगबाहिरं ? अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आवस्सयं च आवस्सयवइरित्तं च । से किं तं आवस्सयं ? आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—सामाइयं १, चउवीसत्थओ २, वंदणयं ३, पडिक्कमणं ४, काउस्सग्गो ५, पच्चक्खाणं ६, से त्तं आवस्सयं ।

छाया—अथवा तत्समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अङ्गप्रविष्टम् अङ्गबाह्यञ्च । अथ किं तद्—अङ्गबाह्यम् ? अङ्गबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आवश्यकञ्च आवश्यकव्यतिरिक्तञ्च। अथ किं तदावश्यकम्, आवश्यकं षड्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सामायिकं १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनकं ३, प्रतिक्रमणं ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानम् ६, तदेतदावश्यकम् ।

टीका-अथवा वह श्रुतज्ञान संक्षेपसे दो प्रकारका है, जैसे-अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य। स्पष्टीकरण-श्रुतपुरुषके द्वादश अङ्गोंसे बाहिर्भूत जो शास्त्र है वह अङ्गबाह्य-अनङ्गप्रविष्ट हैं, अथवा गणधरदेवके वचनोंका आश्रय कर स्थविरोंसे रचे गये शेष श्रुत अनङ्गप्रविष्ट होते हैं, तथा जो नियमितरूपसे सर्वदा अङ्गकी तरह नहीं रहते वे अनङ्गप्रविष्ट कहाते हैं। प्र०-भगवन्! वह अङ्गबाह्य किस प्रकार है? उ०-अङ्गबाह्य श्रुत दो प्रकारका है, जैसे-आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त-भिन्न। प्र०-वह आवश्यक क्या है? उ०-आवश्यक छ प्रकारका कहा गया है, जैसे-सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दना ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५, और प्रत्याख्यान ६। (अवश्य करनेयोग्य क्रियाएँ आवश्यक हैं, उनको कहनेवाला श्रुत भी आवश्यक है) यह आवश्यकका वर्णन पूर्ण हुआ।

मूल—से किं तं आवस्सयवइरित्तं? आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-कालियं च उक्कालियं च। से किं तं उक्कालियं? उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा-दसवेआलियं, कप्पियाकप्पियं, चुल्लकप्पसुयं, महाकप्पसुयं, उववाइयं, रायपसेणियं जीवाभिगमो, पण्णवणा, महापण्णवणा, पमायप्पमायं, नंदी, अणुओगदाराइं, देविंदत्थओ, तंदुलवेयालियं, चंदाविज्जयं, सूर पण्णत्ती, पोरिसिमंडलं, मंडलपवेसो, विज्जाचरणविणिच्छओ, गणिविज्जा, झाणविभत्ती, मरणविभत्ती, आयविसोही, वीयरागसुयं, संलेहणासुयं, विहारकप्पो, चरणविही, आउरपच्चक्खाणं, महापच्चक्खाणं एवमाइ, से त्तं उक्कालियं।

छाया—अथ किन्तदावश्यकव्यतिरिक्तम्? आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-कालिकञ्च-उत्कालिकञ्च। अथ किं तदुत्कालिकम्? उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-दशवैकालिकं १, कल्पिकाकल्पिकं(कल्पाकल्पम्) २, चुल्ल(क्षुल्ल) कल्पश्रुतं ३, महाकल्पश्रुतम् ४, औपपातिकं ५, राजप्रश्नीकं ६, जीवाभिगमः ७, प्रज्ञापना ८, महाप्रज्ञापना ९, प्रमादाप्रमादं १०, नन्दी ११, अनुयोगद्वाराणि १२, देवेन्द्रस्तवः १३, तन्दुलवैचारिकं १४, चन्द्रकवेध्यं १५, सूर्यप्रज्ञप्तिः १६, पौरुषीमण्डलं १७, मण्डलप्रवेशः १८, विद्याचरणविनिश्चयः १९, गणिविद्या २०, ध्यानविभक्तिः २१, मरणविभक्तिः २२,

आत्मविशोधिः २३, वीतरागश्रुतं २४, सल्लेखनाश्रुतं २५, विहारकल्पः २६, चरणविधिः २७, आतुरप्रत्याख्यानं २८, महाप्रत्याख्यानम् २९, एवमादि, तदेतदुत्कालिकम् ।

टीका-प्र०-अब आवश्यकसे भिन्न वह कौनसा श्रुत है? उ०-आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत दो प्रकारका है, जैसे-कालिक श्रुत और उत्कालिक श्रुत, (जो दिनरातके प्रथम और अन्तिम प्रहररूप कालमें पढे जाते हैं वे कालिक तथा जो उससे भिन्न समयमें पढे जाते वे उत्कालिक कहाते हैं।) प्र०-भगवन्! वे उत्कालिक श्रुत कौनसे हैं? उ०-उत्कालिक श्रुत अनेक प्रकारके कहे गये हैं, जैसे कि दशवैकालिक, कल्पाकल्प, क्षुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, औपपातिक, रायपसेणिय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, महाप्रज्ञापना, प्रमादाप्रमाद, नन्दी, अनुयोगद्वार, देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवेयालिय(तन्दुल वैचारिक), चन्द्रविद्या, सूर्यप्रज्ञाप्ति, पौरुषीमण्डल, मण्डलप्रवेश, विद्याचरणविनिश्चय, गणिविद्या, ध्यानविभक्ति, मरणविभक्ति, आत्मविशुद्धि, वीतरागश्रुत, संलेखनाश्रुत, विहारकल्प, चरणविधि, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, इत्यादि, इस प्रकार नामके अनुसार विषयवाले ये २९ शास्त्र उत्कालिक हैं। यह उत्कालिकश्रुतका वर्णन पूर्ण हुआ।

मूल—से किं तं कालियं? कालियं अणेगविहं पण्णत्तं? तं जहा—उत्तरज्झयणाइं, दसाओ, कप्पो, ववहारो, निसीहं, महानिसीहं, इसिभासियाइं, जंबूदीवपन्नत्ती, दीवसागरपन्नत्ती, चंदपन्नत्ती, खुड्डिआविमाणपविभत्ती, महल्लियाविमाणपविभत्ती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया, अरुणोववाए, वरुणोववाए, गरुलोववाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलंधरोववाए, देविंदोववाए, उट्ठाणसुयं, समुट्ठाणसुयं, नागपरियावणियाओ, निरयावलियाओ, कप्पियाओ, कप्पवडंसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हीदसाओ, (आसीविसभावणाणं, दिट्ठिविसभावणाणं, सुमिणभावणाणं, महासुमिणभावणाणं, तेयग्गिनिसग्गाणं,) एवमाइयाइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवओ अरहओ उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स, तहा संखिज्जाइं पइन्नगसहस्साइं मज्झिमगाणं जिणवराणं, चोद्दसपइन्नगसहस्साणि

१ उत्कालिकश्रुतका विशेष वर्णन परिशिष्टमें देखें।

[1] भगवओ वद्धमाणसामिस्स, अहवा जस्स जत्तिया सीसा उप्पत्तिआए वेणइयाए कम्मयाए परिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेया, तस्स तत्तियाइं पइण्णगसहस्साइं, पत्तेयबुद्धा वि तत्तिया चेव, से त्तं कालियं, से त्तं आवस्सयवइरित्तं, से त्तं अणंगपविट्ठं ॥ सू. ४३ ॥

छाया—अथ किं तत्कालिकम्? कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—उत्तराऽध्ययनानि, दशाः, कल्पः, व्यवहारः, निशीथं, महानिशीथम्, ऋषिभाषितानि, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः, चन्द्रप्रज्ञप्तिः, क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्तिः, महल्लिका(महा)-विमानप्रविभक्तिः, अङ्गचूलिका, वर्गचूलिका, विवाहचूलिका, *अरुणोपपातः, वरुणोपपातः; गरुडोपपातः; धरणोपपातः*, वैश्रमणोपपातः, वेलन्धरोपपातः, देवेन्द्रोपपातः, उत्थानश्रुतं, समुत्थानश्रुतं, नागपरिज्ञापनिकाः, निरयावलिकाः, कल्पिकाः, कल्पावतंसिकाः, पुष्पिताः, पुष्पचूलिका(चूला), वृष्णिदशाः, (आशीविषभावनं, दृष्टिविषभावनंस्वप्नभावनं, महास्वप्नभावनं तेजोऽग्निनिसर्गः) एवमादिकानि चतुरशीति प्रकीर्णकसहस्राणि भगवतोऽर्हत ऋषभस्वामिन आदितीर्थङ्करस्य, तथा संख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमकानां जिनवराणाम्, चतुर्दशप्रकीर्णकसहस्राणिभगवतो वर्द्धमानस्वामिनः, अथवा यस्य यावन्तः शिष्या औत्पत्तिक्या वैनयिक्या कर्मजया पारिणामिक्या चतुर्विधया बुद्धयोपपेताः, तस्य तावन्ति प्रकीर्णकसहस्राणि, प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्तश्चैव, तदेतत्कालिकम्, तदेतदावश्यकव्यतिरिक्तम्, तदेतदनङ्गप्रविष्टम् ॥ सू. ४३ ॥

टीका-प्र०—यह कालिकश्रुत कौनसा है? उ०—कालिकश्रुत अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे कि १ उत्तराध्ययनसूत्र, २ दशाश्रुतस्कन्ध, ३ कल्प-बृहत्कल्पसूत्र, ४ व्यवहार, ५ निशीथ, ६ महानिशीथ, ७ ऋषिभाषित, ८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ९ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, १० चन्द्रप्रज्ञप्ति, ११ क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति, १२ महतीविमानप्रविभक्ति, १३ अङ्गचूलिका, [illegible] वर्गचूलिका, १५ वियाहचूलिका, १६ अरुणोपपात, १७ वरुणोपपात, १८ गरुडोपपात, १९ धरणोपपात, २० वैश्र-

मणोपपात, २१ वेलन्धरोपपात, २२ देवेन्द्रोपपात, २३ उत्थानश्रुत, २४ समुत्थानश्रुत, २५ नागपरिज्ञा, २६ निरयावलिका, २७ कल्पिका, २८ कल्पावतंसिका, २९ पुष्पिता, ३० पुष्पचूलिका, ३१ वृष्णिदशा, ( अन्धकवृष्णिदशा ) आशीविष[1] इत्यादिक ८४ हजार प्रकीर्णक प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् श्री ऋषभदेव स्वामीके हैं, तथा संख्यात हजार प्रकीर्णक मध्यम जिनवरोंके हैं, भगवान् वर्द्धमान स्वामीके १४ हजार प्रकीर्णक होते हैं। अथवा जिन तीर्थङ्करके जितने शिष्य औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी इन चार प्रकारकी बुद्धिसे युक्त हैं, उन तीर्थंकरोंके उतने ही हजार प्रकीर्णक होते हैं और प्रत्येक बुद्ध भी उतनेही हैं, यह कालिकश्रुत, आवश्यकव्यतिरिक्त, तथा अनङ्गप्रविष्ट श्रुतका वर्णन समाप्त हुआ ॥ सू. ४३ ॥

मूल—से किं तं अंगपविट्ठं ? अंगपविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं, तं जहा—आयारो १, सुयगडो २, ठाणं ३, समवाओ ४, विवाहपन्नत्ती ५, नायाधम्मकहाओ ६, उवासगदसाओ ७, अंतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्हावागरणाइं १०, विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२ ॥ सू. ४४ ॥

छाया—अथ किं तद् अङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आचारः १, सूत्रकृत् २, स्थानं ३, समवायः ४, विवाहप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञाताधर्मकथाः ६, उपासकदशाः ७, अन्तकृद्दशाः ८, अनुत्तरौपपातिकदशाः ९, प्रश्नव्याकरणानि १०, विपाकश्रुतम् ११, दृष्टिवादः १२ ॥ सू. ४४ ॥

टीका—प्र०—वह अङ्गप्रविष्ट श्रुत कैसा है ? उ०—अङ्गप्रविष्टश्रुत बारह प्रकारका कहा गया है, जैसे—१ आचार—आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ विवाहप्रज्ञप्ति—भगवती, ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकदशाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, ९ अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाकश्रुत, और १२ दृष्टिवाद ॥ सू. ४४ ॥

प्रत्येकका स्वरूप व परिचय क्रमसे आगे सूत्रकार स्वयं कहते हैं—

मूल—से किं तं आयारे ? आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयारगोयरविणयवेणइयसिक्खाभासाअभासाचरणकरणजायामाया—

१ आशीविषभावन, दृष्टिविषभावन, चारणभावन, स्वप्नभावन, महास्वप्नभावन, और तेजोऽग्निनिसर्ग ये नाम भी किसी २ प्रतिमें मिलते हैं।

२ अव्युत्पन्नमपि भवति नामेति नियमाद्दीर्घः।

वित्तीओ आघविज्जंति, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–नाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे, आयारे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ,संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीई उद्देसणकाला, पंचासीई समुद्देसणकाला, अट्ठारसपयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं आयारे ॥ सू. ४५ ॥

छाया–अथ कः स आचारः? आचारे श्रमणानां निर्ग्रन्थानामाचारगोचरविनयवैनयिकशिक्षाभाषाऽभाषाचरणकरणयात्रामात्रावृत्तय आख्यायन्ते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–ज्ञानाचारः १, दर्शनाचारः २, चारित्राचारः ३, तपआचारः ४, वीर्याऽऽचारः ५, आचारे नु परीता (परिमिता) वाचना, संख्येयानि–अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, स नु अङ्गार्थतया प्रथममङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानि, पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः, पञ्चाशीतिः समुद्देशनकालाः, अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृत-निबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं

---

१ परिपूर्वकस्य क्तप्रत्ययान्तस्य गत्यर्थकस्य इण्धातोः परीतमिति रूपम्, तस्य परीता–परिमितेति तात्पर्यम् ।

ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, स एष आचारः ॥ सू. ४५ ॥

टीका-प्र०अथ-आचार श्रुत नामके प्रथम अङ्गमें क्या वर्णन है? उ०-आचाराङ्गमें श्रमणनिर्ग्रन्थोंके अनेकविध आचार, गोचर भिक्षाग्रहणाविधि, विनय और विनयफल, तथा ग्रहणा व मूलगुण उत्तरगुणकी आसेवना रूप शिक्षा, सत्य व्यवहारभाषा, असत्य और मिश्र अभाषा-नहीं बोलने-योग्य वचन, महाव्रत आदि आचरण, व पिण्डविशुद्धि आदि करण, संयमयात्रा-संयमनिर्वाहके लिये आहारका प्रमाण और उसके निर्वाहकी वृत्ति, ये सब भाव कहे जाते हैं। यह आचार संक्षेपसे पांच प्रकारका है, जैसे-१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार, ५ वीर्याचार। आचाराङ्गमें सूत्र अर्थ प्रदानरूप वाचनाएँ परिमित है, उपक्रम निक्षेप आदि संख्येय अनुयोगद्वार है, वेढ (छन्दोविशेष भी) संख्यात हैं। तथा संख्यात श्लोक और संख्यात निर्युक्तियाँ हैं, प्रतिपत्ति-द्रव्य आदि पदार्थके कथनकी शैली, या प्रतिमा-अभिग्रह विशेषरूप प्रतिपत्तियाँ संख्यात है, अङ्गकी दृष्टिसे यह आचार प्रथम अङ्ग है, दो इसके श्रुतस्कन्ध और पचीस अध्ययन है, ८५ उद्देशन काल और ८५ समुद्देशनकाल हैं, पदाग्रपदपरिमाणसे अठारह हजार इसके पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्तगम-अर्थज्ञान होते हैं (एक १ पदमें अपरिमित अर्थ ज्ञान होनेसे) स्वपरभेदसे पर्याय भी अनन्त है। त्रसद्वीन्द्रिय आदि परिमित हैं और स्थावर अनन्त हैं, धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत तथा प्रयोग व विस्त्रसासे होनेवाले घटसन्ध्याराग आदि-कृत ये सभी आचाराङ्गमें निबद्ध स्वरूपसे कहे गए, तथा निकाचित निर्युक्ति हेतु व उदाहरणपूर्वक अनेक तरहसे व्यवस्थापित ऐसे जिनप्रदर्शित भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन आदि विशेषतासे समझाये जाते हैं। भावसे सम्यक् आचाराङ्गके पढनेपर जो फल होता है उसे दिखाते हैं-यह आचाराङ्गका पाठक तद्रूप याने आचाररूप हो जाता है, जिस प्रकार आचाराङ्गमें कहा है उसी प्रकार आचार आदिका ज्ञाता होता है, इसी प्रकार विशेषता के साथ भी उनको जानता है, इस प्रकार आचाराङ्गमें चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है। यह आचाराङ्गका स्वरूप पूर्ण हुआ॥ सू ४५॥

मूल—से किं तं सूयगडे? सूयगडे णं लोए सूइज्जइ, अलोए सूइज्जइ, लोयालोए सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाऽजीवा सूइज्जंति, ससमए सूइज्जइ, परसमए सूइज्जइ, ससमय-परसमए सूइज्जइ, सूयगडे णं असीयस्स किरियावाइसयस्स, चउरासीइए अकिरियावाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं,

१ देखें परिशिष्ट।

तेसट्ठाणं पासंडियसयाणं बूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ, सूयगडे णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (संखिज्जाओ संगहणीओ) संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए बिईए अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसण-काला, तित्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साणि पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं सूयगडे २ ॥ सू० ४६ ॥

छाया–अथ किं तत् सूत्रकृतम्? सूत्रकृते लोकः सूच्यते, अलोकः सूच्यते, लोकालोकौ सूच्येते, जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते, जीवाऽजीवाः सूच्यन्ते, स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते, स्वसमयपरसमयाः सूच्यन्ते, सूत्रकृते–अशीत्यधिकस्य क्रिया-वादिशतस्य, चतुरशीतिरक्रियावादिनां, सप्तषष्टेरज्ञानिकवादिनां (अज्ञानवादिनां), द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, त्रयाणां त्रिषष्ठ्य-धिकानां पाषण्डिकशतानां व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते, सूत्रकृते परीता वाचनाः, संख्येयानि–अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः (संख्येयाः सङ्ग्र-हण्यः) संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया द्वितीयमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरध्ययनानि, त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः, त्रयस्त्रिंशत् समुद्देशनकालाः, षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परिमि-(री)तास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते

उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-करणप्ररूपणाऽऽख्यायते, तदेतत्सूत्रकृतम् ॥ सू. ४६ ॥

टीका-प्र०-भगवन्! सूत्रकृताङ्गमें क्या वर्णन है? उ०-सूत्रकृतसे पञ्चास्तिकायात्मक लोक सूचित किया जाता है (कहा जाता है), अलोक कहा जाता है और लोकालोक दोनों कहे जाते हैं, जीव कहे जाते, अजीव कहे जाते और जीव अजीव उभय कहे जाते हैं तथा सूत्रकृतसे स्वसमय-जैनदर्शन कहा जाता, परसमय-परमत कहा जाता और स्वसमय परसमय दोनों कहे जाते हैं, सूत्रकृतमें एकसौ अस्सी क्रियावादियोंके, चौरासी अक्रियावादियोंके, सतसठ अज्ञानवादियोंके, बत्तीस विनयवादियोंके इसप्रकार सब मिलकर तीनसो त्रेसठ पाखण्डियोंके व्यूहको बनाकर स्वसमय-स्वमत स्थापन किया जाता है, सूत्रकृतमें परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात वेढरूप छन्द और संख्येय श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्ति व संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, अङ्गकी अपेक्षा यह सूत्रकृत दूसरा अङ्ग है, दो श्रुतस्कन्ध और इसके तेवीस अध्ययन हैं, तैंतीस उद्देशनकाल तथा तैतीस ही समुद्देशनकाल है, पदाग्रसे इसके छत्तीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त अर्थज्ञान हैं, अनन्त पर्यायें हैं, त्रस परिमित हैं और स्थावर अनन्त है, धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यरूपसे शाश्वत और प्रयोग व विस्रसाकरणरूपसे निबद्ध है तथा हेतु आदिसे व्यवस्थापित जो जिनप्रणीत भाव हैं वे इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन व उपदर्शन आदि विशेषतासे कहे जाते है, (अध्ययनकर्ताके लिये फल दिखाते हैं)-सूत्रकृताङ्गका यह पाठक अध्ययनोक्त विषयमें तदेकतान होनेसे एवम्भूत होता है, शास्त्रोक्त पदार्थोंका उसीप्रकार ज्ञाता व तदनुसारही विज्ञाता होता है, इसप्रकार सूत्रकृतमें चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है, यह हुआ सूत्रकृताङ्गनामक दूसरा अङ्ग ॥ सू० ४६ ॥

मूल—से किं तं ठाणे ? ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, ससमए ठाविज्जइ, परसमए ठाविज्जइ, ससमयपरसमए ठाविज्जइ, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोयालोए ठाविज्जइ, ठाणे णं टंका, कूडा, सेला, सिहरिणो, पब्भारा, कुंडाइं, गुहाओ, आगरा, दहा, नईओ, आघविज्जंति, ठाणे णं एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणगविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ, ठाणे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ,

१ देखें परिशिष्टमें

संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए तईए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एगवीसं उद्देसणकाला, एगवीसं समुद्देसणकाला, बावत्तरिपयसहस्सा पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं ठाणे ३ ॥ सू० ४७ ॥

छाया–अथ किं तत् स्थाने? स्थानेन जीवाः स्थाप्यन्ते, अजीवाः स्थाप्यन्ते, जीवाऽजीवाः स्थाप्यन्ते, स्वसमयः स्थाप्यते, परसमयः स्थाप्यते, स्वसमयपरसमयौ स्थाप्येते, लोकः स्थाप्यते, अलोकः स्थाप्यते, लोकाऽलोकौ स्थाप्येते, स्थाने टङ्कानि, कूटानि, शैलाः, शिखरिणः, प्राग्भाराः, कुण्डानि, गुहाः, आकराः, ह्रदाः, नद्य आख्यायन्ते, स्थाने एकादिकयैकोत्तरिकया वृद्धया दशस्थानकविवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणाऽऽख्यायते, स्थाने परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया तृतीयमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, दशाऽध्ययनानि, एकविंशतिरुद्देशनकालाः, एकविंशतिः समुद्देशनकालाः, द्वासप्ततिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एव विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, तदेतत्स्थानम् (ने) ॥ सू० ४७ ॥

टीका–प्र०–गुरुदेव! स्थानाङ्गमें क्या विषय है? उ०–स्थानाङ्गसे जीव स्थापन किये जाते, अजीव स्थापन किये जाते और जीवअजीव दोनों

स्थापन किये जाते हैं, स्वसमय स्थापन किया जाता है, परसमय स्थापन किया जाता है तथा स्वसमय परसमय दोनों स्थापन किये जाते हैं, लोकस्वरूप स्थापन किया जाता है, अलोक स्थापन किया जाता है और लोक अलोक दोनों स्थापन किये जाते हैं, फिर स्थानाङ्गमें टङ्क-पर्वतके टूटे हुए तट, शिखर, शैल-हिमवत् आदि पर्वत, शिखरवाले पर्वत, प्राग्भार-ऊपरसे कुछ झुका हुआ कूट अथवा पर्वतके ऊपर हाथीके कुम्भकी आकृतिके समान निकले हुए विभाग, कुण्ड-गङ्गाप्रपातकुण्ड आदि, गुहा-बड़ी गुफा, आकर-लोह आदिकी खान, ह्रद-द्रह-जलाशय, और नदी ये सब कहे जाते हैं। स्थानाङ्गमें एकसे लेकर आगे एक एककी वृद्धिसे दश स्थानतक बढ़े हुए भावोंकी प्ररूपणा की जाती है, स्थानाङ्गमें परिमित वाचनाएँ और संख्यात अनुयोगद्वार हैं, वेद-छन्दोविशेष संख्यात व श्लोकभी संख्यात हैं, निर्युक्ति संग्रहणी और प्रतिपत्तियां संख्येय संख्येय हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह स्थानाङ्ग तीसरा अङ्ग है, इसके एक श्रुतस्कन्ध और दश अध्ययन हैं, उद्देशन काल तथा समुद्देशन काल एक-वीस हैं, पदाग्रसे बहत्तर हजार पद हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त गम-अर्थ-ज्ञान हैं, अनन्त पर्यय हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं तथा धर्मास्ति-कायादिक शाश्वत व प्रयोग आदि कृत इसमें निबद्ध हैं, हेतु आदिसे व्यवस्थापित जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेषतापूर्वक कहे जाते हैं, इसके अध्ययनसे यह पाठक तद्रूप हो जाता है ऐसे शास्त्रोक्त अर्थोंका ज्ञाता तथा इसी प्रकार विज्ञाता बनता है, इस-प्रकार यहाँ चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है, यह हुआ स्थानाङ्ग तीसरा अङ्ग ॥ सू० ४७ ॥

मूल—से किं तं समवाए ? समवाए णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा समासिज्जंति, जीवाजीवा समासिज्जंति, ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमयपरसमए समासिज्जइ, लोए समासिज्जइ, अलोए समासिज्जइ, लोयालोए समासिज्जइ। समवाए णं एगाइयाणं एगुत्तरियाणं ठाणसयविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ, दुवालसविहस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ। समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडि-वत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे अज्झयणे, एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले, एगे चोयाले

सयसहस्से पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं समवाए ४ ॥ सू० ४८ ॥

छाया–अथ कः समवायः? समवायेन जीवाः समाश्रीयन्ते, अजीवाः समाश्रीयन्ते, जीवाऽजीवाः समाश्रीयन्ते, स्वसमयः समाश्रीयते, परसमयः समाश्रीयते, स्वसमयपरसमयौ समाश्रीयेते, लोकः समाश्रीयते, अलोकः समाश्रीयते, लोकालोकौ समाश्रीयेते। समवाये नु एकादिकानामेकोत्तरिकाणां स्थानशतविवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणाऽऽख्यायते, द्वादशविधस्य च गणिपिटकस्य पल्लवाग्रः समाश्रीयते। समवायस्य परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, स नु अङ्गार्थतया चतुर्थमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, एकमध्ययनम्, एक उद्देशनकालः, एकः समुद्देशनकालः, एकं चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतसहस्रं पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, स एवं समवायः ॥ सू० ४८ ॥

टीका–प्र०–देव! समवायाङ्गमें क्या विषय है? उ०–समवायाङ्गमें यथावस्थितरूपसे जीव आश्रयण किये जाते, अजीव आश्रयण किये जाते और जीव-अजीव दोनों विपरीत प्ररूपणासे खींचकर सम्यक् प्ररूपणामें प्रक्षिप्त किये जाते हैं, स्वसमय, परसमय, और एकसाथ स्वसमय-परसमय दोनों यथावस्थित रूपसे आश्रयण किये जाते हैं, लोक, अलोक और लोकालोक

उभय सम्यक् प्ररूपणासे कहे जाते हैं। समवाय-जीवादि पदार्थोंके निश्चय करनेवाले सूत्रसे एक आदि एकएककी आगे वृद्धिसे सैकडों स्थानपर्यन्त बढे हुए भावोंकी प्ररूपणा कही जाती है, और बारह प्रकारके गणिपिटक याने अङ्ग-सूत्रोंका संक्षिप्त परिचय आश्रयण किया जाता है, अर्थात् कहा जाता है। समवायाङ्गकी परिमित वाचनाएँ और संख्यात इसके अनुयोगद्वार हैं, वेढ छन्दो-विशेष-श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी, और प्रतिपत्तियां ये सभी संख्यात हैं। अङ्गकी दृष्टिसे यह समवाय चौथा अङ्ग है, इसका एक श्रुतस्कन्ध, एक उद्देशनकाल और एकही समुद्देशनकाल है, पदाग्रसे एकलाख चौआलीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्त अर्थज्ञान है, अनन्त पर्यायें है, परिमित त्रस अनन्त स्थावर और धर्मास्तिकायादिक शाश्वत तथा प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध है, हेतु आदिसे निर्णयप्राप्त जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते है, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष स्पष्ट किये जाते हैं, समवायका यह पाठक तदात्मरूप बन जाता है, तथा सूत्रके कथनानुसार पदार्थोंका ज्ञाता व ऐसेही विज्ञाता होता है, इस प्रकार समवायमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह समवायाङ्ग चौथा अङ्ग हुआ ॥ सू० ४८॥

मूल— से किं तं विवाहे ? विवाहे णं जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति, ससमए विआहिज्जति, परसमए विआहिज्जति, ससमयपरसमए विआहिज्जंति, लोए विआहिज्जति, अलोए विआहिज्जति, लोयालोए विआहिज्जंति। विवाहस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगद्वारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए, दस उद्देसगसहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं, दो लक्खा अट्ठासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं विवाहे ५॥ सू० ४९॥

छाया—अथ का सा व्याख्या ? (कः ■ विवाहः ?) व्याख्यायां जीवा व्याख्यायन्ते, अजीवा व्याख्यायन्ते, जीवाऽजीवा व्याख्यायन्ते, स्वसमयो व्याख्यायते, परसमयो व्याख्यायते, स्वसमयपरसमयौ व्याख्यायेते, लोको व्याख्यायते, अलोको व्याख्यायते, लोकालोकौ व्याख्यायेते। व्याख्यायाः परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, सा अङ्गार्थतया पञ्चममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, एकं सातिरेकमध्ययनशतं, दशोद्देशकसहस्राणि, दश समुद्देशकसहस्राणि, षट्त्रिंशद् व्याकरणसहस्राणि, द्वे लक्षे अष्टाशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रासाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, सैषा व्याख्या ५ ॥ सू० ४९ ॥

टीका— गुरुदेव ! व्याख्याप्रज्ञप्तिमें क्या वर्णन है ? उ०-व्याख्याप्रज्ञप्तिमें जीवोंके स्वरूपका व्याख्यान होता, है अजीवोंकी व्याख्या की जाती और जीव-अजीव दोनोंकी व्याख्या की जाती है, स्वसमयकी व्याख्या की जाती, परसमय परदर्शनकी व्याख्या की जाती, और दोनोंकी सम्बन्धपूर्वक व्याख्या की जाती है, लोकका विवेचन किया जाता, अलोकका वर्णन किया जाता और लोकालोक उभयका साथ विवेचन किया जाता है। व्याख्याप्रज्ञप्तिकी परिमित वाचनाएँ और संख्यात अनुयोगद्वार है, वेढ, श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी और प्रतिपत्तियाँ प्रत्येक संख्यात २ है, अङ्गकी अपेक्षा यह व्याख्यासूत्र पाँचवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और कुछ अधिक एकसौ इसके अध्ययन है, दशहजार उद्देशक और दशहजारही समुद्देशक है, छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर है, पदपरिमाणसे दो लाख अठासीहजार पद है, संख्येय अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान है, अनन्त पर्याय है, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं, धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत व प्रयोग आदि कृतसे यह निबद्ध है हेतु आदिसे निर्णीत जिनभणित भाव इसमें कहे जाते है, प्रज्ञापन प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेष स्पष्ट कहे जाते हैं, व्याख्याङ्गका वह पाठक अध्ययनकी तल्लीनतासे तद्रूप होजाता है, तथा सूत्रवचनानुसार पदार्थोंका ज्ञाता व इसीप्रकार विज्ञाता

बनता है, इसतरह व्याख्याङ्गमें चरण करणकी प्ररूपणा की जाती है, वह व्याख्याप्रज्ञप्ति पञ्चम अङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू. ४९ ॥

मूल—से किं तं नायाधम्मकहाओ ? नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआया, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति, दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयउवक्खाइयासयाइं, एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ हवंति त्ति समक्खायं। नायाधम्मकहाणं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणवीसं अज्झयणा, एगूणवीसं उद्देसणकाला, एगूणवीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं नायाधम्मकहाओ ६ ॥ सू. ५० ॥

छाया—अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथाः ? ज्ञाताधर्मकथासु नु ज्ञातानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानः, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिक–पारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः,

श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुकुलप्रत्यावृत्तयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्चाऽऽख्यायन्ते, दश धर्मकथानां वर्गाः, तत्र-एकैकस्यां धर्मकथायां पञ्च पञ्चाऽऽख्यायिकाशतानि, एकैकस्यामाख्यायिकायां पञ्च पञ्चोपाख्यायिकाशतानि, एकैकस्यामुपाख्यायिकायां पञ्च पञ्चाऽऽख्यायिकोपाख्यायिकाशतानि, एवमेव सपूर्वापरेण अध्युष्टाः कथानककोटयो भवन्तीति समाख्यातम् । ज्ञाताधर्मकथानां परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया षष्ठमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनविंशतिरध्ययनानि, एकोनविंशतिरुद्देशनकालाः, एकोनविंशतिः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता ज्ञाताधर्मकथाः ॥ सू. ५० ॥

टीका—गुरुदेव ! ज्ञाताधर्मकथा- उदाहरण और धर्मकथाप्रधान अङ्ग कौनसा है ? उ०-ज्ञाताधर्मकथामें ज्ञातों-उदाहरणभूतव्यक्तियों-के नगर, उद्यान, बगीचे, वनखण्ड, चैत्य-यक्षायतन, समवसरण, राजा, मातापिता व धर्माचार्य, व धर्मकथा, इसलोक परलोकसम्बन्धी ऋद्धिविशेष भोगका परित्याग, प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा, पर्याय-दीक्षासमय, श्रुतग्रहण, तपउपधान-तपस्याविशेषकी आराधना, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान-अन्तिम समयका अनशन या आहारत्यागकी समयगणना, पादपोपगमन-टूटे हुए वृक्षकी तरह चेष्टारहित अनशन (संथारा) करना, देवलोकगमन, सुकुलमें ( मनुष्यजन्मकी अपेक्षा ) प्रत्यागमन-पीछे आना, पुनः सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति और अन्तक्रिया ये सब कहे जाते है ।

---

१ उदाहरणभूतानाम्-इत्यर्थः ।

२ चैत्य-व्यन्तरायतनम् समवा० सू पृ १०८

प्रथम श्रुतस्कन्धके जो १९ अध्ययन हैं उनमें पहलेके दश केवल ज्ञात हैं, उनमें आख्यायिकाओंका सम्भव नहीं है, शेष नव अध्ययन और दूसरे श्रुतस्कन्धमें आख्यायिकाएँ आती हैं जो इसप्रकार हैं—

धर्मकथाओंके दश वर्ग हैं उनमें प्रत्येक धर्मकथामें पांच २ सौ आख्यायिकाएँ हैं, एक २ आख्यायिकामें पांच २ सौ उपाख्यायिकाएँ हैं, एक २ उपाख्यायिकामें पांच २ सौ आख्यायिकोपाख्यायिकाएँ हैं, इस प्रकार पहले पीछेकी मिलाकर अध्युष्–साढेतीन करोड कथाएँ होती हैं, ऐसा तीर्थङ्कर गणधरोंने कहा है। ज्ञाताधर्मकथाकी परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार तथा वेढ, श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी, और प्रतिपत्तियाँ भी संख्यात २ हैं। अङ्गकी अपेक्षा यह ज्ञाताधर्मकथा छट्ठा अङ्ग है दो श्रुतस्कन्ध और उन्नीस इसके अध्ययन हैं, उद्देशनकाल और समुद्देशनकाल भी १९-१९ हैं, पदपरिमाणसे संख्यात[१] हजार पद हैं, संख्यात अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान और अनन्त पर्यायें हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं, धर्मद्रव्य आदि शाश्वत और प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध व हेतुआदिसे निर्णीत जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष समझाये जाते हैं, तल्लीनतासे अध्ययन करनेवाला यह पाठक तद्रूप बन जाता है, तथा सूत्रोक्त पदार्थोंका ज्ञाता व इसी प्रकार विज्ञाता होता है, इस प्रकार ज्ञाताधर्मकथामें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है। यह ज्ञाताधर्मकथानामक छट्ठा अङ्ग हुआ ॥ सू. ५० ॥

मूल—से किं तं उवासगदसाओ? उवासगदसासु णं समणोवासयाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणया, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति, उवासगदसाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे

---

१ पाचलाख ८६ हजार पद हैं, अथवा सूत्रालापक रूप पद गिने जाँय तो संख्यात हजारही पद होते हैं, लक्ष नहीं।

सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसण-
काला, संखेज्जा(इं) पयसहस्सा(इं) पयग्गेणं, संखेज्जा
अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता
थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघ-
विज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति,
उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं
चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं उवासगदसाओ ७
॥ सू० ५१ ॥

छाया–अथ कास्ता उपासकदशाः? उपासकदशासु श्रमणोपासकानां नग-
राणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो
मातापितरो धर्माचार्या धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धि-
विशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः,
तपउपधानानि, शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासप्रति-
पादनता, प्रतिमाः, उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि,
पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुकुलप्रत्यायातयः, पुन-
र्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्चाख्यायन्ते, उपासकदशानां परीता
वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः),
संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः,
संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया सप्तममङ्गमेकः श्रुतस्कन्धः,
दशाऽध्ययनानि, दशोद्देशनकालाः, दश समुद्देशनकालाः, संख्ये-
यानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः,
अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनि-
बद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररू-
प्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, [redacted] एवमात्मा, एवं ज्ञाता,
एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता
उपासकदशाः ॥ सू० ५१ ॥

टीका—प्र०–भगवन्! वे उपासकके दशाऽध्ययन कौनसे हैं? उ०–इस
प्रकार हैं, उपासकदशामें श्रमणोपासकों–साधुओंके सेवक श्रावकों–के नगर,

उद्यान, व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इसलोक व परलोकसम्बन्धी ऋद्धिविशेष, भोगोंका परित्याग, प्रव्रज्या-श्रावकदीक्षा, पर्याय-श्रावकपनकी अवस्थाका कालमान, श्रुतग्रहण, तपउपधान, शीलव्रत, अणुव्रत, गुणव्रत, विरमण-पापसे निवृत्ति स्वरूप-सामायिक आदि, व्रत तथा प्रत्याख्यान, पोषध-उपवास इनको स्वीकार करना प्रतिमाओंका आराधन, उपसर्ग, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन-अन्तिम समयमें वृक्षकी तरह निश्चेष्ट रहकर अनशन साधना, देवलोकगमन, और मनुष्यभवमें फिर सुकुलकी प्राप्ति आदि, पुनः सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति, और अन्त-क्रिया-संसारके बन्धनसे मुक्त होना, ये सब विषय कहे जाते हैं, उपासकदशाकी परिमित वाचनाएँ और संख्येय अनुयोगद्वार हैं, वेढ, श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी, और प्रतिपत्तियाँभी संख्यात परिमाणवाली हैं। अङ्गकी अपेक्षा यह उपासकदशा सातवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और इसके दश अध्ययन हैं, दश उद्देशन काल और समुद्देशन काल भी दश हैं। पदपरिमाणसे संख्यात हजार पद हैं, संख्यात अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान व अनन्त ही पर्यायें है, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। धर्मद्रव्य आदि शाश्वत व प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध तथा हेतुपूर्वक व्यवस्थापित ऐसे जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेषरूपमें समझाये जाते हैं। सूत्रका स्थिरचित्तसे अध्ययन करनेवाला वह पाठक तद्रूप बन जाता है, तथा श्रावकके सूत्रोक्त कर्त्तव्योंका यथार्थ ज्ञाता व वैसे ही विज्ञाता हो जाता है। उपासकदशाङ्गमें इस प्रकार चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है। यह उपासकदशानामक सातवाँ अङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू० ५१ ॥

मूल—से किं तं अंतगडदसाओ ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अंतकिरियाओ आघविज्जंति, अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे,

१. देखें परिशिष्ट । २. श्रावकके लिये ११ प्रतिमायें-व्रत विशेष होती हैं, देखें परिशिष्ट-ग.

एगे सुयक्खंधे, अट्ठ वग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला, अट्ठ समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं अंतगडदसाओ ८ ॥ सू० ५२ ॥

छाया–अथ कास्ता अन्तकृद्दशाः ? अन्तकृद्दशासु–अन्तकृतां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, अन्तक्रिया आख्यायन्ते, अन्तकृद्दशासु परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतयाऽष्टममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, अष्टौ वर्गाः, अष्टाबुद्देशनकालाः, अष्टौ समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता अन्तकृद्दशाः ॥ सू० ५२ ॥

टीका–प्र०–गुरुजी ! अन्तकृतके वे दश अध्ययन कौनसे हैं ? उ०–अन्तकृत्के दश अध्ययनोंमें अन्तकृत्-कर्म या संसारका अन्त करनेवाले महापुरुषोंके नगर, उद्यान, चैत्य-व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्माचार्य व उनकी धर्मकथायें, इसलोक और परलोककी ऋद्धि-

विशेषता, भोगोंका परित्याग, प्रव्रज्या–मुनिदीक्षा, पर्याय–दीक्षापर्याय, श्रुतग्रहण, तपउपधान-तपोधारण, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन–आजीवनका अनशनव्रत, अन्तक्रिया-शैलेशी अवस्था आदि, ये सब भाव कहे जाते हैं। अन्तकृद्दशाओंमें परिमित वाचनायें और संख्यात अनुयोगद्वार हैं, वेढ, श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी, और प्रतिपत्तियाँ सब संख्यात १ हैं, अङ्गकी अपेक्षा वह अन्तकृद्दशा आठवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और इसके आठ वर्ग हैं, उद्देशनकाल व समुद्देशन काल भी आठ आठ हैं, पदपरिमाणसे संख्येय–हजारों पद हैं, संख्यात अक्षर, अनन्त अर्थज्ञान तथा अनन्तपर्यायें हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं, तथा धर्म, द्रव्य आदि शाश्वत और प्रयोग आदि कृतसे यह अन्तकृद्दशा निबद्ध है, हेतुप्रमाणपूर्वक निर्णय प्राप्त जिनप्रणीतभाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेष कहे जाते हैं, फल–यह अध्ययन करनेवाला तदेकतानचित्तसे अध्ययन करनेके कारण तदात्मरूप हो जाता है, सूत्रके कथनानुसार पदार्थोंका यथार्थ ज्ञाता तथा विज्ञाता बन जाता है। इस प्रकार अन्तकृद्दशाङ्गमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह आठवाँ अन्तकृद्दशाङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू० ५१ ॥

मूल—से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणसंडाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाइयत्ते उववत्ती, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति, अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिन्नि वग्गा, तिन्नि उद्देसणकाला, तिन्नि समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा

---

१. २३ लाख ४ हजार पद परिमाणभी कुछ आचार्योंने माना है, दूसरी व्याख्यामें हजारों ही पद होते हैं।

२. भत्तपाणपच्चक्खाणाइं।

अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ ॥ सू० ५३ ॥

छाया–अथ कास्ता अनुत्तरौपपातिकदशाः ? अनुत्तरौपपातिकदशासु अनुत्तरौपपातिकानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, प्रतिमाः, उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, अनुत्तरौपपातिकत्वे-उपपत्तिः, सुकुलप्रत्यागृत्तयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रिया आख्यायन्ते, अनुत्तरौपपातिकदशासु परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया नवममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, त्रयो वर्गाः, त्रय उद्देशनकालाः, त्रयः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, ॥ एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता अनुत्तरौपपातिकदशाः ॥ सू० ५३ ॥

टीका—प्र०-देव ! यह अनुत्तरौपपातिकदशा क्या है? उ०-अनुत्तरौपपातिकके दश अध्ययनोंमें अनुत्तरौपपातिक-अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके नगर, उद्यान, व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा,

१. अभिग्रहविशेषा इत्यर्थः ।

मातापिता, धर्माचार्य और धर्मकथा इसलोक व परलोकके ऋद्धिविशेष, भोगोंका परित्याग, प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा, पर्याय-उसका कालमान, श्रुतग्रहण, तपउपधान, प्रतिमा-अभिग्रहविशेष, उपसर्ग, संलेखना, भक्तपरित्याग, पादपोपगमन अनुत्तर-सर्वोत्तम विजयादि-विमानोंमें औपपातिक रूपसे उत्पन्न होना, मनुष्यभवमें फिर श्रेष्ठ कुलकी प्राप्ति आदि, तथा सम्यक्त्व धर्मका पुनर्लाभ और अन्तक्रिया ये सब विषय कहे जाते हैं, अनुत्तरौपपातिकदशामें परिमित वाचनाएँ और संख्येय अनुयोगद्वार हैं, वेढ, श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी और प्रतिपत्तियाँ भी संख्येय १ हैं। अङ्गकी अपेक्षा यह नवमा अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और इसके तीन वर्ग हैं, तीन उद्देशनकाल और तीन ही समुद्देशनकाल हैं पदपरिमाण-संख्यासे परिमित हजारों पद २ हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त अर्थज्ञान व अनन्त पर्यायें हैं, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं तथा शाश्वत और कृतसे यह निबद्ध है, हेतु आदिसे स्थिर किये हुए जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं तथा प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे उनका विशेष वर्णन किया जाता है, फल-वह पाठक एवम्भूत आत्मावाला बनता है, तथा सूत्रके कथनानुसार पदार्थोंका ज्ञाता और इसीतरह विज्ञाता भी होता है । इस प्रकार अनुत्तरौपपातिकदशामें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह अनुत्तरौपपातिकदशा नवमा अङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू. ५३ ॥

मूल—से किं तं पण्हावागरणाइं ? पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिणसयं, अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, तं जहा-अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं, अन्ने वि विचित्ता विज्जाइसया, नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति, पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं अज्झयणा, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयक-

१. साधुकी १२ प्रतिमाएँ भी हैं, देखें उपाध्यायजी म के दशाश्रुत. की सातवीं दशा—सं.
२. ४६ लाख ८ हजार पद हैं। दूसरी व्याख्याके अनुसार पूर्ववत् हजार ही पद होते हैं।

डनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं पण्हावागरणाइं १० ॥ सू० ५४ ॥

छाया–अथ कानि तानि प्रश्नव्याकरणानि ? प्रश्नव्याकरणेषु–अष्टोत्तरं प्रश्नशतम्, अष्टोत्तरमप्रश्नशतम्, अष्टोत्तरं प्रश्नाऽप्रश्नशतम्, तद्यथा-अङ्गुष्ठप्रश्नाः, बाहुप्रश्नाः, आदर्शप्रश्नाः, अन्येऽपि विचित्रा विद्यातिशया नागसुपर्णैः सार्धं दिव्याः संवादा आख्यायन्ते, प्रश्नव्याकरणानां परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तान्यङ्गार्थतया दशममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, पञ्चचत्वारिंशदध्ययनानि, पञ्चचत्वारिंशदुद्देशनकालाः, पञ्चचत्वारिंशत् समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृत–निबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यंते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, तान्येतानि प्रश्नव्याकरणानि ॥ सू. ५४ ॥

टीका—प्र०-देव ! वे प्रश्नोत्तरोंके दश अध्ययन कैसे हैं ? उ०-वे इस प्रकार हैं-प्रश्नव्याकरणोंमें १०८ प्रश्न हैं अर्थात् पूछे हुए प्रश्नोंके जपमात्रसे शुभाशुभ उत्तर कहनेवाली विद्या व मन्त्र १०८ हैं, १०८ अप्रश्न याने विना पूछे शुभाशुभ कहनेवाली विद्याएँ हैं, पृष्टापृष्ट-पूछे या विनापूछे शुभाशुभ कहनेवाली विद्याएँ भी १०८ हैं, जैसे कि-अङ्गुष्ठ प्रश्न-अङ्गुष्ठ विद्या, बाहुप्रश्न, आदर्शप्रश्न अन्य भी अनेक विचित्रविद्यातिशय तथा नागकुमार सुवर्णकुमार आदिके साथ दिव्यसंवाद इसमें कहे जाते हैं, प्रश्नव्याकरणकी परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, तथा वेढ-श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी और प्रतिपत्तियाँ ये सब संख्यात [1] हैं, अङ्गकी अपेक्षा वह दशमा अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और पैंतालीस इसके अध्ययन हैं, पैंतालीस उद्देशन-

[1] वाचनान्तरकी अपेक्षा ४५ अध्ययन सम्भव होते हैं सम० अभ० ।

काल और पैंतालीसही समुद्देशनकाल हैं। पदपरिमाणसे संख्येय-हजारों पद है, संख्येय अक्षर, अनन्त गम-अर्थज्ञान और अनन्तपर्यायें हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं तथा शाश्वत और कृत इसमें निबद्ध है, हेतु आदिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव यहाँ कहे जाते हैं। प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष कहे जाते हैं, फल-स्थिरचेता वह पाठक एवम्भूत आत्मावाला हो जाता है तथा शास्त्रोक्त विद्याओंका यथार्थ ज्ञाता व विज्ञाता बनता है, इसप्रकार प्रश्नव्याकरणमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह प्रश्नव्याकरण दशवाँ अङ्ग वर्णनसे पूर्ण हुआ ॥ सू० ५४ ॥

मूल—से किं तं विवागसुयं? विवागसुए णं सुकडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जइ, तत्थ णं दस दुहविवागा, दस सुहविवागा, से किं तं दुहविवागा? दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडाइं, चेइयाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, निरयगमणाइं, संसारभवपवंचा, दुहपरंपराओ, दुकुलपच्चायाइओ, दुलहबोहियत्तं आघविज्जइ, से त्तं दुहविवागा।

छाया—अथ किं तद् विपाकश्रुतम्? विपाकश्रुते सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलविपाक आख्यायते, तत्र दश दुःखविपाकाः, दश सुखविपाकाः, अथ के ते दुःखविपाकाः? दुःखविपाकेषु दुःखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि, वनखण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, निरयगमनानि, संसारभवप्रपञ्चाः, दुःखपरम्पराः, दुष्कुलप्रत्यावृत्तयः, दुर्लभबोधिकत्वमाख्यायते, त एते दुःखविपाकाः।

टीका—प्र०-गुरुदेव। यह विपाकश्रुत क्या है? उ०-विपाकश्रुतमें सुकृत दुष्कृत याने शुभअशुभ-कर्मोंके फल-विपाक कहे जाते हैं, उसमें दश दुःखविपाक और दश सुखविपाक है। प्र०-देव। वे दुःखविपाक क्या हैं? उ०-

१ ९२ लाख १६ हजार पद प्रथम व्याख्याके अनुसार होते हैं।

२ दुःखविपाकवतामित्यर्थः ।

दुःखविपाकोंमें दुःखरूप विपाकोंको भोगनेवाले उन पुरुषोंके नगर, उद्यान, वन-खण्ड, व्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्मगुरु और उनकी धर्मकथा, इसलोक व परलोकके ऋद्धिविशेष, दुरुपयोगसे निरयगमन, संसारमें जन्मका विस्तार, दुःखकी परम्परा, हीनकुलमें फिर उत्पत्ति, और सम्यक्त्व-धर्मकी दुर्लभता आदि विषय कहे जाते हैं, यह दुःखविपाकका वर्णन हुआ।

मूल—से किं तं सुहविवागा ? सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, वणसंडाइं, चेइयाइं, समोसरणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परियागा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुहपरंपराओ, सुकुलपच्चायाईओ, पुणबोहिलाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति। विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए इक्कारसमे अंगे, दो सुयक्खंधा, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला, संखिज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं विवागसुयं ११ ॥ सू. ५५ ॥

छाया—अथ के ते सुखविपाकाः ? सुखविपाकेषु नु सुखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि, वनखण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः,

१ 'पारलोइया' इति हरिभद्रीयवृत्तौ चूर्णिग्रन्थे। २ विपाकवतामित्यर्थः।

तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुखपरम्पराः, सुकुलप्रत्यावृत्तयः, पुनर्बोधिलाभाः, अन्तक्रिया आख्यायन्ते। विपाकश्रुतस्य परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया एकादशमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, विंशतिरध्ययनानि, विंशतिरुद्देशनकालाः, विंशतिः समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, त एते विपाकश्रुतम् ॥ सू० ५५ ॥

टीका—प्र०—गुरुदेव! वे सुखविपाकके प्रतिपादक अध्ययन कौनसे है?
उ०—सुखविपाकोंमें सुखविपाक-फल-को भोगनेवाले पुरुषोंके नगर, उद्यान, वनखण्ड, चैत्य-व्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्मगुरु, धर्मकथा, इसलोक व परलोकसम्बन्धी ऋद्धिविशेष, भोगोका परित्याग, प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा, दीक्षापर्याय, श्रुतसंग्रह, तपउपधान, संलेखना, आहारत्याग, पादपोपगमन-संथारा, देवलोकगमन, सुखकी परम्परा और फिर मनुष्य भवमें उत्तम कुलमें उत्पन्न होना आदि, फिर सम्यक्त्वलाभ तथा अन्तक्रिया कही जाती है। विपाकश्रुतकी परिमित वाचनायें हैं, संख्येय अनुयोगद्वार और वेढ-श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी व प्रतिपत्तियों भी संख्यात[1] है, अङ्गकी दृष्टिसे यह ११ वाँ अङ्ग है, दो श्रुतस्कन्ध और वीस इसके अध्ययन हैं, वीस उद्देशनकाल तथा वीसही समुद्देशनकाल भी हैं, पदपरिमाणसे संख्येय हजार पद है, संख्यात अक्षर, अनन्त अर्थज्ञान, और पर्यायें भी अनन्त हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर है तथा शाश्वत और कृतसे सम्बद्ध है, हेतु आदिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव इसमें कथन किये जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेष स्पष्ट कहे जाते हैं, फल दिखाते हैं—तदेकतानतासे पाठ करनेपर वह पाठक तद्रूप हो जाता है तथा सूत्रोक्त विषयोंका यथार्थ ज्ञाता व इसीतरह विज्ञाता बनता है, इस प्रकार विपाक-

---

१ एकक्रोडचौरासी लाख और ३२ हजार पद हैं स. वृ.।

श्रुतमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह ११ वाँ अङ्ग विपाकश्रुत पूर्ण हुआ ॥ सू० ५५ ॥

मूल—से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणा आघविज्जइ, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मे १, सुत्ताइं २, पुव्वगए ३, अणुओगे ४, चूलिया ५। से किं तं परिकम्मे? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—सिद्धसेणिया–परिकम्मे १, मणुस्ससेणिया–परिकम्मे २, पुट्ठसेणिया–परिकम्मे ३, ओगाढ-सेणिया परिकम्मे ४, उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ५, विप्प-जहणसेणियापरिकम्मे ६, चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ७।

छाया—अथ कः स दृष्टिवादः? दृष्टिवादे सर्वभावप्ररूपणाऽऽख्यायते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५। अथ किं तत् परिकर्म? परिकर्म सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म २, पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ३, अवगाढश्रेणिका परिकर्म ४, उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ५, विप्रजहच्छ्रेणिका-परिकर्म ६, च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ७।

टीका-प्र०—देव! यह दृष्टिवाद-सभी नयदृष्टियोंको कहनेवाला श्रुत किस प्रकार है? उ०-दृष्टिवादसे सब भावोंकी प्ररूपणा की जाती है, यह दृष्टिवाद संक्षेपसे पांच प्रकारका है जैसे-परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वगत ३ अनुयोग ४ और चूलिका ५। प्र०-वह परिकर्म क्या है? उ०-परिकर्म सात प्रकारका कहा गया है जैसे—सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म २ पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ३, अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ४, उपसम्पादनश्रेणिका परिकर्म ५, विप्रजहत्श्रेणिकापरिकर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ७।

मूल—से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे? सिद्धसेणियापरिकम्मे चउद्द-सविहे पण्णत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्ठियपयाइं २, अट्ठपयाइं ३, पाढोआगासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूयं १० पडिग्गहो ११,

---

१ ओगाहण। २ उवसंपज्जसे। ३ विप्पजह, समवायाङ्गे ब पृ ११९ प्र.।

संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, सिद्धावत्तं १४, से त्तं सिद्ध-सेणियापरिकम्मे ॥ १ ॥

छाया–अथ किं तत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ? सिद्धश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–मातृकापदानि १, एकार्थकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रहः ११, संसारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्तं १३, सिद्धावर्त्तं १४, तदेतत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

टीका-प्र०–यह सिद्धश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०–सिद्धश्रेणिकापरिकर्म चौदह प्रकारका कहा गया है, जैसे–मातृकापद १ एकार्थकपद २ अर्थपद ३ पृथगाकाशपद ४ केतुभूत ५ राशिबद्ध ६ एकगुण [illegible] द्विगुण ८ त्रिगुण ९ केतुभूत १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२ नन्द्यावर्त्त १३ सिद्धावर्त्त १४, इसप्रकार यह सिद्धश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ १ ॥

मूल—से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे? मणुस्ससेणियापरिकम्मे चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–माउगापयाइं १, एगट्ठियपयाइं २, अट्ठपयाइं ३, पाढोआगासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूयं १०, पडिग्गहो ११, संसारपडिग्गहो १२, नंदावत्तं १३, मणुस्सावत्तं १४, से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ॥ २ ॥

छाया–अथ किं तन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ? मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–मातृकापदानि १, एकार्थकपदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुभूतं ५, राशिबद्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुभूतं १०, प्रतिग्रहः ११, संसारप्रतिग्रहः १२, नन्दावर्त्तं १३, मनुष्यावर्त्तं १४, तदेतन्मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ॥ २ ॥

---

१ सिद्धबद्ध । २ पादोट्ठपयाणि । ३ आगासप० इति समवाये ।

४. मणुस्सबद्ध–समवाये ।

टीप--प्र०-देव ! यह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०-मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म १४ प्रकारका कहा गया है, जैसे-मातृकापद १ एकार्थकपद २ अर्थपद ३ पृथगाकाशपद ४ केतुभूत ५ राशिबद्ध ६ एकगुण ७ द्विगुण ८ त्रिगुण ९ केतुभूत १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२ नंदावर्त्त १३ और मनुष्यावर्त्त १४, यह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ १ ॥

मूल—से किं तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ? पुट्ठसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० पुट्ठावत्तं ११, से त्तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ॥ ३ ॥

छाया—अथ किं तत्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ? पृष्टश्रेणिकापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्तं १० पृष्टावर्तं ११, तदेतत्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ॥ ३ ॥

टीका—प्र०-गुरुदेव ! यह पृष्टश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०-पृष्टश्रेणिका परिकर्म एकादश प्रकारका है, जैसे-पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० पृष्टावर्त्त ११, यह पृष्टश्रेणिकापरिकर्म पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

मूल—से किं तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ? ओगाढसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० ओगाढावत्तं ११, से त्तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ॥ ४ ॥

---

१ हस्तलिखिते, आगमोदयसमितिमुद्रिते पूर्णिवृते रायधनपतिसिंहमुद्रिते च ' पाढो आगासपयाई ' इति पाठ', पूज्य ऋषिसम्पादिते तु ' पाढो आपयाई ' ' पाडो आगासपयाई ' ईदृश पाठद्वय दृश्यते, तथापि अर्थस्य विशेषसङ्गततया एवंविधाभ्यासेन मुनिप्रवरोपाध्यायानाममिमतत्वेन च ' पाढो आगासपयाई ' क्रममेव पाठो मूले मया न्यधायि—सम्पादक ।

छाया—अथ किं तदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ? अवगाढश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्द्यावर्त्तं १० अवगाढावर्त्तं ११, तदेतदवगाढश्रेणिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

टीका—प्र०-देव ! यह अवगाढश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०-अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है जैसे-पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंदावर्त्त १०, और अवगाढावर्त्त ११ यह अवगाढश्रेणिका परिकर्म हुआ ॥ ४ ॥

मूल—से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ? उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुण ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० उवसंपज्जणावत्तं ११, से तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ॥ ५ ॥

छाया—अथ किं तद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ? उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म-एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नंदावर्त्तम् १० उपसम्पादनावर्त्तं ११, तदेतद् उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

टीका—प्र०-गुरुदेव ! यह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०-उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है जैसे कि पृथगाकाश पद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंदावर्त्त १० उपसम्पादनावर्त्त ११, यह उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ५ ॥

मूल—से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ? विप्पजहणसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७

पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० विप्पजहणावत्तं ११, से त्तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

छाया–अथ किं तद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ? विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म–एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० विप्रजहदावर्त्तम् ११, तदेतद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

टीका–प्र०–भगवन्! विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म क्या है? उ०–विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे–पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नंदावर्त्त १० विप्रजहदावर्त्त ११, यह विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ६ ॥

मूल—से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० चुयाचुयवत्तं ११, से त्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरासियाइं, से त्तं परिकम्मे ।

छाया–अथ किं तच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ? च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म–एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशिबद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽच्युतावर्त्तं ११, तदेतच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥ षट्चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि, तदेतत्परिकर्म ।

टीका–प्र०–वह च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है? उ०–च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका है, जैसे–पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिबद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० च्युताऽच्युतावर्त्त ११, यह च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ७ ॥ [सिद्धश्रेणिका आदि ७ परिकर्मोंमें पहलेके छ परिकर्म स्वस-

नयकी वक्तव्यताके प्रकाशक हैं, गोशालकके मतानुसार च्युताच्युतश्रेणिका-परिकर्मसहित सात परिकर्म कहे जाते हैं ] अब इनमे नयका विचार करते हैं-छ परिकर्म चार नयवाले हैं, अर्थात् नैगम आदि सात नयोंमेंसे सामान्यग्राही नैगममे, संग्रह नयमे और विशेषग्राही व्यवहारनयमें अन्तर्हित होते हैं, ऐसे ही शब्द समभिरूढ और एवम्भूत इन तीनोंका भी पर्यायार्थिक रूप एक नयमे समावेश कर लेते हैं, तब संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, और पर्यायार्थिक [ शब्दादि तीन ] इस प्रकार चार नय हो जाते है। इनसे पहलेके छ परिकर्म स्वसमयकी वक्तव्यतासे विचारे जाते है, सात परिकर्म त्रैराशिक-गोशालकके मतका अनुगमन करनेवाले है, यह परिकर्म पूर्ण हो चुका।

[ गणितके परिकर्मकी तरह सूत्र, पूर्व व अनुयोग आदिके ग्रहणकी योग्यता करानेमे समर्थ इस विषयको श्रुतपरिकर्म कहते है। सिद्धश्रेणिका आदि ७ मूलभेद और ८३ इसके उत्तर भेद है। यह सब सूत्र व अर्थरूपसे विच्छिन्न हैं, अतएव इसका स्वरूप यथागत सम्प्रदायके अनुसार समझना चाहिये ]

मूल—से किं तं सुत्ताइं? सुत्ताइं बावीसं पन्नत्ताइं, तं जहा—उज्जुसुयं १ परिणयापरिणयं २ बहुभंगियं ३ विजयचरियं ४ अणंतरं ५ परंपरं ६ आसाणं ७ संजूहं ८ संभिण्णं ९ आहव्वायं १० सोवत्थियावत्तं ११ नंदावत्तं १२ बहुलं १३ पुट्ठापुट्ठं १४ वियावित्तं १५ एवंभूयं १६ दुयावत्तं १७ वत्तमाणपयं १८ समभिरूढं १९ सव्वओभद्दं २० पस्सासं २१ दुप्पडिग्गहं २२, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेयनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेयनइयाणि आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं तिगणइयाणि तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीइ सुत्ताइं भवंतित्ति म(अ)क्खायं, से त्तं सुत्ताइं।

छाया—अथ कानि तानि सूत्राणि? सूत्राणि द्वाविंशतिः प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋजुसूत्रम् १ परिणताऽपरिणतं २ बहुभङ्गिकं ३ विजयचरितम् ४ अनन्तरं ५ परम्परम् ६ आसानम् ७ संयूथं ८

1—आजीविक—गोशालक मतानुयायी त्रैराशिक कहे जाते हैं, सभी जगतको ये जीव, अजीव, जीवाजीवकी तरह त्र्यात्मक कहते हैं, वास्ते त्रैराशिक हैं।

सम्भिन्नं ९ यथावादं १० स्वस्तिकावर्त्तम् ११ नन्दावर्त्तं १२ बहुलं १३ पृष्टापृष्टं १४ व्यावर्त्तम् १५ एवम्भूतं १६ द्विकावर्त्तं १७ वर्त्तमानपदं १८ समभिरूढं १९ सर्वतोभद्रं २० प्रशिष्यं २१ दुष्प्रतिग्रहम् २२, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि–आजीविकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या, एवमेव सपूर्वापरेणाऽष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्तीत्याख्यातम्, तान्येतानि सूत्राणि।

टीका–प्र०–भगवन्! वह सूत्ररूप दृष्टिवाद क्या है? उ०–सूत्र बाईस प्रकारके कहे गये हैं। जैसे–१ ऋजुसूत्र, २ परिणतापरिणत, ३ बहुभङ्गिक, ४ विजयचरित, ५ अनन्तर, ६ परम्पर, ७ आसान, ८ संयूथ, ९ सम्भिन्न, १० यथावाद, ११ स्वस्तिकावर्त्त, १२ नन्दावर्त्त, १३ बहुल, १४ पृष्टापृष्ट, १५ व्यावर्त्त, १६ एवम्भूत, १७ द्विकावर्त्त, १८ वर्त्तमानपद, १९ समभिरूढ, २० सर्वतोभद्र, २१ प्रशिष्य, और २२ दुष्प्रतिग्रह, इसप्रकार ये बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे याने स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर छिन्नच्छेदनयवाले हैं, वे ही बाईस सूत्र आजीविक-गोशालकके मतकी सूत्रपरिपाटीसे अच्छिन्नच्छेदनयवाले होते हैं, इसप्रकार ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्र परिपाटीसे विवक्षित होनेपर तीन नयवाले होते हैं, तथा येही बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर चतुष्क नयवाले हैं, इसतरह पूर्वापर याने पहले पीछेके सब मिलाकर अट्ठासी सूत्र होते हैं, ऐसा तीर्थङ्करों व गणधरोंने कहा है, यह हुआ सूत्ररूप दृष्टिवादका भेद।

मूल—से किं तं पुव्वगए ? पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–उप्पायपुव्वं १ अग्गाणीयं २ वीरियं ३ अत्थिनत्थिप्पवायं ४ नाणप्पवायं ५ सच्चप्पवायं ६ आयप्पवायं ७ कम्मप्पवायं ८ पच्चक्खाणप्पवायं ९ विज्जाणुप्पवायं १० अवंझं ११ पाणाऊ १२ किरियाविसाल १३ लोकबिंदुसारं १४। उप्पायपुव्वस्स णं

१ सभी पूर्व के सूत्रार्थोंकी ये सूचना करनेवाले हैं, तथा सर्व द्रव्य, सर्व पर्याय और सभी नय तथा सर्व भङ्ग-विकल्पोंके प्रदर्शक हैं अत सूत्र कहे जाते हैं, सूत्र या अर्थ रूपसे ये सभी व्यवच्छिन्न हैं।

दसवत्थू चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता, अग्गाणीयपुव्वस्स णं चोद्दसवत्थू दुवालस चूलियावत्थू पण्णत्ता, वीरियपुव्वस्स णं अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलियावत्थू पण्णत्ता, अत्थिनत्थिप्पवायपुव्वस्स णं अट्ठारसवत्थू दस चूलियाव त्थू पण्णत्ता, नाणप्पवायपुव्वस्स णं बारस वत्थू पण्णत्ता, सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दोण्णि वत्थू पण्णत्ता, आयप्पवायपुव्वस्स णं सोलस वत्थू पण्णत्ता, कम्मप्पवायपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता, पच्चक्खाणपुव्वस्स णं वीसं वत्थू पण्णत्ता, विज्जाणुप्पवायपुव्वस्स णं पन्नरसवत्थू पण्णत्ता, अवंझपुव्वस्स णं बारसवत्थू पण्णत्ता, पाणाऊपुव्वस्स णं तेरस-वत्थू पण्णत्ता, किरियाविसालपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता, लोकबिंदुसारपुव्वस्स णं पणवीसं वत्थू पण्णत्ता—

गाहा—८९

दस १ चोद्दस २ अट्ठ ३ अट्ठारसेव ४ बारस ५ दुवे ६ य वत्थूणि ।
सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९, पन्नरस १० अणुप्पवायंमि ॥ १ ॥

९०—बारस इक्कारसमे, बारसमे तेरसेव वत्थूणि ।
तीसा पुण तेरसमे, चोद्दसमे पण्णवीसाओ ॥ २ ॥

९१—चत्तारि १ दुवालस २, अट्ठ ३ चेव दस ४ चेव चुल्लवत्थूणि ।
आइल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलिया नत्थि ॥ ३ ॥
से त्तं पुव्वगए ।

छाया—अथ किं तत् पूर्वगतम् ? पूर्वगतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—उत्पादपूर्वम् १ अग्रायणीयं २ वीर्यम् (प्रवादम्) ३ अस्तिनास्ति-प्रवादं ४ ज्ञानप्रवादं ५ सत्यप्रवादम् ६ आत्मप्रवादं ७ कर्म-प्रवादं ८ प्रत्याख्यानप्रवादं ९ विद्यानुप्रवादम् १० अवन्ध्यं ११ प्राणायुः १२ क्रियाविशाल १३ लोकबिन्दुसारम् १४ । उत्पाद-पूर्वस्य दश वस्तवः, चत्वारश्चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः[1] १, अग्रा-यणीयपूर्वस्य चतुर्दश वस्तवो द्वादशचूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः २,

---

१. वस्तु शब्दस्य पुंस्त्वमार्षत्वात्, लिङ्गस्य लोकाश्रितत्वाच्च ।

वीर्यपूर्वस्याऽष्टौ वस्तवः, अष्टौ चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ३, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य–अष्टादश वस्तवो दश चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ४, ज्ञानप्रवादपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ५, सत्यप्रवादपूर्वस्य द्वौ वस्तू प्रज्ञप्तौ ६, आत्मप्रवादपूर्वस्य षोडश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ७, कर्मप्रवादपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः ८, प्रत्याख्यानपूर्वस्य विंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः ९, विद्यानुप्रवादपूर्वस्य पञ्चदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १०, अबन्ध्यपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ११, प्राणायुःपूर्वस्य त्रयोदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १२, क्रियाविशालपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः १३, लोकबिन्दुसारपूर्वस्य पञ्चविंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः १४ ।

गाथा—८९

दश १ चतुर्दश २ अष्टाऽष्टादशैव ३–४ द्वादश ५ द्वौ ६ च वस्तवः ।
षोडश ७ त्रिंशद् ८ विंशतिः ९ पञ्चदश १० अनुप्रवादे ॥ १ ॥

९०—द्वादशैकादशे, द्वादशे त्रयोदशा एव वस्तवः ।
त्रिंशत्पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥

९१—चत्वारि १ द्वादश २ अष्टौ ३ चैव दश ४ चैव चूलवस्तूनि ।
आदिमानां चतुर्णां, शेषाणां चूलिका नास्ति ॥ ३ ॥

तदेत्पूर्वगतम् ।

टीका-प्र०-देव! यह पूर्वगत दृष्टिवाद कौनसा है? पूर्वगत दृष्टिवाद १४ प्रकारका कहा गया है-

जैसे कि-१ उत्पादपूर्व [ इसमें सब द्रव्य और पर्यायोंके उत्पाद-उत्पत्ति-की प्ररूपणा की गई है-इसके कोटि पदपरिमाण हैं ] २ अग्रायणीयपूर्व [ सभी द्रव्य, पर्याय और जीवविशेषके अग्र-परिमाणका इसमें वर्णन किया गया है, इसके ९६ लाख पद हैं ] ३ वीर्यप्रवादपूर्व [ सकर्म या निष्कर्म जीव तथा अजीवके वीर्य-शक्तिविशेषका इसमें वर्णन है तथा ७० लाख इसके पद हैं ] ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व [ यह वस्तुओंके अस्तित्व नास्तित्वका वर्णन करने-वाला है, धर्मास्ति आदि द्रव्यका अस्तित्व और खपुष्प वगैरहका नास्तित्व तथा प्रत्येक द्रव्यमें स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व प्रतिपादन किया गया है, इसके ६० लाख पद हैं ] ५ ज्ञानप्रवादपूर्व [ मति आदि पांच

१ तीर्थप्रवृत्तिके समयमें तीर्थङ्कर गणधरोंको सकल श्रुतार्थमें अवगाहन करनेलायक समझकर पहले पूर्वगत सूत्र कहते हैं, इसलिये ये पूर्व कहलाते हैं, वे पूर्व चौदह हैं ।

ज्ञानोंका इसमें सविस्तर वर्णन किया गया है, पदपरिमाण इसके एककम एक कोटिका है ] ६ सत्यप्रवादपूर्व [ यह सत्यवचन या संयमका विस्तारसे और प्रतिपक्षके साथ वर्णन करनेवाला है, इसके एक कोटि और छ पद हैं ] ७ आत्मप्रवादपूर्व [ अनेक प्रकारके नयमतसे यह पूर्व आत्माका वर्णन करनेवाला है, इसमें २६ कोटि पद हैं ] ८ कर्मप्रवादपूर्व [ आठ प्रकारके कर्मोंका प्रकृति स्थिति आदि बन्धके भेद व प्रभेदसे विस्तारपूर्वक इसमें वर्णन किया गया है, इसके एक कोटि अस्सी हजार पद हैं ] ९ प्रत्याख्यान-प्रवादपूर्व यह प्रत्याख्यानका भेदप्रभेदके साथ विस्तारपूर्वक वर्णन करता है, इसके ८४ लाख पद हैं ] १० विद्यानुप्रवादपूर्व [ इसमें अनेक प्रकारकी अतिशयसम्पन्न विद्याएँ और साधनकी अनुकूलतासे उनकी सिद्धि कही गई है, इसके एक कोटि १० लाख पद हैं ] ११ अवन्ध्यपूर्व [ यहाँ ज्ञान तप आदि सभी सत्कर्म शुभफलवाले और प्रमाद आदि कार्य अशुभफलवाले कहे गये हैं, इसलिये यह अवन्ध्य है, इसके २६ कोटि पद हैं ] १२ प्राणायुःपूर्व [ आयु और अन्य प्राणोंका वर्णन करनेसे सप्रभेद यह पूर्वभी उपचारसे प्राणायुःपूर्व कहाता है, एक कोटि ५६ लाख इसके पद होते हैं ] १३ क्रियाविशालपूर्व [यह कायिकी आदि क्रियाओंके वर्णनसे विशाल है, इसका पदपरिमाण नव कोटिका है ] १४ लोकबिन्दुसारपूर्व [ सर्वाक्षर सन्निपात आदि लब्धियों-विशेषशक्तियोंके कारण संसारमें या श्रुतलोकमें यह अक्षरके बिन्दुकी तरह सर्वोत्तम सार है अतः लोग इसको बिन्दुसार कहते हैं, १२॥ कोटि इसके पद हैं ] उत्पादपूर्वके दशवस्तु और चार चूलिकावस्तु-प्रकरण कहे गये हैं, अग्रायणीयपूर्वके चौदह वस्तु तथा बारह चूलिकावस्तु-ग्रन्थविशेष कहे गये हैं, ३ वीर्यपूर्वके आठ वस्तु और आठ चूलिकावस्तु कहे गये हैं, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वके अठारह वस्तु व दश चूलिकावस्तु कहे गये हैं, ५ ज्ञानप्रवादपूर्वके बारह वस्तु कहे गए हैं, ६ सत्यप्रवादपूर्वके दो वस्तु हैं, ७ आत्मप्रवादपूर्वके सोलह वस्तु हैं, ८ कर्मप्रवादपूर्वके तीस वस्तु हैं, ९ प्रत्याख्यानप्रवादपूर्वके बीस वस्तु हैं, १० विद्यानुप्रवादपूर्वके पन्द्रह वस्तु-ग्रन्थविशेष कहे गये हैं, ११ अवन्ध्यपूर्वके बारह वस्तु कहे गये हैं, १२ प्राणायुःपूर्वके तेरह वस्तु हैं, १३ क्रियाविशालपूर्वके तीस वस्तु कहे गये हैं, १४ लोकबिन्दुसारपूर्वके पचीस वस्तु कहे गये हैं। प्रत्येक वस्तु व चुल्लवस्तुका गाथासे वर्णन दिखाते हैं—प्रथममें दश वस्तु, द्वितीयमें चौदह, तीसरेमें आठ, और चौथेमें अठारह, पाँचवेमें बारह और छट्ठेमें दो वस्तु हैं, सातवेमें सोलह, आठवेमें तीस, नवमेमें बीस तथा दसवें अनुप्रवाद-विद्यानुप्रवादमें पन्द्रह हैं, एगारहवेमें बारह वस्तु, बारहवेमें तेरह वस्तु हैं, फिर तेरहवें पूर्वमें तीस और चौदहवें पूर्वमें पचीस वस्तु हैं। ॥ ८९-९० ॥ आदिके चार पूर्वोको क्रमसे चार, बारह, आठ, और दश चुल्ल-(क्षुल्लक)वस्तुएं हैं, शेष पूर्वोके चूलिया-क्षुल्लक वस्तु नहीं हैं ॥ ९१ ॥ यह पूर्वगतका वर्णन हुआ।

---

१ उत्पादपूर्वाद्यनुक्रमेण ग्रन्थविशेषरूपा-ण्युच्यन्ते। टी.

मूल—से किं तं अणुओगे? अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—मूलपढमाणुओगे, गंडियाणुओगे य। से किं तं मूलपढमाणुओगे? मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगगमणाइं, आउं, चवणाइं, जम्मणाणि, अभिसेया, रायवरसिरीओ, पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा, केवलनाणुप्पयाओ, तित्थपवत्तणाणि य, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा, पवत्तिणीओ, संघस्स चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिणमणपज्जवओहिनाणी, सम्मत्तसुयनाणिणो य, वाई, अणुत्तरगई य, उत्तरवेउव्विणो य मुणिणो, जत्तिया सिद्धा, सिद्धिपहो जह देसिओ, जच्चिरं च कालं, पाओवगया जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं (अणसणाए) छेइत्ता अंतगडे, मुणिवरुत्तमे तिमिरओघविप्पमुक्के, मुक्खसुहमणुत्तरं च पत्ते, एवमन्ने य एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे कहिया, से त्तं मूलपढमाणुओगे।

छाया—अथ कः सोऽनुयोगः? अनुयोगो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मूलप्रथमानुयोगः, गण्डिकानुयोगश्च, अथ कः स मूलप्रथमानुयोगः? मूलप्रथमानुयोगेऽर्हतां भगवतां पूर्वभवाः, देवलोकगमनानि, आयुः (यूंषि), च्यवनानि, जन्मानि, अभिषेकाः, राज्यवरश्रियः, प्रव्रज्याः, तपांसि चोग्राणि, केवलज्ञानोत्पादः, तीर्थप्रवर्तनानि च, शिष्याः, गणाः, गणधराः, आर्याः, प्रवर्त्तिन्यः, सङ्घस्य चतुर्विधस्य यच्च परिमाणम्, जिनमनःपर्यवावधिज्ञानिनः, समस्तश्रुतज्ञानिनश्च, वादिनः, अनुत्तरगतयश्च, उत्तरवैकुर्विणश्च मुनयः, यावन्तः सिद्धाः, सिद्धिपथो यथादेशितो यावच्चिरञ्च कालं पादपोपगताः, ये यत्र यावन्ति भक्तानि छित्त्वाऽन्तकृतो मुनिवरोत्तमास्तिमिरौघविप्रमुक्ता मोक्षसुखमनुत्तरञ्च प्राप्ताः, एवमन्ये चैवमादिभावा मूलप्रथमाऽनुयोगे कथिताः, स एष मूलप्रथमानुयोगः।

---

१ 'भगवंता' इत्यादि [illegible] पाठः । २ ए [illegible] [illegible] ।

टीका-प्र०-भगवन्! वह अनुयोग किस प्रकार है? उ०-अनुयोग दो प्रकारका कहा है, जैसे-१ मूलप्रथमानुयोग, और २ गण्डिकानुयोग। प्र०-वह मूल-प्रथमानुयोग क्या है? उ०-मूलप्रथमानुयोगमें अरिहन्त भगवन्तके सम्यक्त्व प्राप्तिके भवसे लेकर पूर्वभव, देवलोकमें गमन, वहांकी आयुमर्यादा। देवभव या उनसे पूर्वभवोंमे च्यवन, तीर्थंकररूपसे जन्म, अभिषेक-देवआदिकृत जन्माभिषेक तथा राज्याभिषेक प्रधान राज्यलक्ष्मी, प्रव्रज्या-साधुदीक्षा, और उग्र-घोर तप, केवलज्ञानकी उत्पत्ति, और तीर्थकी प्रवृत्ति करना, उनके शिष्य, गण-गच्छ, गणधर, आर्याएँ व प्रवर्तिनियाँ, और चतुर्विध संघका जो परिमाण है, जिन-केवली, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, और सम्यक् (समस्त) श्रुतज्ञानी, वादी-वादलब्धिसम्पन्न मुनि, और अनुत्तरगतिवाले, फिर उत्तर-वैक्रिय करनेवाले मुनि, जितने सिद्ध हुए, तथा जिसप्रकार सिद्धिमार्गका उपदेश किया और जितने लम्बे समयतक सिद्धिमार्ग लगातार चला, जो जहाँ पादपोपगमन संथारा धारण किये व जितने भक्त अनशनसे छेदकर याने बिना आहारके बिताकर संसारका अन्त किये, अर्थात् अन्तकृत हुए, और अज्ञानरूप तिमिर-अन्धकारके प्रवाहसे विप्रमुक्त मुनिश्रेष्ठ जिसप्रकार सर्वोत्तम मोक्ष-सुखको प्राप्त किये, ये सब और इस प्रकारके अन्य भी जो ऐसे भाव हैं वे सब मूल प्रथमानुयोगमें कहे गये हैं, यह मूल प्रथमानुयोग हुआ।

मूल—से किं तं गंडियाणुओगे? गंडियाणुओगे कुलगरगंडियाओ, तित्थयरगंडियाओ, चक्कवट्टिगंडियाओ, दसारगंडियाओ, बलदेवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ, गणधरगंडियाओ, भद्दबाहुगंडियाओ, तवोकम्मगंडियाओ, हरिवंसगंडियाओ, उस्सप्पिणीगंडियाओ, ओसप्पिणीगंडियाओ, चित्तंतरगंडियाओ, अमरनरतिरियनिरयगइगमणविविहपरियट्टणाणुओगेसु एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, से त्तं गंडियाणुओगे, से त्तं अणुओगे ॥ ४ ॥

छाया—अथ कः स गण्डिकानुयोगः? गण्डिकानुयोगे कुलकरगण्डिकाः, तीर्थकरगण्डिकाः, चक्रवर्तिगण्डिकाः, दशारगण्डिकाः, बलदेवगण्डिकाः, वासुदेवगण्डिकाः, गणधरगण्डिकाः, भद्रबाहुगण्डिकाः, तपःकर्मगण्डिकाः, हरिवंशगण्डिकाः, उत्सर्पिणीगण्डिकाः, अवसर्पिणीगण्डिकाः, चित्रान्तरगण्डिकाः, अमरनरतिर्यङ्निरयगतिगमनविविधपरिवर्तनानुयोगेषु-एवमादि-

का गण्डिका आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, स एष गण्डिकानुयोगः, [illegible] एषोऽनुयोगः ।

टीका-प्र०-देव ! वह गण्डिकानुयोग क्या है ? उ०-गण्डिकाके व्याख्यानमें कुलकरगण्डिका-जिनमें विमलवाहन आदि कुलकरोंके पूर्वभव व नाम आदिका विस्तृत वर्णन है, तीर्थङ्करगण्डिका, चक्रवर्तिगण्डिका, दशारगण्डिका, बलदेवगण्डिका, वासुदेवगण्डिका, गणधरगण्डिका, भद्रबाहुगण्डिका, तपःकर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका, उत्सर्पिणीगण्डिका, अवसर्पिणीगण्डिका, चित्रान्तरगण्डिका अर्थात् प्रथम व द्वितीय तीर्थङ्करके अन्तरकालके चित्र-अनेक अर्थको कहनेवाली गण्डिका, मनुष्य तिर्यग् और निरयगतिमें गमनरूप अनेक परिवर्त्तों-भवभ्रमणोंमें जीवोंका गमन, इत्यादि बहुतसी गण्डिकाएँ कही जाती हैं, विशेष रूपसे दिखाई जाती हैं, यह हुआ गण्डिकानुयोग, इस प्रकार दोनों प्रकारका यह अनुयोग पूर्ण हुआ ।

मूल—से किं तं चूलियाओ ? चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलिया, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं, से त्तं चूलियाओ ।

छाया—अथ कास्ताः-चूलिकाः ? चूलिका आदिमानां चतुर्णां पूर्वाणां चूलिकाः, शेषाणि पूर्वाण्यचूलिकानि, ता एताश्चूलिकाः ।

टीका-प्र०-देव दृष्टिवादका शिखररूप यह चूला(ड़ा) किस प्रकार है ? उ०-चूलिका इसप्रकार है (परिकर्म आदि दृष्टिवादके चारों अङ्गोंमें कहे हुए तथा कुछ अनुक्त विषय चूलामें कहे गए हैं)-आदिके चार पूर्वोंकी चूलाएँ हैं, शेष पूर्व विना चूलिकाके हैं, यह हुआ चूलारूप दृष्टिवाद ।

अब बारहवें दृष्टिवाद अङ्गका उपसंहार करते हैं—

मूल—दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, चोद्दस पुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता

१ ऋषभदेव स्वामीके वंशज सभी राजा मोक्ष या सर्वार्थसिद्ध विमानमें [illegible] गये हैं, ऐसा [illegible] गण्डिकामें वर्णन किया गया है ।

पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जति, से त्तं दिट्ठिवाए १२ ॥ सू० ५६ ॥

छाया—दृष्टिवाद(पात)स्य परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः ( वृत्तयः ), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, सोऽङ्गार्थतया द्वादशमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, चतुर्दश पूर्वाणि, संख्येयानि वस्तूनि, संख्येयानि चूलावस्तूनि, संख्येयानि प्राभृतानि, संख्येयानि प्राभृतप्राभृतानि, संख्येयाः प्राभृतिकाः, संख्येयाः प्राभृतप्राभृतिकाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एव चरण-करणप्ररूपणाऽऽख्यायते, स एष दृष्टिवादः १२ ॥ सू० ५६ ॥

टीका—बारहवें दृष्टिवाद अङ्गकी परिमित वाचनायें हैं, संख्येय अनुयोग द्वार, संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात प्रतिपत्ति, और निर्युक्ति व संग्रहणी भी संख्यात २ हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह बारहवाँ अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और चौदह पूर्व हैं, संख्येय वस्तु तथा संख्येय क्षुद्र( क्षुल्ल)—छोटी वस्तु है, संख्यात प्राभृत और प्राभृतप्राभृत भी संख्येय हैं, प्राभृतिका [illegible] प्राभृतप्राभृतिका ये दोनों संख्यात २ हैं, पदपरिमाणसे संख्येय पदसहस्र है, अक्षर संख्यात हैं, परिमित त्रस व अनन्त स्थावर हैं, धर्मद्रव्य आदि शाश्वत तथा प्रयोग आदि कृतसे निबद्ध हैं, हेतु आदिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, तथा उपदर्शनसे विशेष समझाए जाते हैं। फल—दृष्टिवादका यह पाठक तद्रूप हो जाता है, सूत्रोक्त भावोंका यथार्थ ज्ञाता व ऐसेही विज्ञाता बनता है, इसप्रकार चरणकरणकी इसमें प्ररूपणा की जाती है, यह दृष्टिवाद बारहवाँ अङ्ग पूर्ण हुआ ॥ सू. ५६ ॥

मूल—इच्चेइयंमि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा पण्णत्ता—

( संग्रहणी गाथा )

९२—भावमभावाहेऊ,-महेऊकारणमकारणे चेव ।
जीवाजीवाभवियम,-भविया सिद्धा असिद्धा य ॥ १ ॥

छाया—इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटकेऽनन्ता भावाः, अनन्ता अभावाः, अनन्ता हेतवः, अनन्ता अहेतवः, अनन्तानि कारणानि, अनन्तान्यकारणानि, अनन्ता जीवाः, अनन्ता अजीवाः, अनन्ता भवसिद्धिकाः, अनन्ता अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः सिद्धाः, अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञप्ताः—

९२—भावाऽभावौ हेत्वहेतू कारणाऽकारणे चैव ।
जीवा अजीवा भविका अभाविकाः सिद्धा असिद्धाश्च ॥ १ ॥

टीका—इस प्रकार इस द्वादशाङ्गी गणिपिटकमें अनन्त जीवादि भाव और अनन्त हेतु और अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त ही अजीव, अनन्त भवसिद्धिक तथा अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्तसिद्ध व अनन्त असिद्ध-संसारी जीव कहे गये हैं। इसी बातको संग्रहणी गाथासे कहते हैं-भाव १ अभाव २, हेतु ३ व असद्धेतु ४, कारण ५ और अकारण ६, जीव ७, अजीव ८, भव्य ९, अभव्य १०, सिद्ध ११ और असिद्ध १२, ये सब अनन्त हैं।

मूल—इच्चेइयं दुवालसंगं गणि पिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु, इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टंति, इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति ।

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्याटिषुः, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्नकाले परीताः—परिमिता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्यटन्ति, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमनागते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्यटिष्यन्ति ।

टीका—अब द्वादशाङ्गीकी विराधनाका त्रैकालिक फल कहते हैं—गतकालमें अनन्त जीवोंने पूर्वोक्त इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे विराधना कर चारों ओर चतुर्गतिरूप अन्तवाले संसारकान्तारमें भ्रमण किया, इसी प्रकार द्वादशाङ्गी इस गणिपिटकका आज्ञारूपसे खण्डन करके (परिमित) संख्यात जीव चार गतिरूप संसारकान्तारमें वर्तमानकालमें चक्कर लगाते हैं, भविष्यकालमें भी इस पूर्वोक्त द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञाको भङ्ग कर अनन्त जीव चार गतिरूप संसारकान्तारमें भ्रमण करेंगे।

मूल—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइंसु । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयंति । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्संति ।

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यत्यव्राजिषुः, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्नकाले परीता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजन्ति, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमनन्ता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजिष्यन्ति ।

टीका—अब द्वादशाङ्गीकी आराधनाका फल कहते हैं—गतकालमें इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे आराधना-पालन कर अनन्त जीव चारगतिरूप संसारकान्तारको तिर गए, वर्त्तमानकालमें परिमित-संख्येय जीव इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे आराधना कर चार गतिवाले संसारकान्तारको

पार कर जाते हैं। ऐसेही भविष्यकालमें इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञानुसार आराधना करके अनन्त जीव चतुरन्त संसारकान्तारको पार कर जायेंगे।

अब अर्थरूपसे इस द्वादशाङ्गीकी नित्यता दिखाते हैं—

मूल—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे । से जहानामए पंच अत्थिकाया न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे, एवामेव दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, निच्चे। से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ, दव्वओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, खित्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ, कालओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं (इवे) भावं (वे) जाणइ पासइ ॥ सू. ५७ ॥

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीत्, न कदाचित् भवति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवं नियतं शाश्वतमक्षयमव्ययमवस्थितं नित्यम्, तद् यथा-नामकः पञ्चास्तिकायो न कदाचिन्नासीत्, न कदाचिन्नास्ति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवो नियतः शाश्वतोऽक्षयोऽव्ययोऽवस्थितो नित्यः, एवमेव द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीत्, न कदाचिन्नास्ति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवं नियतं शाश्वत-मक्षयमव्ययमवस्थितं नित्यम्, तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः, तत्र द्रव्यतः श्रुत-

ज्ञानी–उपयुक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रतः श्रुतज्ञानी–उपयुक्तः सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालतः श्रुतज्ञानी–उपयुक्तः सर्वं कालं जानाति पश्यति, भावतः श्रुतज्ञानी–उपयुक्तः सर्वान् भावान्–जानाति पश्यति ॥ सू० ५७ ॥

टीका-अब द्वादशाङ्गीकी नित्यता दिखाते हैं—पूर्वोक्त यह द्वादशाङ्गी गणिपिटक कभी नहीं था ऐसा नहीं, कभी नहीं है वैसा भी कोई समय नहीं, तथा कभी नहीं होगा यह भी नहीं, गतकालमें था, वर्त्तमानमें है, और भविष्यमें भी रहेगा, यह द्वादशाङ्गी ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय–व्ययरहित, अवस्थित तत्त्वरूपसे एकसा अतएव नित्य है, इसी बातको उदाहरणसे समझाते हैं, जैसे–पंचनामक [ संभाव्य नामवाले ] पांच अस्तिकाय कभी नहीं थे, कभी नहीं हैं या कभी नहीं होंगे ऐसा कोई समय नहीं मिलता, किन्तु गतकालमें थे, वर्त्तमानमें हैं और भविष्यमें होंगे, ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित तथा नित्य-सदाकाल रहनेवाले हैं, इसी प्रकार द्वादशाङ्गी गणिपिटक कभी नहीं था यह नहीं, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा यह भी नहीं, किन्तु था, वर्त्तमानमें है और भविष्यमें भी रहेगा, क्योंकि ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित होनेसे यह नित्य है। श्रुतज्ञानका सामान्यरूपसे उपसंहार करते हैं-यह श्रुतज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे १ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भावसे, उन चारों प्रकारोंमेंसे—द्रव्यसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त–उपयोगवाला सब द्रव्योंको जानता व देखता है, क्षेत्रसे उपयुक्त श्रुतज्ञानी सब क्षेत्रके पदार्थोंको जानता व देखता है, कालसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त होकर सब काल याने त्रिकालवर्ती विषयोंको जानता व देखता है, भावसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त सब भावों–पर्यायोंको जानता व देखता है ॥ सू. ५७ ॥

९३—मूल–गाहा

अक्खरसन्नी सम्मं, साइयं खलु सपज्जवसियं च ।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ १ ॥

९४—आगमसत्थग्गहणं, जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं ।
बिंति सुयनाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥ २ ॥

९५—सुस्सूसइ १ पडिपुच्छइ २, सुणेइ ३ गिण्हइ ४ य ईहए ५ यावि ।
तत्तो अपोहए ६ वा, या धारेइ ७ करेइ वा सम्मं ८ ॥ ३ ॥

९६—मूअं हुंकारं वा, वाढकारं पडिपुच्छ वीमंसा ।
तत्तो पसंगपारायणं च परिणिट्ठ सत्तमए ॥ ४ ॥

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥ ५ ॥
से त्तं अंगपविट्ठं, से त्तं सुयनाणं, से त्तं परोक्खनाणं, [ से त्तं नाणं ] से त्तं नंदी।

॥ नंदी समत्ता ॥

९३—छाया

अक्षरसंज्ञि सम्यक्, सादिकं खलु सपर्यवसितं च।
गमिकमङ्गप्रविष्टं, सप्ताऽप्येते सप्रतिपक्षाः ॥ १ ॥

९४—आगमशास्त्रग्रहणं, यद्बुद्धिगुणैरष्टभिर्दृष्टम्।
ब्रुवते श्रुतज्ञानलाभं, तत्पूर्वविशारदा धीराः ॥ २ ॥

९५—शुश्रूषते प्रतिपृच्छति, शृणोति गृह्णाति चेहते वाऽपि।
ततोऽपोहते वा धारयति करोति वा सम्यक् ॥ ३ ॥

९६—मूकं, हुङ्कारं, वाढंकारं, प्रतिपृच्छां विमर्शम्।
ततः प्रसङ्गपरायणं च परिनिष्ठा सप्तमके ॥ ४ ॥

९७—सूत्रार्थः खलु प्रथमः, द्वितीयो निर्युक्ति-मिश्रितो भणितः।
तृतीयश्च निरवशेष एष विधिर्भवत्यनुयोगे ॥ ५ ॥
तदेतदङ्गप्रविष्टम्, तदेतच्छ्रुतज्ञानम्, तदेतत्परोक्षज्ञानम्, [ तदेतज्ज्ञानम् ]

॥ सा एषा नंदी समाप्ता ॥

टीका-श्रुतज्ञानका उपसंहार व शास्त्रकी समाप्ति-१ अक्षर २ संज्ञि ३ सम्यक् ४ सादिक और निश्चयसे ५ सपर्यवसित अन्तवाला ६ गमिक व ७ अङ्गप्रविष्ट, ये सातों प्रतिपक्षके साथ अर्थात् अक्षरश्रुत १ अनक्षरश्रुत २ संज्ञि ३ व असंज्ञिश्रुत ४ सम्यक्श्रुत ५ तथा मिथ्याश्रुत ६ सादिक ७ व अनादिकश्रुत ८ सपर्यवसितश्रुत ९ और अपर्यवसितश्रुत १० गमिकश्रुत ११ ऐसे अगमिकश्रुत १२ अङ्गप्रविष्टश्रुत १३ व अनङ्गप्रविष्टश्रुत १४ इसप्रकार श्रुतज्ञानके १४ भेद होते हैं॥९३॥ आगे कहे जानेवाले आठ बुद्धिगुणोंसे जो आगम मर्यादापूर्वक यथावस्थित अर्थोंकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रका ग्रहण देखा है, उसको पूर्वविशारद धीर-व्रतपालनमें स्थिर मुनि श्रुतज्ञानका लाभ कहते हैं अर्थात् जिनप्रणीत वचनका अर्थपरिज्ञानही परमार्थसे श्रुतज्ञान है, अन्य

नहीं। अब पूर्वोक्त आठ बुद्धिगुणोंको कहते हैं-पहले सुनना चाहता है १, फिर शङ्काके स्थलोंको विनयसे पूछता है २, पूछनेपर गुरु जो कहें उसे सावधान मनसे सुनता है ३, और ग्रहण करता है ४, फिर उसपरभी विचार करता है ६, तब, विचार करनेके बाद सम्यक् निश्चय करता है ७, फिर हृदयमें धारण करता और सम्यक् प्रकारसे आचरणमें लाता है ८। श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके निमित्त होनेसे इन आठोंको गुण कहा है। अब शास्त्र सुननेकी विधि कहते हैं-प्रथम मूक-गूंगेकी तरह रहके सुने, फिर हुंकार करे याने-स्वीकारसूचक अव्यक्त ध्वनि करे १, बादमें बाढंकार-जी, हाँ, तहत् आदि पदसे स्वीकार करे २, कुछ पूछे ४, विमर्श-जिज्ञासा करे ५, बाद छट्ठे श्रवणमें प्रसङ्ग-उत्तरगुणप्रसङ्गमें परायण होता है और सातवें श्रवणमें गुरुकी तरह परिनिष्ठित हो जाता है ( उपरोक्त गाथामें कई आचार्य सात बारमें श्रवणका अधिकार पूर्ण करते हैं )। अब गुरुके व्याख्यान करनेकी विधि दिखाते हैं-पहले अनुयोग-व्याख्यान, सूत्रार्थ-मूल और अर्थरूपसे, दूसरा अनुयोग निर्युक्तिसहित कहा गया है, और तीसरा अनुयोग प्रसङ्गानुप्रसङ्गके कथनसे निरवशेष कहा जाता है, यह अनुयोग-व्याख्यान-ज्ञानमें विधि कही गई है, ( इन तीन अनुयोगोंमेंसे किसी एकके बारबार विचार करनेसे सात श्रवण करवाये जाते हैं। यह श्रवण और अनुयोगकी रीति साधारण बुद्धिवाले शिष्योंकी दृष्टिसे कही गई है ) इति-यह अङ्गप्रविष्टश्रुतज्ञान व समस्त श्रुतज्ञान पूर्ण हुआ, साथ ही परोक्षज्ञान भी हो चुका, यह ज्ञानका वर्णन हुआ और नन्दीसूत्र भी पूर्ण हुआ।

पूज्य श्रीहस्तिमल्लमुनिनिर्मित च्छायाऽनुवादोपेतं
श्रीदेवर्द्धि गणिक्षमाश्रमण विरचितं
श्रीमन्नन्दीसूत्रं
समाप्तिमगात्

आनन्दो नन्दनं नन्दिर्नन्दी संमदवाचकाः ।
उपचारात्समाम्नास्ते, स्वार्थतः सर्वदाऽऽस्रताम् ॥ १ ॥
मङ्गलाऽऽगमससर्गान्मङ्गलं यन्मयाऽर्जितम् ।
प्यतां तत्प्रभावेण, जगज्जनं सुमङ्गलम् ॥ २ ॥

# पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दोंपर टिप्पण ।

(१) अंगुल (पृ. ३१ गा. ५७)-अङ्गुलको अनुयोगद्वार सूत्रमें विभाग-निष्पन्न क्षेत्रप्रमाणमें आदिप्रमाण माना है। आत्माङ्गुल, उच्छेदाङ्गुल और प्रमाणाङ्गुल इस प्रकार यह अङ्गुल प्रमाण तीन प्रकारका है, उनमेंसे यहाँ उच्छेदाङ्गुल समझना चाहिए। आठ जवमध्योंका एक उच्छेदाङ्गुलप्रमाण होता है। इसका खुलासा 'बालग्ग' नामक सातवे टिप्पणमें देखें।

(२) आवलिया (पृ. ३२ गा. ५७)-असंख्यात समयोंकी एक आवलिका होती है। एक श्वासोच्छ्वासमें संख्यात आवलिकाएँ हो जाती हैं। (अनुयोग-द्वारसूत्रमें कालानुपूर्वी देखिए)

(३) गाउय (पृ. ३१ गा. ५८)-कौटिलीय अर्थशास्त्रमे 'गाउय' के अर्थमें 'गोरुत' शब्द मिलता है, जैसे—'धनुस्सहस्रं गोरुतम्, चतुर्गोरुतं योजनम्'। उपरोक्त श्लोकमें १००० धनुषका कोश माना है किन्तु यह मगधदेश-प्रसिद्ध है, शौरसेन देशमें दो हजार धनुषका कोश माना जाता था। इस विषयका वैजयन्ती कोशमें निम्न उल्लेख है—

'चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो धनुर्धन्वन्तरं युगम्।'

"धन्वन्तरसहस्रं तु कोशो गव्या तु तद्द्वयम्।
स्त्री-गव्यूतिश्च गव्यूतं गोरुतं गोमतं च तत्॥
गव्यूतानि च चत्वारि योजनं कोशलादिषु।
गव्यूतिद्वयमेव स्याद्योजनं मगधादिषु॥ ६३॥"

वैजयन्ती–देशाध्याय ४०।

(४) जंबूद्दीव (पृ. ३१ गा० ५९)—जम्बूद्वीप यह प्रमाण अङ्गुलोंसे ४ लाख कोशके विस्तारवाला द्वीप है। इसके भरत आदि अनेक क्षेत्र विभाग हैं।

(५) मनुष्यलोक (पृ. ३१ गा ५९)—जितनी भूमिमें मनुष्य रहते हैं उसको मनुष्यलोक कहते हैं, इसमे जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड व अर्द्धपुष्करद्वीप ऐसे ढाईद्वीप और दो समुद्र हैं। कुल ४५ लाख योजनके विस्तारका यह भूखण्ड है।

(६) ओसप्पिणी (पृ. ३१ गा. ६१)-जिस समयमें भूमि व धान्य आदिके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श क्रमशः हीन होते जाते और मनुष्य एवं

तिर्यग् प्राणिओंकी आयु व शरीरकी लम्बाई कम होती हो, तथा सद्गुणोंकी हीनता होती जाय ऐसे कालको अवसर्पिणी काल कहते हैं, उसके परमसुकाल १, सुकाल २, सुषमदुष्षम-पहले अच्छा किन्तु अन्तमें बुरा ३, दुष्षम-सुषम-शुरूमें कुछ अशुभ फिर अच्छा ४, दुष्षम-दुःखप्रधान साधनवाला ५, दुष्षमदुष्षम-पूर्ण दुःख व अवनतिका समय ६, ऐसे इस अवसर्पिणी कालके छ विभाग होते हैं, जिन्हें [illegible] आरा भी कहते हैं। यह अवसर्पिणीकाल १० कोडाकोडी सागरका होता है। वर्तमानमें पांचवें दुष्षम समयके २॥ हजार वर्ष बीते हैं, यह समय कुल २१ हजार वर्षका है। देखें—नन्दीसूत्रकी टीका या जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्तिसूत्रका कालवर्णन।

( ७ ) वालग्ग ( पृ. ३१ सू. १४ )—रथके चक्रसे आहत होकर उडनेवाला धूलि-कण रथरेणु कहा जाता है, आठ रथरेणुसे १ बालाग्र होता है, बालाग्रसे आठ गुण अधिक १ लीख व लीखसे आठ गुण अधिक एक जू( यूका ) होती है, जूसे आठगुण अधिक एक जवमध्य और आठ जवमध्य-परिमाणका एक अङ्गुल होता है। छ अङ्गुलका एक पैर-चरणतल होता है, १२ अङ्गुलोंकी एक वितस्ति-बेंत और २४ अङ्गुलोंका एक रत्नि-हाथ, दो हाथोंकी एक कुक्षि और चार हाथोंका एक धनुष, दोहजार धनुष अर्थात् आठ हजार हाथोंका एक कोश और चार कोशोंका एक योजन होता है। ( विशेष जाननेके लिये अनुयोगद्वारसूत्रमें क्षेत्रप्रमाणके अङ्गुलाधिकारको देखें )

( ८ ) उस्सप्पिणी ( पृ. ३७ सू. १६ )—पहले कहे गए अवसर्पिणी कालसे विपरीत शुभ भावोंकी वृद्धि करनेवाले कालको उत्सर्पिणीकाल कहते हैं। इसके ६ विभागोंमें क्रमशः पदार्थोंके वर्ण, रस, गन्ध, आदिकी उन्नति होती रहती है, इसलिये इस कालको उत्सर्पिणीकाल कहा है, इस कालक्रमको अवसर्पिणीसे उलट समझें, यह काल भी १० कोडाकोडी सागरोपम परिमाणका है। देखें-जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति।

( ९ ) संमुच्छिम मणुस्सा ( पृ ३९ सू. १७ )--मनुष्य आदि प्राणिओंके मलमूत्र वगैरेहसे विना गर्भके पैदा होनेवाले जीवोंको संमूर्च्छनज या संमूर्च्छिम कहते हैं, मनुष्यमात्रके १ मल, २ मूत्र, ३ श्लेष्मा, ४ सिंघाण-नाकका मल, ५ वमन, ६ पित्त, ७ शोणित-रक्त, ८ पू-राध, ९ वीर्य, १० सुके हुए वीर्यके पुद्गलोंका फिर गीला होना, ११ स्त्री-पुरुषका संयोग, १२ शहरोंकी गन्दी नालियाँ, १३ मुर्दोंके कलेवर, तथा १४ सर्व अशुचिके स्थान, इन १४ स्थानोंमें ४८ मिन्टोंके भीतर संमूर्च्छिम मनुष्य जीवोंकी उत्पत्ति होती है, इनका जीवनकालभी अन्तर्मुहूर्तका होता है ( पन्न. १ पद )।

( १० ) कम्मभूमिय, अकम्मभूमिय, अंतरदीवग ( पृ. ३९ सू. १७ )—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज इस प्रकार गर्भज मनुष्योंके संक्षेपसे

तीन प्रकार होते हैं। जहाँ असि, मसि व कृषिरूप साधनोंसे जीविका चलती है और जहाँ राजा और धर्माचार्य आदि होते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं। भरत, ऐरवत व महाविदेह ये तीन कर्मभूमि-क्षेत्र हैं। इनमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कर्मभूमिज कहे जाते हैं।

अकर्मभूमि—इससे उलट जहाँ कृषि, वाणिज्य या शास्त्र-जीवनकी वृत्ति नहीं हो, सभी पूर्ण स्वतन्त्र व कल्पवृक्षसे सुखमय जीवन बिताते हों, उसको अकर्मभूमि या भोगभूमि-क्षेत्र कहते हैं। देवकुरु १, उत्तरकुरु २, हरिवर्ष ३, रम्यवर्ष ४, हैमवत ५, हैरण्यवत ६, ये छ अकर्मभूमिक्षेत्र हैं। यहाँ जन्मनेवाले मनुष्य अकर्मभूमिज कहलाते हैं।

अन्तरद्वीप—दोनों बाजू पानीसे घिरे हुए व जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित भूमिप्रदेशको अन्तरद्वीप कहते हैं। चुल्लहिमवान् और शिखरी पर्वतकी दो २ दाढ़ाएँ लवणसमुद्रमें निकली हुई हैं, जो पूर्व-पश्चिम दोनों दिशाओंमें हैं। उनपर ५६ अन्तरद्वीपके क्षेत्र हैं। यहां भी कृषि, वाणिज्य आदि कर्म नहीं होते हैं। फिर भी समुद्रवर्ती भूभागमें होनेसे इनको अकर्मभूमि नहीं कहके अन्तरद्वीप कहा है। यहांके मनुष्य अन्तरद्वीपज कहलाते हैं।

(११) पज्जत्तग (पृ. ४१ सू. १७)—छ प्रकारकी पज्जत्ति-पर्याप्तिओंमेंसे अपने १ योग्य शक्तिओंको जिसने पूर्ण प्राप्त करलिया उसे पज्जत्त या पर्याप्त कहते हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन पर्याप्ति ये छह पर्याप्तियाँ है। मनुष्यमें ये छहही पर्याप्तियाँ होती हैं, इन छह पर्याप्तिओंको पा लेनेपर मनुष्य पर्याप्त कहाता है। इनकी व्याख्या प्रथम कर्मग्रन्थकी ४९ वीं गाथाके अर्थमें देखें.

(१२) पलिओवम (पृ. ४५ सू. १८)—पल्योपम—उद्धारपल्य १, अद्धापल्य २ व क्षेत्रपल्य ३, इसप्रकार पल्योपमके तीन प्रकार हैं। सूक्ष्म और व्यावहारिक भेदसे प्रत्येकके दो दो प्रकार हैं। उद्धार पल्योपमसे द्वीपसमुद्रोंका परिमाण किया जाता है और क्षेत्रपल्योपमसे दृष्टिवादके द्रव्योंका परिमाण समझा जाता है। किन्तु कालमान व आयुमान अद्धापल्योपमसेही

---

१ पर्याप्तिका स्वरूप—पर्याप्ति वह शक्ति है, जिसके द्वारा जीव आहार-श्वासोच्छ्वास आदिके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है और गृहीत पुद्गलोंको आहार-आदि-रूपमें परिणत करता है। ऐसी शक्ति जीवमें पुद्गलोंके उपचयसे बनती है। अर्थात् जिसप्रकार पेटके भीतरके भागमें वर्तमान पुद्गलोंमें एक तरहकी शक्ति होती है, जिससे कि खाया हुआ आहार भिन्न २ रूपमें बदल जाता है, इसीप्रकार जन्मस्थान-प्राप्त जीवके द्वारा गृहीत पुद्गलोंसे ऐसी शक्ति बन जाती है, जो कि आहार आदि पुद्गलोंको खल-रस आदि रूपमें बदल देती है, वही शक्ति पर्याप्ति है। पर्याप्तिजनक पुद्गलोंमेंसे कुछ तो ऐसे होते हैं, जो कि जन्मस्थानमें आए हुए जीवके द्वारा प्रथमसमयमें ही ग्रहण किये हुये होते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं, जो पीछेसे प्रत्येक समयमें ग्रहण किये जाकर पूर्वगृहीत पुद्गलोंके संसर्गसे तद्रूप बने हुये होते हैं—चतु॰ कर्म॰ परिशिष्ट।

किया जाता है। उसका स्वरूप इस प्रकार है-एक योजन लम्बा चौड़ा व उतनाही गहरा तथा कुछ अधिक तीनगुण परिधिवाला एक गर्त-खड्डा है, उसको एक दिन, दो दिन यावत् उत्कृष्ट ७ दिनोंके पैदा हुए बालकके वालाग्रोंसे खूब कसकर भर देवें। पल्यको भरनेमें वालाग्रोंको इतना कसदेना चाहिए जिससे कि उसके वालाग्र अग्निसे जले नहीं, पानीसे गले नहीं, तथा वायुसे उड़े नहीं व चक्रवर्तीकी चतुरङ्गिणी सेनासे भी दबे नहीं, इसप्रकार कसकर भरदेनेपर सौ सौ वर्षोंसे एक एक वालाग्र निकाला जाय तब जितने समयमें वह खड्डा खाली होजाय अर्थात् एक एक वालाग्र निकल जाय उसको व्यावहारिक अद्धापल्योपम कहते हैं। जब इन वालाग्रोंको प्रत्येकके दिख नहीं पड़े इतने छोटे टुकड़े-असंख्य खण्ड करके पूर्ववत् पल्य-खड्डाको भरे और उसमेंसे एक एक टुकड़ाको सौ सौ वर्षोंसे निकाले ऐसे करनेपर जितने दिनोंमें वह पल्य अर्थात् खड्डा खाली हो उस समयको सूक्ष्म अद्धापल्य कहते हैं। दश कोडाकोडी पल्यका एक सागरोपम काल होता है, इसीसे देव नारकोंकी आयुका मान होता है। उद्धारपल्य व क्षेत्रपल्यमें प्रतिसमय वालाग्रका अपहरण किया जाता है, शेष वर्णन इसी प्रकार है।

(११) अणंतरसिद्धकेवलनाणं (पृ. ४३ सू. २१)—शैलेशी-अवस्थाके अन्तिम समयमें जो सिद्ध हुए हैं उनका केवलज्ञान अनन्तरसिद्ध-केवलज्ञान है, पूर्वभवसम्बन्धी उपाधिके भेदसे ये सिद्ध १५ प्रकारके होते हैं, जैसे—

१ तीर्थसिद्ध—वीतराग व सर्वज्ञ तीर्थङ्कर महाराजसे प्रणीत आगम या सङ्घ तीर्थ कहाता है। उस तीर्थकी स्थापना हो जानेपर जो सिद्ध हुए वे तीर्थसिद्ध होते हैं।

२ अतीर्थसिद्ध—पूर्वोक्त तीर्थकी स्थापना होनेसे पहले या तीर्थके विच्छेदके समय जातिस्मरण आदिसे मरुदेवीकी तरह सिद्ध होनेवाले अतीर्थसिद्ध हैं।

३ तीर्थङ्करसिद्ध—ऋषभ आदि तीर्थङ्कर होकर जो सिद्ध हुए उन्हें तीर्थङ्करसिद्ध कहते हैं।

४ अतीर्थङ्करसिद्ध—जो सामान्य केवलीपदसे सिद्ध हुए हैं।

५ स्वयम्बुद्धसिद्ध—गुरु आदिके उपदेशके विना स्वयं बोध पाकर सिद्ध होनेवाले।

६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध—करकण्डु आदिकी तरह वृषभ आदि किसी बाह्य वस्तुके निमित्तसे बोध पाकर सिद्ध होनेवाले प्रत्येकबुद्धसिद्ध कहे जाते हैं।

७ बुद्धबोधितसिद्ध—आचार्य आदिसे बोध पाकर जो सिद्ध हुए हैं।

८ स्त्रीलिङ्गसिद्ध—जो स्त्रीके शरीरसे सिद्ध होते हैं।

९ पुलिङ्गसिद्ध—पुरुषलिङ्गसे जो सिद्ध हुए हैं।

१० नपुंसकलिङ्गसिद्ध—नपुंसकके शरीरसे जो सिद्ध हुए हैं।

११ स्वलिङ्गसिद्ध—रजोहरण मुखवस्त्रिकारूप जैनलिङ्ग(चिह्न)से सिद्ध होनेवाले।

१२ अन्यलिङ्गसिद्ध—परिव्राजक आदिके लिङ्गसे सिद्ध होनेवाले।

१३ गृहिलिङ्गसिद्ध—भावोंकी उच्चतासे-भावसाधुतासे गृहस्थवेशमें सिद्ध होनेवाले।

१४ एकसिद्ध—एकसमयमें एकही सिद्ध होनेवाले।

१५ अनेकसिद्ध—एकसमयमें अनेक सिद्ध होनेवाले।

तीर्थसिद्ध व अतीर्थसिद्ध इन दो भेदोंमें सब सिद्धोंका समावेश हो जानेपर भी जो १५ भेद दिखाये गए हैं वे विशेष बोधके लिये है। इन १५ सिद्धोंके आश्रयसे केवलज्ञान भी १५ प्रकारका है, जैसे-धर्मभेदसे धर्मीमें भेद होता है, वैसे धर्मीके भेदसे धर्ममें भी भेद होता है, जैसे-कुज्य, नम व वृक्षपर बैठने उडनेवाले पक्षी।

(१४) मिथ्याश्रुत (पृ १११ सू ४१)—जैन आचार्योंने विषय-कषायोंसे निवृत्त होकर निजात्मभावमें प्रवृत्ति करनेकोही उपादेय माना है। पुरुषार्थ चतुष्टयीमें भी 'धर्म प्रवर वदन्ति' के अनुसार मोक्षसाधक धर्मतत्त्वकोही वे पुरुषार्थ मानते हैं और प्रधानतासे उस शुद्ध धर्मके प्रदर्शक शास्त्रकोही वे सम्यक्श्रुत कहते हैं, देखें श्रुतका लक्षण-'[redacted] सुच्चा पडिवज्जति तवं खंतिमहिंसयं' अर्थात् जिस शास्त्रको सुनकर श्रोता तप क्षांति और अहिंसाको धारण करता हो उसे सम्यक्शास्त्र कहते हैं (उ ३ गा ८)। इस लक्षणके अनुसार कामशास्त्र, अर्थशास्त्र शिल्पशास्त्र, भाषाशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र व इतिहास आदि शास्त्र व्यवहारज्ञानके पोषक और प्रधानतासे प्रवृत्तिसाधक होनेसे मोक्ष मार्गसे विपरीत हैं, अतएव इन 'भारत आदि' लौकिक शास्त्रोंको यहां मिथ्याश्रुत कहा है। किसी विशिष्ट व्यक्तिको विशुद्ध दृष्टिके कारण इनशास्त्रोंसे भी सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है, उसके लिये ये सम्यक्श्रुत होते है। परिचय-इनमें भारत, महाभारत और रामायण व कौटिलीय-अर्थशास्त्र प्रसिद्ध हैं, भीमासुरोक्त १, शाकट-भद्रिका २, घोटकमुख-वात्स्यायन 'नो पूर्वगामी कामशास्त्रनो रचनार' देखें-जैन साहित्यनो ('संक्षिप्त इतिहास शु ) ३ कार्पासिक ४, नागसूक्ष्म ५, कनकसप्तति ६, त्रैराशिक ७, लोकायत ८, पुष्पदैवत ९ ये उपरोक्त ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, माठर-माठराचार्यकृत सांख्यकारिकाकी माठरवृत्ति जो वर्तमानमें उपलब्ध है, पुराण व्याकरण, भागवत पातञ्जल (योगसूत्र) और साङ्गोपाङ्ग चार वेद ये वर्तमानमें उपलब्ध एव प्राय प्रसिद्ध है।

(१५) उत्कालिक-श्रुत (पृ ११५ सू ४३) नियत समयके अलावा भी जो पढे जावें उनको उत्कालिकश्रुत कहते हैं।

दसवेआलिय १, उववाइय ५, रायपसेणइय ६, जीवाभिगम ७, पन्नवणा ८, नंदी ११, अणुओगद्दार १२, सूरपण्णत्ति १६, ये ७ श्रुत वर्तमानमें उपलब्ध हैं। २, ३, ४, ९, १०, १५, १७, १८, १९, २१, २३, २४, २६, २७, ये १४ श्रुत वर्तमानमें अनुपलब्ध हैं। देवेन्द्रस्तव आदि शेष श्रुत उस नामसे दश प्रकीर्णकोंमें मिलते हैं। किन्तु उनकी भाषा व रचना आदिसे मालुम होता है कि आचार्योंने प्राचीन श्रुतके आधारसे उन ग्रन्थोंका पिछेसे निर्माण किया हो, देखें- मरणसमाधिकी प्रशस्ति—

एयं मरणविभत्तिं, मरणविसोहिं च नाम गुणरयणं ।
मरण समाहिं तइयं, संलेहणसुयं चउत्थं च ॥ ६६१ ॥ १८९६ ॥
पंचम भत्तपरिण्णा, छट्ठं आउरपच्चक्खाणं च ।
सत्तम महपच्चक्खाणं, अट्ठम आराहणपइण्णो ॥ ६६२ ॥ १८९७ ॥
इमाओ अट्ठसुयाओ, भावाउ गहियंमि लेस अत्थाओ ।
मरणविभत्ती रइयं, बियनाम मरणसमाहिं च ॥ ६६३ ॥ १८९८ ॥
इति सिरिमरणविभत्ती पइण्णयं संमत्तं ॥ ८ ॥ इति संलेखनाश्रुतम् ।

उत्कालिक श्रुतोंकी सूची।

दशवैकालिक सूत्र—जो दश अध्ययनोंसे साधुओंके आचारोंको कहनेवाला है, यह शास्त्र प्रसिद्धही है ॥ १ ॥

कल्प और अकल्पका वर्णन करनेवाला शास्त्र कल्पाकल्प कहा जाता है। यह नहीं मिलता ॥ २ ॥

स्थविरकल्प आदि मर्यादाको कहनेवाला ग्रन्थ कल्पश्रुत कहा जाता है। यह दो तरहका है, एक सूत्र तथा अर्थके परिमाणसे छोटा है, उसे क्षुल्लकल्पश्रुत कहते हैं, दूसरा सूत्रार्थोंके परिमाणसे विशाल है उसे महाकल्पश्रुत कहते हैं ॥ ३-४ ॥

उववाई, रायपसेणि और जीवाभिगम ये तीनों क्रमसे पहले दूसरे व तीसरे उपाङ्ग हैं ॥ ५-६-७ ॥

प्रज्ञापना-इसमें जीव अजीवका ज्ञान कराया गया है ॥ ८ ॥

महाप्रज्ञापना-यह सूत्रार्थोंकी अपेक्षासे प्रथम प्रज्ञापनासे बड़ा है ॥ ९ ॥

प्रमादाऽप्रमादशास्त्र-इसमें प्रमाद और अप्रमादके भेद, स्वरूप और फल दिखाए गए हैं ॥ १० ॥

नन्दी-पांच ज्ञानोंको कहनेवाला शास्त्र ॥ ११ ॥

अनुयोगद्वार-इसमें उपक्रम, निक्षेप, आदि व्याख्याके द्वारोंका वर्णन है ॥ १२ ॥

देवेन्द्रस्तव-देव व देवेन्द्रकी स्तुति, तन्दुलवैचारिक-गर्भ व स्त्रीस्वभाव आदि तत्सम्बन्धी वर्णन करनेवाला दश प्रकीर्णकोंमें इस नामका एक प्रकीर्णक उपलब्ध है ॥ १३ ॥

चन्द्रविद्या-चन्द्रसम्बन्धी ज्ञान करानेवाला ग्रन्थविशेष, यह वर्तमानमें अनुपलब्ध है ॥ १४ ॥

सूर्यप्रज्ञप्ति-इसमें सूर्यकी गति आदिका वर्णन है ॥ १६ ॥

पौरुषीमण्डल-इसमें पुरुषके शरीर या शङ्कुकी छायासे पौरुषीका ज्ञान कराया गया है, जैसे उत्तरायणके अन्त और दक्षिणायनके प्रारम्भमें केवल एक दिन शङ्कु वगैरह किसी भी वस्तुकी अपने बराबर छाया हो, तब पौरुषी-प्रहर दिन समझना चाहिए। इसप्रकार प्रत्येक सूर्यमण्डलकी अपेक्षासे पौरुषीका वर्णन करनेवाला अध्ययन पौरुषीमण्डल है ॥ १७ ॥

मण्डलप्रवेश-इसमें दक्षिण और उत्तरके मण्डलोंमें चन्द्रसूर्यके एक मण्डलसे दूसरे मण्डलमें प्रवेशका वर्णन किया गया है ॥ १८ ॥

विद्याचरणविनिश्चय-इसमें सम्यग्ज्ञान और चरणके फलका निश्चय कहा गया है ॥ १९ ॥

गणिविद्या- ज्योतिष व निमित्तके विषयमें आचार्यकी विद्या-इसी नामसे यह प्रकीर्ण उपलब्ध है ॥ २० ॥

ध्यानविभक्ति- इसमें आर्त, रौद्र आदि ध्यानोंके विभाग व उनके स्वरूपोंका वर्णन है ॥ २१ ॥

मरणविभक्ति- इसमें अनुसमय आदि मरण विभागोंका वर्णन है ॥ २२ ॥

आत्मविशुद्धि- इसमें आलोचना व प्रायश्चित्त आदि प्रकारसे जीवकी विशुद्धिका वर्णन है ॥ २३ ॥

वीतरागश्रुत- इसमें वीतरागके स्वरूपका वर्णन है ॥ २४ ॥

संलेखनाश्रुत- इसमें द्रव्यभावसे संलेखनाका वर्णन है ॥ २५ ॥

विहारकल्प- स्थविर आदि कल्पके विहारकी व्यवस्था करनेवाला ग्रन्थ ॥ २६ ॥

चरणविधि-व्रत आदि चरणका वर्णन करनेवाला ग्रन्थ ॥ २७ ॥

आतुरप्रत्याख्यान-महाप्रत्याख्यान-रोगिओंको प्रत्याख्यान करानेका विस्तारसे वर्णन करनेवाला तथा भवचरम प्रत्याख्यानका प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ। ये सब प्रायः अनुपलब्ध हैं ॥ २८ ॥

कालिक श्रुतोंकी सूची।

१ उत्तराध्ययन—सभी प्रकारके भावोंको ३६ अध्ययनोंमें वर्णन करनेवाला शास्त्र।

२ दशाश्रुतस्कन्ध—इसमें १० अध्ययनोंसे २० असमाधिस्थानोंको लेकर १ निदानतकका वर्णन है।

३ कल्प— बृहत्कल्पसूत्र।

४ व्यवहारसूत्र—इसमें साधुओंके आलोचनादि व्यवहारका वर्णन है।

५ निशीथ—इसमें साधुसाध्वियोंके दूषित चारित्रको शुद्ध करनेके लिये प्रायश्चित्तका विधान है, ये पांच शास्त्र वर्तमानकालमें उपलब्ध हैं।

६ महानिशीथ—यह शास्त्र निशीथसूत्रकी अपेक्षा ग्रन्थपरिमाणमें बडा है।

७ ऋषिभाषित–

८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति–इसमें क्षेत्र व कालभेदसे जम्बूद्वीपके भावोंका वर्णन है।

९ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति—यह ग्रन्थ द्वीप और समुद्रोंका वर्णन करनेवाला है।

१० चन्द्रप्रज्ञप्ति—यह शास्त्र चन्द्रकी मण्डलगति और नक्षत्रपरिवार आदिका वर्णन करता है।

११–१२ क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति और महतीविमानप्रविभक्ति ये दोनों ग्रन्थ आवलिकाप्रविष्ट व पुष्पावकीर्ण विमानोंके विभागोंका वर्णन करते हैं।

१३–१४ अङ्गचूलिका–आचाराङ्गादिकी चूला, वर्गचूला–वर्गोंकी चूलिका।

१५ व्याख्याचूलिका–भगवतीसूत्रकी चूला।

१६ अरुणोपपात–उपयोगपूर्वक जिसके पठनसे अरुणदेव चले आवें।

१७—वरुणोपपात–इसके उपयोगपूर्वक पठनसे वरुणदेवका आगमन होता है।

१८ गरुडोपपात।

१९ धरणोपपात।

२० वैश्रमणोपपात।

२१ वेलन्धरोपपात।

२२ देवेन्द्रोपपात। इन पांच शास्त्रोंका भी उपयोगपूर्वक पठन करनेपर गरुड आदि देव व इन्द्रका भी आगमन होता है, उन शास्त्रोंकी रचना इसी प्रकारकी आकर्षकतावाली थी। उपरोक्त कालिकश्रुतोंमें ६–७ संख्याके ग्रन्थ उस नामसे उपलब्ध हैं किन्तु अपने मूलरूपमें नहीं, जो उनकी रचना आदिसे मालूम हो सकता है।

२३ उत्थानश्रुत–क्रोधी हुए मुनि जिस गांव या नगरके लिये संकल्पके साथ उपयोगपूर्वक तीनवार पठन करें तो वह गांव या नगर रोता हुआ मूलसे उजडजाय।

२४ समुत्थानश्रुत–वेही मुनि जब प्रसन्न होकर सङ्कल्पके साथ उपयोगपूर्वक तीनवार समुत्थानश्रुतका पाठ करें तो वह गांव या नगर फिर वहाँ आजाय।

२५ नागपरिज्ञा–इसको जब साधु उपयोगपूर्वक पढते हैं तब सङ्कल्पके विना भी नागकुमारदेव वहाँ विराजमान उन मुनिओंको जान जाते हैं तथा वन्दन करते हैं और प्रयोजनानुसार वरदान भी देते हैं।

२६ निरयावलिका–नरकावासोंका तथा नरकगामी जीवोंका वर्णन करनेवाला।

२७ कल्पिका-इसमें सौधर्म आदि कल्पका तथा देवलोक और उनमें जानेवाले जीवोंका वर्णन है।

२८ कल्पावतंसिका-इसमें सौधर्म ईशानके कल्पविमानोंमें उत्पन्न हुई देवियोंका वर्णन किया गया है।

२९ पुष्पिता-संयमभावसे पुष्पित-सुखी आत्माओंका वर्णन करनेवाला शास्त्र।

३० पुष्पचूला-प्रस्तुत अर्थकी विशेषताका वर्णन करनेवाला शास्त्र।

३१ वृष्णिदशा-अन्धकवृष्णि राजाकी वक्तव्यताबोधक शास्त्र।

९ और ११ से २५ तककी संख्याके ग्रन्थ वर्तमानमें प्रायः अनुपलब्ध हैं। आसीविसभावना, दिट्ठीविसभावना, चारणभावना, सुवि( मि )णभावना, तेयनिसग्ग, कालिकश्रुतमें उपरोक्त नाम किसी किसी प्रतिमें मिलते हैं। व्यवहारसूत्रके १० वें उद्देशकमें इनका उल्लेख मिलता है, इससे इनको मूलपाठमें मानना सङ्गत दिखता है। ये सर्व श्रुत नियत समयमेंही पढे जाते हैं, इसलिये कालिक कहाते हैं।

(१६) तिण्हं तेसट्ठाणं पासंडिय सयाणं पृ १११ सू. ४६-क्रियावादी आदि एकान्तवादी तीर्थिकोंके ३६३ भेद इस प्रकार होते हैं—

१ क्रियावादी-जीव अजीव पुण्य पाप आदि हैं और क्रियाही आत्मसाधक है इस प्रकार इनका एकान्त अस्तित्व माननेसे ये-क्रियावादी मिथ्यादृष्टि हैं. इनके १८० प्रकार मन्तव्य भेदसे होते हैं, जिसमें जीव आदि नवपदार्थ स्वपर दृष्टिसे नित्य व अनित्यरूपमें विचारे जाते हैं, काल स्वभाव आदि ५ विकल्पसे प्रत्येकका विचार करनेपर १८० होते हैं, जैसे—

१ जीव स्वतः कालसे नित्य है।
२ जीव स्वतः कालसे अनित्य है।
३ जीव परतः कालसे नित्य है।
४ जीव परतः कालसे अनित्य है।
५ जीव स्वयं चेतन स्वभावसे नित्य है।
६ जीव स्वतः होकर भी स्वभावसे अनित्य है।
७ जीव परतः होकर भी स्वभावसे नित्य है।
८ जीव परसे प्रकट होता और स्वभावसे अनित्य है।
९ जीव होनहारसे स्वयं हजारोंकी संख्यामें उत्पन्न होता है और नित्य रहता है।
१० होनहारकोही लेकर जीव परतः उत्पन्न होता व नित्य रहता है।
११ होनेवाला हुआ तो जीव स्वयं उत्पन्न होकर भी अनित्य रहता है।
१२ होनहारके कारणही जीव परतः उत्पन्न होकर अनित्य रहता है।

ईश्वरसे भी चार विकल्प।

१३ जीव ईश्वरसे अपनेही कारणोंसे उत्पन्न होकर नित्य रहता है।
१४ जीव अपने निमित्तसे ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी अनित्य होता है।
१५ जीव परकारणोंसे ईश्वरसे बनाया जाता और नित्य है।
१६ जीव ईश्वरसे परकारणोंको निमित्त लेकर बनाया जाता व अनित्य है।

आत्मा—

१७ जीव स्वयं आत्मरूपसे उत्पन्न होता और नित्य है।
१८ जीव आत्मरूपसे स्वयं पैदा होकर अनित्य रहता है।
१९ आत्मरूपसे जीव दूसरेसे उत्पन्न होता व नित्य है।
२० जीव दूसरेसे आत्मरूपमें उत्पन्न होता और अनित्य है।

जीवके साथ जैसे २० विकल्प हुए ऐसेही अजीव १ पुण्य २ पाप ३ आस्रव ४ संवर ५ निर्जरा ६ बन्ध ७ और मोक्ष ८ इन आठोंके २०-२० विकल्प होते हैं जो मिलानेसे सब १८० हो जाते हैं। ये क्रियावादीके १८० प्रकार हुए।

२ अक्रियावादी-क्रियावादीसे विपरीत-एकान्त जीव आदिका निषेध करनेवाले अक्रियावादी हैं, इनके ८४ भेद होते हैं, जैसे-पुण्यपाप आदिको छोड़कर जीव अजीव आदि सात पदार्थोंको लिखकर उनके नीचे स्व-पर ये दो भेद रखना, फिर काल, यदृच्छा, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन ६ को नीचे रखनेसे ८४ प्रकार हो जाते है, जैसे—

१ जीव स्वयंकालसे नहीं है।
२ जीव परतः कालसे नहीं है।
३ जीव स्वयं यदृच्छासे नहीं है।
४ जीव परतः यदृच्छासे नहीं है।
५ जीव नियतिसे स्वयं नहीं है।
६ जीव नियतिका आश्रयणकर परसे नहीं है।
७ स्वभावसे जीव स्वयं नहीं है।
८ स्वभावसे जीव परतः नहीं है।
९ ईश्वरसे जीव स्वयं नहीं है।
१० ईश्वरसे जीव परतः नहीं है।
११ आत्मरूपसे जीव स्वयं नहीं है।
१२ जीव आत्मरूपसे परसे नहीं है।

जीवके साथ जिस प्रकार १२ विकल्प हुए इसी प्रकार अजीव आदि ६ पदार्थोंके साथ भी १२-१२ विकल्प होते हैं, सब मिलकर अक्रियावादीके ८४ प्रकार होते हैं।

३ अज्ञानवादी-अज्ञानसेही कार्यसिद्धि चाहनेवाले अज्ञानवादियोंके ६७ भेद हैं-जीव आदि नव पदार्थोंके विषयमें सत् असत् आदिसप्तभङ्गोंसे संशय करनेपर ६७ प्रकार होते हैं, जैसे—

१ जीव सत् है यह कौन जानता? और यह जाननेसे क्या प्रयोजन?

२ जीव असत् है यह कौन जानता! और इसके जाननेसे क्या मतलब है!

३ जीव सदसद्रूप है यह कौन जानता? और इसके जाननेसे क्या लाभ है?

४ जीव अवक्तव्य है यह कौन जानता! अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन?

५ जीव सत् होकर अवक्तव्य है यह कौन जानता! अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है!

६ जीव असत् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता? अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है?

७ जीव सदसद् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता? तथा इसके जाननेसे प्रयोजन भी क्या है?

जिस प्रकार जीवके साथ सप्तभंग हुए उसी प्रकार अजीव आदि ८ तत्त्वोंके भी सात २ भङ्ग होते हैं, वे सब मिलकर अज्ञानवादिओंके ६३ भेद होते हैं, फिर–

१ पदार्थोंकी उत्पत्ति सती (वर्तमान) है यह कौन जानता? या इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है?

२ पदार्थोंकी उत्पत्ति असती है इसे भी कौन जानता? अथवा ऐसा जाननेसे क्या प्रयोजन है?

३ पदार्थोंकी उत्पत्ति सदसती है यह भी कौन जानता? तथा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है?

४ पदार्थोंकी उत्पत्ति अवक्तव्य है यह भी कौन जानता? व इसके जाननेसे भी क्या प्रयोजन है? ६३ के साथ इन चारको मिला देनेसे अज्ञानवादीके ६७ भेद हो जाते हैं।

३ विनयवादी–विनयसे परलोककी सिद्धि माननेवाले वैनयिकवादीके ३२ भेद है, १ देव २ राजा ३ यति ४ ज्ञाति ५ वृद्ध ६ अधम ७ माता और ८ पिता, इन आठोंमें प्रत्येकके साथ मन वचन काय और दानसे चार प्रकारका विनय किया जाता है, आठोंके चार २ भेद मिलानेसे सब विनयवादीके ३२ प्रकार हो जाते हैं।

क्रियावादीके १८०, अक्रियावादीके ८४, अज्ञानवादीके ६७ और विनयवादीके ३२, इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ एकान्तवादिओंके प्रकार होते है। एकान्तवादी होनेसे ये मिथ्यादृष्टि कहाते हैं, इन्हीं बातोंको सम्यग्दृष्टि नयदृष्टिसे अनेकान्तरूपमें मानते है। विशेष ज्ञानके लिए सूत्रकृताङ्गका द्वादश समवसरण अध्ययन देखे।

(१७) सीलव्वयगुण–वेरमण पच्चक्खाण पो० (पृ १३० सू. १) शीलव्रत–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदारसन्तोष व इच्छापरिमाण,

इन पांच अणुव्रतोंको शीलव्रत कहते हैं।

गुणव्रत–दिग्व्रत, भोगोपभोग–परिमाण और अनर्थदण्डविरमणव्रत ये तीन गुणव्रत होते हैं।

वेरमण–विरमण–क्रोध, मान, लोभ आदि सदोष ( दुष्ट ) कार्योंसे निवृत्ति करनेरूप सावद्ययोगविरमण–सामायिक व्रत आदि विरमण कहाते हैं।

पच्चक्खाण—नमोक्कारसी व पोरसी आदि व्रत प्रत्याख्यान कहाते हैं।

पोसहोववास—पौषध याने अष्टमी आदि पर्वदिनोंमें आहार, शरीर-सत्कार–वेशभूषा, स्नान आदि, तथा धन्धा व्यापार आदिका त्याग करना इसको पौषधोपवास कहते हैं।

( १८ ) पडिमा ( पृ १३० सू. ५१ )—अभिग्रहविशेषको या कायोत्सर्गको प्रतिमा कहते हैं। अभिग्रहरूप उपासकोंकी ११ प्रतिमायें हैं, जैसे—

१ दर्शन–प्रतिमा–इसमें निर्दोष सम्यक्त्वकी आराधना की जाती है।

२ व्रतप्रतिमा–इसमें उपासकोंके १२ व्रतोंकी निर्दोष आराधना की जाती है।

३ सामायिक–प्रतिमा–इसमें दोनों सन्ध्या सामायिक की जाती है।

४ पौषधप्रतिमा–इसमें पर्वतिथिमें उपवास किया जाता है।

५ प्रतिज्ञा–पांच प्रतिज्ञाओंके साथ एक रात्रिको कायोत्सर्ग करना।

६ अब्रह्मत्याग–प्रतिमा–पूर्ण ब्रह्मचर्य व रात्रिभोजनका त्याग करना।

७ सचित्तत्याग–प्रतिमा–इसमें सजीव–सचित्त वनस्पति व कच्चा पानी आदि आहारका त्याग करना।

८ आरम्भत्याग–प्रतिमा–स्वयं आरम्भ करनेका त्याग करना।

९ प्रेष्यारम्भत्याग–प्रतिमा–सेवक आदिसेभी आरम्भ नहीं कराना।

१० उद्दिष्टत्याग–प्रतिमा–अपने लिये आरम्भपूर्वक की हुई वस्तुको भी नहीं लेना।

११ श्रमणभूत–प्रतिमा–साधुकी तरह विशेष नियमसे रहना। ( विशेष समझनेके लिये देखिये—उपाध्यायजी महाराज सम्पादित दशाश्रुतस्कन्धका ६ ट्ठा अध्ययन, अथवा उपासकदशाङ्गके प्रथमाध्ययनकी टीका )

( १९ ) उद्देसणकाल और समुद्देसणकाल ( सू० ४६ से ५१ )—

किसी भी शास्त्रका शिक्षण लेना हो तो गुरुकी आज्ञा प्राप्त करके लेना ऐसा शास्त्रीय नियम है। उसके अनुसार जब कोई शिष्य गुरुसे पूछता है कि महाराज ! मैं कौनसा सूत्र पढूं ? तब 'आचाराङ्ग' अथवा 'सूत्रकृताङ्ग' पढ ऐसी गुरुकी सामान्य आज्ञाको उद्देश कहते हैं, तथा 'आचाराङ्गके प्रथम श्रुतस्कन्धके प्रथम अध्ययनको पढ, इस प्रकारकी विशेष आज्ञाको समुद्देश कहते हैं। पूर्वसमयमें गुरुजन अपने शिष्योंको कण्ठाग्र ही शास्त्रकी वाचनादि देते थे। इसलिये अध्ययन आदि विभागके अनुसार उन्होंने नियत दिनोंमें

सूत्रार्थ-प्रदानकी व्यवस्था निर्माण की, जिसको उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल कहते हैं।

मौखिक शिक्षणकी समाप्तिके लगभगही यह प्रथा बंद हो गई हो ऐसा प्रतीत होता है, अतएव भगवती तथा उपाङ्गशास्त्रोंके उद्देशनकालका उल्लेख नहीं मिलता।

अङ्ग, श्रुतस्कन्ध, अध्ययन और उद्देशकका एकही उद्देशनकाल है, आचाराङ्गके ८५ उद्देशनकाल हैं। जो इस प्रकार कहे गए हैं—१ शास्त्रपरिज्ञा अध्ययनके ७ उद्देशन, २ लोकविजयके ६ उद्देशनकाल, ३ शीतोष्णीयके ४ उद्देशनकाल, ४ सम्यक्त्व अध्ययनके ४ उद्देशनकाल, ५ लोकसार अध्ययनके ६ उद्देशनकाल, ६ धुत अध्ययनके ५ उद्देशनकाल, ७ विमोह अध्ययन के ८ उद्देशनकाल, ८ महापरिज्ञा अध्ययनके ७ उद्देशनकाल, ९ उपधानश्रुत अध्ययनके ४ उद्देशनकाल, १० पिण्डैषणा अध्ययनके ११ उद्देशनकाल, ११ शय्या अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, १२ ईर्या अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, १३ भाषाजात अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १४ वस्त्रैषणा अध्ययनके २ उद्देशन काल, १५ पात्रैषणा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १६ अवग्रह प्रतिमा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १७-२३ इन सात अध्ययनोंके ७ उद्देशनकाल, २४ भावना अध्ययनका १ उद्देशनकाल, और २५ विमुक्ति अध्ययनका १ उद्देशनकाल, इस प्रकार सब मिलकर ८५ उद्देशन काल होते हैं, ऐसेही समुद्देशनकाल भी समझें।

सूत्रकृताङ्गके ३३ उद्देशनकाल होते हैं-" जैसे प्रथम अध्ययनमें ४ उद्देशनकाल, २ य अध्ययनमें ३ उद्देशनकाल, तीसरे अध्ययनमें ४ उद्देशनकाल, चतुर्थ अध्ययनमें २ उद्देशनकाल, पञ्चम अध्ययनमें २ उद्देशनकाल, और शेष ११ अध्ययनोंमें प्रत्येकका एक एक उद्देशनकाल, इस प्रकार प्रथम श्रुत स्कन्धके २६ उद्देशन काल होते हैं। द्वितीय श्रुतस्कन्धके ७ अध्ययनोंके ७ उद्देशनकाल हैं, इसप्रकार कुल मिलाकर ३३ उद्देशनकाल होते हैं।

स्थानाङ्गके २१ उद्देशनकाल होते हैं, ये इस प्रकार हैं—दूसरे, तीसरे व चौथे अध्ययनके ४-४ उद्देशनकाल हैं, पञ्चम अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, बाकी ६ अध्ययनोंमें प्रत्येकका एक एक उद्देशनकाल, इस प्रकार सब २१ इकवीस उद्देशनकाल होते हैं। ४ समवायाङ्गका एकही उद्देशनकाल कहा गया है। ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवतीके उद्देशनकालका निर्देश मूलमें नहीं किया है।

६ ज्ञाताधर्मकथाके २९ एकोनतीस उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल होते हैं जैसे प्रथमश्रुत स्कन्धके १९ अध्ययनोंमें १९ उद्देशनकाल और दूसरे श्रुतस्कन्धके १० अध्ययनोंमें १० उद्देशनकाल, ऐसे २९ उनतीस उद्देशनकाल हो जाते हैं।

७-८ उपासकदशाङ्ग और अन्तकृद्दशाङ्गके अध्ययन व वर्गके अनुसारही क्रमशः १० और ८ उद्देशनकाल होते हैं।

९ अनुत्तरौपपातिकके भी ३ उद्देशनकाल और ३ समुद्देशनकाल हैं।

१० प्रश्नव्याकरणके ४५ उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल कहे गए हैं। किन्तु समवायाङ्गके वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि १० वें अङ्गपरिचयकी वृत्तिमें लिखते हैं कि जो भी अध्ययन १० होनेसे उद्देशनकाल भी दशही होते हैं, फिर भी वाचनान्तरकी अपेक्षासे ४५ संख्याका सम्भव होता है।

११ विपाकश्रुतके-दोनों श्रुतस्कन्धके २० उद्देशनकाल और २० समुद्देशन काल हैं।

( २० ) परिकम्म ( पृ १४१ सू ५६ )-परिकर्म—योग्यता उत्पन्न करना, जैसे-गणितशास्त्रमें सङ्कलन आदि सोलह परिकर्मोंको समझनेवाला बाकीके गणितशास्त्रको ग्रहण करनेयोग्य होता है, वैसे विवक्षित परिकर्मसूत्रके अर्थको ग्रहण किया हुआ मनुष्य दृष्टिवादके अन्यश्रुतको ग्रहण करनेयोग्य होता है, अन्यथा नहीं। इसीलिये परिकम्म(कर्म)को दृष्टिवादके प्रथम प्रकारमें कहा है।

( २१ ) आजीविय ( पृष्ठ ११० )-यहां आजीविय शब्दसे गोशालकका आजीविकमत लिया जाता है। वीरनिर्वाणसे ३६ वर्ष पूर्व मक्खलिपुत्र गोशालकने महावीरसे अलग होकर इस मतकी स्थापना की थी।

भगवान् महावीरका द्वितीय चातुर्मास जब राजगृहीके नालन्दापाडेमें था, उसी समय गोशालकने उनको गुरुतरीके स्वीकार किये और ६ वर्षतक प्रणीत भूमिमें उनके साथ रहा। किसी समय सिद्धार्थग्रामसे कूर्मग्राम आते हुए उसने महावीरसे तिलके वृक्षके फलके बाबत प्रश्न किया, उसपर प्रभुने उत्तर दिया कि—यह तिलका वृक्ष फलेगा और इन ७ फूलोंके जीव मरके तिलके सात जीवरूपसे उत्पन्न होंगे। गोशालकने प्रभुकी बात झूठी करनेके लिये धीरेसे पीछे जाकर उस झाडको उखेड फेंका। फिर भी कुछ समयके बाद वह झाड दिव्य वृष्टि आदि संयोगसे रुप गया जब पीछे आते हुए गोशालकने उस तिलके झाडको फला हुआ देखा, तब महावीरकी सत्यताके साथ उसको यह निश्चय हुआ कि सब जीव निश्चयसे 'प्रवृत्त-परिहारी हैं,' मनुष्य कितना भी प्रयत्न करे किन्तु आखिर वही होता है जो नियत-होना-होता है। इसप्रकार परिवर्तवाद तथा नियतिवादको लेकर वह श्रीमहावीरसे अलग हुआ। और लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन और मरण इन छ बातोंकी जनतामें प्ररूपणा करने लगा। अष्टाङ्गनिमित्त दिखाकर जीविका चलानेसे इसको आजीविक कहते हैं, आजीविक सम्प्रदायकी मुख्य मान्यताएँ निम्न प्रकार हैं—सभी जीव सचित्ताहारी हैं, इसलिये वे हनन, छेदन, लुम्पन, विलुम्पन, व उपद्रव-विनाश इन क्रियाओंको करके आहार करते हैं। आजीविकोपासकोंके अरिहन्त ( गोशालक ) देव हैं। धर्म-माता-पिताकी भक्ति करना, और उम्बरके फल, वटके फल, व बोर, सतरके फल, व पिम्पलके फल इन ५ फलोंका वर्जन करना, एवं-कान्दा ( प्याज ), लसुण तथा कन्दमूलको

नहीं खाना तथा बिना खसी किये व बिना नाक बींधे हुए बैलोंसे त्रस जीवोंकी जिसमें हिंसा न हो ऐसे व्यापारके द्वारा आजीविका चलाना धर्म है इत्यादि। विशेष जाननेके लिये देखें—भगवतीसूत्र श० १५ तथा श० ८ उ० ५।

( १२ ) तेरासिय ( पृ. ११० )

[ अ ] टीकाकारने आजीविक सम्प्रदायकोही तेरासिय-त्रैराशिक माना है, रोहगुप्तसे प्रचलित 'त्रैराशिक' सम्प्रादायका इन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

[ ब ] वीर निर्वाण ५४४ में रोहगुप्तसे त्रैराशिक मतकी स्थापना हुई। उसने अंतरंजिका नगरीमें 'पोट्टशाल' नामक एक परिव्राजकके साथ विवाद किया, जिस समय परिव्राजकने जीव और अजीव इस प्रकार संसारमें दोही राशि हैं ऐसा पूर्वपक्ष रक्खा। उस समय श्रीगुप्तके शिष्य रोहगुप्तने कहा—नहीं, तीन राशि हैं, जैसे-जीव, अजीव, नोजीव है, शुभ, अशुभ, शुभाशुभ है आदि। परिव्राजकको वाग्बल और विद्याबलसे जीतकर रोहगुप्त जब गुरुके पास आया और गुरुको सब हाल कह सुनाया तब गुरु बोले कि रोहगुप्त तुमने तीन राशिकी स्थापना की यह शास्त्रविरुद्ध है, अतः इसका सभामें जाकर पीछा स्पष्टीकरण करो। रोहगुप्तने इसको नहीं सुना। गुरुजीने ६ मासतक राजाके समक्ष शास्त्रार्थ करके आखिर रोहगुप्तको पराजित किया। उसने भी अपना हठ न छोडकर 'त्रैराशिक' मतकी स्थापना की। विशेषावश्यकमें इसको 'षडलूक' और 'वैशेषिक' दर्शनके नामसे भी कहा है। यह द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, ऐसे ६ पदार्थोंको मानता है—देखें—विशेषावश्यक भाष्य या आवश्यककी बृहद्वृत्ति।

---

१ आजीवियोवासगा अरिहंत देवतागा, अम्मा-पिउ सुस्सूसगा, पंच फलपडिक्कंता, तंजहा—उंबरेहिं, वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खूहिं, पलंडु-ल्हसुणकंदमूलविवज्जगा, अणिलंछिएहिं अणक्कभिन्नेहिं गोणेहिं तसपाणविवज्जिएहिं वित्तेहिं वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति भग० श० ८ उ० ५ सू० १०।

## द्वितीयं परिशिष्टम् ।

# समवायाङ्गस्थो द्वादशाङ्ग्याः परिचयः ।



सं० सू० ८६–से किं तं आयारे ? आयारे णं...आयारगोयरविणयवेणइयट्ठाणगमणचंकमणपमाणजोगजुंजणभासासमितिगुत्तीसेज्जोवहिभत्तपाणउग्गमउप्पायणएसणाविसोहिसुद्धासुद्धग्गहणवयणियमतवोवहाणसुप्पसत्थमाहिज्जइ, से समासओ (जाव) विरियायारे, आयारस्स णं (जाव) संखेज्जा अणु० संखेज्जाओ पडि० संखेज्जा वेढा संखेज्जा सि० संखेज्जाओ नि० (जाव) अट्ठारस पदसहस्साइं (जाव) सासया कडा निबद्धा निकाइया (जाव) पण्णविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से त्तं आयारे ॥ सूत्र १३६ ॥

सं० सू० ८७–से किं तं सूअगडे ? सूअगडे णं ससमया सूइज्जंति (जाव) जीवाजीवा सूइज्जंति लोगो सूइज्जति (जाव) लोगालोगो सूइज्जंति, सूअगडे णं जीवाजीवपुण्णपावासवसंवरनिज्जरणबंधमोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति, समणाणं अचिरकालपव्वइयाणं कुसमयमोहमोहमइमोहियाणं संदेहजायसहजबुद्धिपरिणामसंसइयाणं पावकरमलिनमइगुणविसोहणत्थं असीअस्स किरियावाइयसयस्स (जाव) तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जति णाणादिट्ठंतवयणणिस्सारं सुट्ठु दरिसयंता विविहवित्थराणुगमपरमसब्भावगुणविसिट्ठा मोक्खपहोयारगा उदारा अण्णाणतमंधकारदुग्गेसु दीवभूआ सोवाणा चेव सिद्धिसुगइगिहुत्तमस्स णिक्खोभनिप्पकंपा सुत्तत्था, सूयगडस्स णं परित्ता (जाव) पयग्गेणं प० संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता (जाव) एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, से त्तं सूअगडे ॥ सूत्र १३७ ॥

सं० सू० ८८–से किं तं ठाणे ? ठाणे णं ससमया ठाविज्जंति (जाव) लोगालोगा ठाविज्जंति, ठाणे णं दव्वगुणखेत्तकालपज्जवपयत्थाणं–

'सेला सलिला य समुद्दा सुरभवण विमाण आगर णदीओ ।
णिहिओ पुरिसज्जाया सरा य गोत्ता य जोइसंचाला ॥ १ ॥

एक्कविहवत्तव्वयं दुविह (जाव) दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जंति, ठाणस्स णं परित्ता वायणा (जाव) संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा एक्कवीसं उद्देसणकाला बावत्तरिं पयस हस्साइं पयग्गेणं प० (जाव) से त्तं ठाणे ॥ सूत्र १३८ ॥

न० सू० ४९–से किं त समवाए? समवाए ण ससमया ( जाव ) लोगालोगा सूइज्जति, समवाएण एकाइयाण एगट्ठाणं एगुत्तरियपरिवुड्ढीए दुवालसगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ ठाणगसयस्स बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समोयारे आहिज्जति, तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेण अवरे वि अ बहुविहा विसेसा नरगतिरियमणुअसुरगणाणं आहारुस्सासलेसा-आवाससंखआययप्पमाणउववायचवणउग्गहणोवहिवेयणविहाण-उवओगजोगइंदियकसायविविहा य जीवजोणी विक्खभुस्सेह-परिरयप्पमाणं विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं कुलगरतित्थगरगणहराण सम्मत्तभरहाहिवाण चक्कीणं चेव चक्कहरहलहराण य वासाण य निगमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति, समवायस्स ण परित्ता वायणा जाव से ण अगट्ठयाए चउत्थे अगे एगे अज्झयणे एगे सुयक्खधे एगे उद्देसणकाले एगे चउयाले पदसहस्से पदग्गेण प० सखेज्जाणि अक्खराणि जाव चरणकरणपरूवणया आघविज्जति, स त्त समवाए ॥ सूत्र ११९ ॥

न० सू० ५०–से किं त वियाहे? वियाहे ण ससमया ( जाव ) जीवाजीवा विआहिज्जति (जाव) लोगालोगे विआहिज्जति, वियाहे णं नाणाविहसुरनरिंदरायरिसिविविहससइअपुच्छियाण जिणणं वित्थरेण भासियाणं दव्व-गुणखेत्तकालपज्जवपदेसपरिणामजहच्छिअट्ठियभावअणुगमनिक्खेव-णयप्पमाणसुनिउणोवक्कमविविहप्पकारपगडपयासियाण लोगालोगपयासियाण संसारसमुद्दरुंदउत्तरणसमत्थाण सुरवइसंपूजियाण भवियजणपयहिययाभिनंदियाण तमरयविद्धंसणाणं सुदिट्ठदीवभूयईहामतिबुद्धिवद्धणाण छत्तीससहस्समणूणयाण वागरणाण दसणाओ सुयत्थबहुविहप्पगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था, वियाहस्स ण परित्ता वायणा ( जाव ) निज्जुत्तीओ, से ण अगट्ठयाए पचमे अगे एगे सुयक्खधे एगे साइरेगे अज्झयणसते दस उद्देसगसहस्साइ दस समुद्देसगसहस्साइ छत्तीस वागरणसहस्साइ चउरासीई पयसहस्साइ पयग्गेण पण्णत्ता ( जाव ) से त्त वियाहे ॥ सूत्र १२० ॥

न० सू० ५१–से किं त णायाधम्मकहाओ? णायाधम्मकहासु ण (जाव) अनकिरियाओ २१ पआघविज्जति जाव नायाधम्मकहासु णं पव्वइयाण विणयकरणजिण-सामिसासणवरे संजमपइण्णपालणधिइमइववसायदुब्बलाण १ तवनियमतवोवहाणरणदुद्धरभरभग्गयाणिस्सहयाणिसिट्ठाणं २ घोरपरिसहपराजियाणं सहपारद्धरुद्धसिद्धालयमग्गनिग्गयाण ३ विसयसुहतुच्छआसावसदोसमुच्छियाणं ४ विराहियचरित्तनाणदंसणजइगुणविविहप्पयारनिस्सारसुन्नयाण ५ संसारअपारदुक्खदुग्गइभयविविहपरपरापवचा ६ धीराण य जियपरिसहकसायसेण्णधिइध-

णियसंजमउच्छाहनिच्छियाणं ७ आराहियनाणदंसणचरित्तजोग-निस्सल्लसुद्धसिद्धालयमग्गमभिमुहाणं सुरभवणविमाणसुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण चिरं च भोगभोगाणि ताणि दिव्वाणि महरिहाणि ततो य कालक्कमचुयाण जह य पुणो लद्धसिद्धिमग्गाणं अंतकिरिया चलियाण य सदेवमाणुस्सधीरकरणकारणाणि बोधणअणुसासणाणि गुणदोसदरिसणाणि दिट्ठंते पच्चये य सोऊण लोगमुणिणो जहट्ठियसासणम्मि जरमरणनासणकरे आराहिअसंजमा य सुरलोगपडिनियत्ता ओवेन्ति जह सासयं सिवं सव्वदुक्खमोक्खं, एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण य, णायाधम्मकहासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे दो सुअक्खंधा एगुणवीसं अज्झयणा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–चरित्ता य कप्पिया य, दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए ( जाव ) अद्धुट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवतीति मक्खायाओ, एगुणतीसं उद्देसणकाला एगुणतीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेण पण्णत्ता ( जाव ) से त्तं णायाधम्मकहाओ ॥ सूत्र १४१ ॥

स॰ सू॰ ५२–से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासु णं उवासयाणं ( जाव ) इहलोइयपरलोइयइड्ढिविसेसा उवासयाणं सीलव्वयवेरमणगुणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ ( जाव ) आघविज्जति, उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा वित्थरधम्मसवणाणि बोहिलाभ अभिगम सम्मत्त विसुद्धया थिरत्तं मूलगुणउत्तरगुणाइयारा ठिईविसेसा य बहुविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहणपालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य तवा य विचित्ता सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासा अपच्छिममारणंतिया य संलेहणझोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेअइत्ता उववण्णा कप्पवरविमाणुत्तमेसु जह अणुभवंति सुरवरविमाणवरपोंडरीएसु सोक्खाइं अणोवमाइं कमेण भुत्तूण उत्तमाइं तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं तमरयोघविप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं, एते अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण य, उवासयदसासु णं परित्ता वायणा ( जाव ) एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जति, से त्तं उवासगदसाओ ॥ सूत्र १४२ ॥

नं॰ सू॰ ५३–से किं तं अंतगडदसाओ ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं ( जाव ) पडिमाओ बहुविहाओ खमा अज्जवं मद्दवं च सोअं च सच्चसहियं सत्तरसविहो य संजमो उत्तमं च बंभं आकिंचणया तवो चियाओ समिइगुत्तीओ चेव तह अप्पमायजोगो सज्झायज्झाणेण य उत्तमाणं दोण्हंपि लक्खणाइं पत्ताण य संजमुत्तमं जियपरीसहाणं

चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पायोवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुनिवरो तमरयोघविप्पमुक्को मोक्खसुहमणंतरं च पत्ता एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थारेणं परूवेई, अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, जाव से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा सत्त वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसहस्साइं (जाव) से त्तं अंतगडदसाओ ॥ सूत्र १४३ ॥

नं० सू० ५४–से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोगपरलोगइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागो पडिमाओ संलेहणाओ भत्तपाणपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाया पुणो बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति, अणुत्तरोववाइयदसासु णं तित्थकरसमोसरणाइं परमंगल्लजगहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं चेव समणगणपवरगंधहत्थीणं थिरजसाणं परिसहसेण्णरिउबलपमद्दणाणं तवदित्तचरित्तणाणसम्मत्तसारविविहप्पगारवित्थरपसत्थगुणसंजुयाणं अणगारमहरिसीणं अणगारगुणाण वण्णओ, उत्तमवरतवविसिट्ठणाणजोगजुत्ताणं जह य जगहियं भगवओ जारिसा इड्ढिविसेसा देवासुरमाणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीवं जह य उवासंति जिणवरं जह य परिकहंति धम्मं लोगगुरू अमरनरसुरगणाणं सोऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्मविसयविरत्ता नरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाणदंसणचरित्तजोगा जिणवयणमणुगयमहियं भासित्ता जिणवराण हिययेणमणुण्णेत्ता जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तमज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अंतकिरियं एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण, अणुत्तरोववाइयदसासु णं (जाव) एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा तिन्नि वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं (जाव) से त्तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ सूत्र १४४ ॥

नं० सू० ५५–से किं तं पण्हावागरणाणि? पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं (जाव) विज्जाइसया नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति, पण्हावागरणदसासु णं ससमयपरसमयपण्णवयपत्तेयबुद्धविविहत्थ-

मासामासियाणं अइसयगुणउवसमणाणप्पगारआयरियभासियाणं वित्थरेणं वीरमहेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं अद्दागंगुट्ठबाहुअसिमणिखोमआइच्चभासियाणं विविहमहापसिणविज्जामणपसिणविज्जादेवयपयोगपहाणगुणप्पगासियाणं सब्भूयदुगुणप्पभावनरगणमइविम्हयकराणं अईसयमईयकालसमयदमसमतित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं दुरहिगमदुरवगाहस्स सव्वसव्वन्नुसम्मअस्स अबुहजणविबोहणकरस्स पच्चक्खयपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति, पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा (जाव) एगे सुयक्खंधे पणयालीसं उद्देसणकाला पणयालीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाणि पयसहस्साणि (जाव) से तं पण्हावागरणाइं ॥ सूत्र १४५ ॥

न० सू० ५६–से किं तं विवागसुयं? विवागसुए णं (जाव) से समासओ दुविहे प० तं०– दुहविवागे चेव सुहविवागे चेव (जाव) से किं तं दुहविवागाणि? दुहविवागेसु णं (जाव) धम्मकहाओ नगर( नरग )गमणाइं संसारपबंधे दुहपरंपराओ (जाव) से किं तं सुहविवागाणि? सुहविवागेसु सुहविवागाणं (जाव) दुहविवागेसु णं पाणाइवायअलियवयणचोरिक्ककरणपरदारमेहुणससंगयाए महतिव्वकसायइंदियप्पमायपावप्पओयअसुहज्झवसाणसंचियाणं कम्माणं पावगाणं पावअणुभागफलविवागा णिरयगतितिरिक्खजोणिबहुविहवसणसयपरंपरापबद्धाणं मणुयत्तेवि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होन्ति फलविवागा वहवसणविणासनासाकन्नुट्ठंगुट्ठकरचरणनहच्छेयणजिब्भच्छेअणअंजणकडग्गिदाहगयचलणमलणफालणउल्लंबणसूललयालउडलट्ठिभंजणतउसीसगतत्ततेल्लकलकलअहि—सिंचणकुंभिपागकंपणथिरबंधणवेहवज्झकत्तणपतिभयकरकरपल्लीवणादिदारु—णाणि दुक्खाणि अणोवमाणि बहुविविहपरंपराणुबद्धा ण मुच्चंति पावकम्मवल्लीए, अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो तवेण धिइधणियबद्धकच्छेण सोहणं तस्स वा वि हुज्जा, एत्तो य सुहविवागेसु णं सीलसंजमणियमगुणतवोवहाणेसु साहूसु सुविहिएसु अणुकंपासयप्पओगतिकालमइविसुद्धभत्तपाणाइं पययमणसा हियसुहनीसेसतिव्वपरिणामनिच्छियमई पयच्छिऊणं पयोगसुद्धाइं जह य निव्वत्तेति उ बोहिलाभं जह य परित्तीकरेंति नरनरयतिरियसुरगमणविपुलपरियट्टअरतिभयविसायसोगमिच्छत्तसेलसंकडं अन्नाणतमंधकारचिक्खिल्लसुदुत्तारं जरमरणजोणिसंखुभियचक्कवालं सोलसकसायसावयपयंडचंडं अणाइअं अणवदग्गं संसारसागरमिणं जह य णिबंधंति आउगं सुरगणेसु जह य अणुभवंति सुरगणविमाणसोक्खाणि अणोवमाणि ततो य कालंतरे चुआणं इहेव नरलोगमागयाणं आउवपुपुण्णरूवजातिकुलजम्मआरोग्गबुद्धिमेहाविसेसा मित्तजणसयणधणधण्णविभवसमिद्धसारसमुदयविसेसा बहुविहकामभोगुब्भवाण सोक्खाण सुहविवागोत्तमेसु अणुवरयपरंपराणुबद्धा असुभाणं सुभाणं चेव कम्माणं भासिआ बहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकारणत्था अन्ने वि य एवमाइया बहु-

विह वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जति, विवागसुअस्स णं परित्ता वायणा ( जाव ) एक्कारसमे अंगे वीस अज्झयणा ( जाव ) पयसयसहस्साइं पयग्गेणं प० ( जाव ) से त्त विवागसुए ॥ सूत्र १७६ ॥

न० सू० ५७—से किं त दिट्ठिवाए ! दिट्ठिवाए णं सव्व० से समासओ पंचविहे प. तं. ( जाव ) ओगाहणसे० उवसंपज्जसे० चुआचुअसे० से किं तं सिद्धसे० ! २ सिद्धसेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पं०त **माउयापयाणि** एगट्ठिय० **पादोट्ठ० आगास०** केउभूयं रासिबद्ध (जाव) **सिद्धबद्धं**, से त्त सिद्ध० से किं त मणुस्ससेणिया० ताइं चेव **माउआपयाणि** ( जाव ) नंदावत्त **मणुस्सबद्धं**, से त्त मणुस्स० **अवसेसा परिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पण्णत्ताइं**, इच्चेयाइं सत्तपरिकम्माइं ससमइयाइं **सत्तआजीवियाइं** छ चउक्कणइयाइं सत्ततेरासियाइं **एवामेव सपुव्वावरेणं सत्तपरिकम्माइं तेसीति भवंतीति मक्खायाइं**, से त्त परि० से किं त सुत्ताइं ! सुत्ताइं **अट्ठासीति भवंतीति मक्खायाइं**, त ...से त्त सुत्ताइं ४ **विप्पजहयं** ( विनय चरित ) ५ **समाणं** १० अहाच्चयं ११ **सोवत्थि** (वत्त य) १ **पणाम** (इन भेदोंके सिवाय समवायांगमें शेष सूत्रके भेद नन्दीसूत्रवत् हैं ) से किं त पुव्वगयं ! पुव्वगयं चउद्दसविहे पण्णत्ते, त. २ अग्गेणीय, ( शेष १३ पूर्वोंके नाम नन्दीवत् हैं, पूर्वोंकी चूलिकाके अधिकारमें ' अग्गणीय पुव्वस्स ण ' आदिके स्थानपर समवायांगमें **अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स**, वीरियपवायस्स ण पुव्वस्स, ऐसे सर्वत्र दोनों पद स्वतंत्र षष्ठी विभक्त्यन्त मिलते हैं, बाकी पाठ समान हैं।) अनुयोगके वर्णनमें नन्दीसूत्रकी अपेक्षा समवायांगमें कुछ पाठ न्यूनाधिक है।

जैसे:—

| नन्दी | समवायांग |
|---|---|
| मूल पढमाणुओगे ण | एत्थ ण |
| देवगमणाणि | देवलोगगमणाणि |
| रायवरसिरीओ | रायवरसिरीओ सीयाओ |
| तवा य उग्गा | तवा य भत्ता |
| केवलनाणुप्पयाओ | केवलनाणुप्पाया अ |
| तित्थपवत्तनाणि [illegible] सीसा | —पवत्तनाणिय सघयणं संठाणं उच्चत्त आउं वन्नविभागो सीसा |
| अज्जपवत्तिणीओ | अज्जापवत्तणीओ |
| जं च परिमाण | जं वा विपरि० |
| अणुत्तर गइय उत्तर वेउव्विणो य मुणिनो | अणुत्तरगई य |
| सिद्धा, सिद्धिपहो जहदेसिओ जच्चिरं च काल पाओ० | सिद्धा, पाओवगया |

| | |
|---|---|
| भत्ताइ अणसणाए | भत्ताई |
| तिमिरओघविप्पमुक्के मुक्खसुहमणु | तमरओघविप्पमुक्का सिद्धिपहमणु |
| पत्ते एवमन्ने य | पत्ता, ए ए अन्ने य |
| कहिया, से त्त— | कहिआ आघविज्जति पण्ण परू से त्त |
| गंडियाणुओगे ? २ कुलगर० | गंडियाणुओगे ? अणेगविहे प, त कुलगर० |
| चक्कवट्टिगंडियाओ | चक्कहरगंडियाओ |
| ०निरयगइगमणविविहपरियट्टणसु | ०निरियगइगमणविविहपरियट्टणाणुओगे, |
| पण्णविज्जति से त्त– | पण्णविज्जति पन्नविज्जति से त्त |
| से त्त अणुओगे | ० |
| —चूलियाओ २ आइ० | —चूलियाओ ? जण्ण आइ० |
| संखिज्जा अणुओगद्दारा संखिज्जा वेढा | संखिज्जा अणुओगद्दारा |
| संखेज्जाइ पयसहस्साइ पयग्गेण, | संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेण प० |
| सव्वभावपरूवणा | सव्वभावपरूवणया |
| आघविज्जइ | आघविज्जति |
| परिकम्मे | परिकम्मे |
| ओगाढसेणिया | ओगाहणसेणिया |
| उवसपज्जणसेणिया | उवसपज्जसेणिया |
| विप्पजहणसेणिया | विप्पजणसेणिया |
| सिद्धावत्त | सिद्धबद्ध |
| माउयापयाई | ताइ चेव माउयापयाणि |
| मणुस्सावत्त | मणुस्सबद्ध |
| | अवसेसा परिकम्माई पुट्ठाइयाई एक्कारसविहाई पण्णत्ताइ |
| | एवामेव सपुव्वावरेण सत्तपरिकम्माइ तेसीति भवतीति मक्खायाई |
| | अट्ठासीति भवतीति मक्खायाइ |
| | विप्पजहय |
| | समाणं |
| | अहाक्खय |
| | सोवत्थि |
| | पणाम |
| | अग्गेणीय |
| | अग्गेणीयस्स ण पुव्वस्स |

( शेष पाठ दोनोंमें समान हैं )

# तृतीय परिशिष्टम् ।

## नन्दीसूत्रेणसह शास्त्रान्तरपाठानां साम्यम्

न सू गा ५१–सेलघणकुडग चालिणी ( पूर्ण ) बृहत्कल्पसूत्र पीठिकाभाष्य गा ११४,
आ नि गा १३९

" " ५२–खीरमिव राय हसा जे घोट्टंति उ गुणे गुण समिद्धा दोसेवि य छड्डुता
बृ पी भा गा १६६

" " ५३–जे होंति पगय मुद्दा मिगछावगसीह कुक्कुरग॰ रयणमिव असठविया
बृ पी भा गा ३६७

" " ५४–नय कत्थइ निम्मातो नय पुच्छइ परि दोसेण, वत्थीव॰ बृ पी भा गा ३७१

" सू १ ( प्र ) कतिविहे...गोयमा ! पचविहेणाणे प त–आभिणिबोहियणाणे
सुय ( पूर्ण ) भग श ८ उ. २ सू ३७
" राय सू १६५

" " २ दुविहे णाणे पण्णत्ते त पच्चक्खे चेव परोक्खे चेव १,
स्थानाग स्था २ उ १ सू ७१

" " ३ पच्चक्खे दुविहे प त इदिय पच्चक्खेअ णोइदिअपच्चक्खेअ अनु
जीवगुण प्र सू १४४

" " ४ से किं त इदिअपच्चक्खे ? पचविहे प॰ त॰ सो इदियपच्चक्खे चक्खु
रिंदिय प घाणिंदिअ

" " ५ जिब्भिदिय फासिंदिअ से त इदिय । से किं त णो इदिय ? २ तिविहे
प॰ त॰ ( पूर्ण ) अनु जी सू १४४

" " ६ ओहिणाणे दुविहे प॰ त॰–भवपच्चइए चेव खओवसमिए चेव १३,
" स्थानां स्था २ उ १ सू ७१

" " " ओहिणाण भवपच्चइय खओवसमिय, राय सू १६५

" " ७ दोण्ह भवपच्चइए प॰त॰ देवाण चेव नेरइयाण चेव १४, स्थानां स्था २
उ १ सू ७१
पन्नवणा ३३ वाँ पद

" " ८ दोण्ह खओवसमिए प॰त॰–मणुस्साण चेव पचिंदियतिरिक्खजोणियाण चेव १५
स्था स्था. २ उ १ सू ७१

" " ९ रायपसेणइय सू॰ १६५, पन्नवणा पद ३३ वाँ स्था स्था ६ उ सू

" गा ५५–जावइया तिसमया–हारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स. आव नि गा ३०

" " ५६–सव्वबहु अगणिजीवा, निरतर जत्तिय भरिज्जसु । . " " " ३१

" " ५७–अगुलमावलियाण, भागमसखिज्ज दोसु सखिज्जा । . " " " ३२

" " ५८–हत्थमि मुहुत्तन्तो, दिवसतो गाउयमि बोद्धव्वो ।... " " " ३३

नं. सू. गा. ५९–मरहंमि अद्धमासो, जंबूदीवंमि साहिओ मासो ।... आव. नि. गा. ३४

" " ६०–संखिज्जंमि उकाले, दीवसमुद्दावि हुंति संखिज्जा ।... " " " ३५

" " ६१–काले चउण्हवुड्ढी, कालो भइयव्वु खित्तवुड्ढीए ।... " " " ३६

" " ६२–सुहुमोय होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं ।... " " " ३७

" " १६–से समासओ चउव्विहे पन्नत्ते तंजहा–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, । दव्वओ णं ओहिनाणी रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, जाव भावओ भ. श. ८ उ. २ सू. १०४

" " " ६४–णेरइयदेवतित्थंकरा य......आ. नि. गा. ६६

" " " १८–मणपज्जवणाणे दुविहे प० तं०–उज्जुमति चेव विउलमति चेव १६, स्था. स्था २ उ. १ सू. ७१.

" " " " " " रायपसेणइय सू. १६५

" " " –से समासओ चउव्विहे प० तं०–दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, । दव्वओ णं उज्जुमती अणंते अणंतपदेसिए, जाव भावओ। भग. श. ८ उ २ सू. १०५

" " गा ६५–मणपज्जवणाणं पुण, जणमणपरिचिन्तियत्थपागडण ।...... आ. नि. गा ७६

" " सू १९–केवलणाणे दुविहे प० तं०–भवत्थ केवलणाणे चेव सिद्धकेवलणाणे चेव ३ भवत्थ केवलणाणे दुविहे प० तं०–सजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव अजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव ४ सजोगिभवत्थ केवलणाणे दुविहे प० तं० पढमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव अपढमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव ५ अहवा चरिम समयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव अचरिमसमयसजोगिभवत्थ केवलणाणे चेव ६ एवं अजोगिभवत्थ केवलणाणेऽवि० ७।८। स्था. स्था. २ उ. १ सू. ७१

" " " २०–सिद्धकेवलणाणे दुविहे प० तं०–अणंतरसिद्ध केवलणाणे चेव परंपरसिद्ध केवलणाणे चेव ९। स्था. स्था. २ उ. १ सू ७१

" " " २१–इत्थी पुरिससिद्धा य तहेव य नपुंसगा। सलिंगे अन्नलिंगे य गिहिलिंगे तहेव य. उ. सू अ. ३६ गा. ५०

" " " २१–अणंतरसिद्ध असंसारसमावण्ण पण्णरसविहा प० तं० तित्थसिद्धा अतित्थसिद्धा(जाव) अणेगसिद्धा. पन्न. प १ सू. ७

" " " २२–से किं तं परंपरसिद्ध अणेगविहा प० तं० अपढमसमयसिद्धा ( जाव ) अणंतसमयसिद्धा, सेत्तं० पन्न. प. १ सू. ८

" " " " –से समासओ चउव्विहे प० तं०–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, । दव्वओ णं केवल नाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ। एवं जाव भावओ. भग श. ८ उ. २ सू. १०६

नं. सू. गा. ६६–अह सव्वदव्वपरिमाण–भावविण्णत्तिकारणमणंतं । ...... आव. नि. गा ७७
,, ,, ,, ६७–केवलणाणेणत्थे णाउं, जे तत्थ पण्णवणजोगे ।......... ,, ,, ,, ७८
,, ,, सू. २४–परोक्खणाणे दुविहे प० त० आभिणिबोहियणाणे चेव सुयनाणे चेव १७
ठाणा ठाणा २ उ १ सू. ७१
,, ,, ,, २६–आभिणिबोहियणाणे दुविहे प० त०–सुयनिस्सिए चेव असुयनिस्सिए चेव १८
ठाणा ठाणा २ उ १ सू ७१
,, ,, गा ६८–उप्पत्तिया वेणइया, कम्मिया परिणामिया ।... ..आ नि म गा ९३८
,, ,, ,, ६९ से ८१ तक–पुव्वमदिट्ठ–इत्यादि ६९ गाथासे ८१ गाथातक, आ नि म गा. ९३८ से ९५१
,, ,, सू. २७–आभिणिबोहियणाणे चउव्विहे प०त०–उग्गहो, ईहा अवाओ, धारणा,
भग श ८ उ २ सू १८
,, ,, ,, २८–से किं तं उग्गहे? उग्गहे दुविहे पन्नत्ते त०–अत्थुग्गहे य,– ,, ,, ,, ,, २१
,, ,, ,, २९ से ३४–एवं जहेव आभिणिबोहियनाणं तहेव, नवरं एगट्ठियवज्जं जाव नोइंदियधारणा सेत्तं धारणा भ श ८ उ. २ सू २१
,, ,, ,, ३७–से समासओ चउव्विहे प त. दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ । दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणइ पासति खेत्तओणं आभिणिबोहियनाणी... भ श. ८ उ. २ सू १०२
,, ,, गा ८२–उग्गह ईहाऽवाओय धारणा एव हुंति चत्तारि, ...... . ... आ नि गा २
,, ,, ,, ८३–अत्थाणं ओग्गहणम्मि, उग्गहो तह वियालणे ईहा ....... ,, ,, ,, ३
,, ,, ,, ८४–उग्गह इक्कं समयं ईहावाया मुहुत्त मद्धंतु । काल...... ,, ,, ,, ४
,, ,, ,, ८५–पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु । गंध रस... ,, ,, ,, ५
,, ,, ,, ८६–भासासमसेढीओ सद्दं जं सुणइ मीसयं सुणई ........ ,, ,, ,, ६
,, ,, ,, ८७–ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा । सण्णा ........ ,, ,, ,, १२
,, ,, ,, ८८–उत्तरिय...... ..णिस्सियिय मणुसार ...... ,, ,, ,, २०
,, ,, सू ४१–जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं .....दिट्ठिवाओ अ, (लोकोत्तर भावश्रुत)
अनु सू ४२
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, (लोकोत्तर आगम) ,, ज्ञानप्रमाण
,, ,, ,, ४२–जं इमं अण्णाणिएहिं, ... चत्तारि वेआ संगोवंगा, (लौकिक भावश्रुत)
अनु सू ४१
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, (लौकिक आगम) ज्ञानप्रमाण.
,, ,, ,, ४४–सुयनाणे दुविहे प त–अंगपविट्ठे चेव अंगबाहिरे चेव २१ ठाणा ठाणा सू ७१
,, ,, ,, ,,–अंगबाहिरे दुविहे प तं–आवस्सए चेव आवस्सयवइरित्ते चेव २२
ठाणा ठाणा. २ सू ७१,

म सू गा ४४–आवस्सयवतिरित्ते दुविहे प त–कालिए चेव उक्कालिए चेव ३३,
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, स्था स्था २ सू ७१
,, ,, ,, ४५–दुवालसगे गणिपिडग प त–आयारे दिट्ठिवाए सम सू १३६
,, ,, ,, ४६–से किं त आयारे ? ,, ,, ,,
,, ,, ,, ४७–से किं त सूअगड ? ,, ,, १३७
,, ,, ,, ४८–से किं त ठाणे ? ,, ,, १३८
,, ,, ४९–से किं त समवाए ? सम सू १३९
,, ,, ,, ५०–से किं त विवाहे ? ,, ,, १४०
,, ,, ,, ५१–से किं त णायाधम्मकहाओ ? ,, ,, १४१
,, ,, ५२–से किं त उवासगदसाओ ? ,, ,, १४२
,, ,, ,, ५३–से किं त अतगडदसाओ ? ,, ,, १४३
,, ५४–से किं त अणुत्तरोववाइयदसाओ ? ,, ,, १४४
,, ,, ,, ५५–से किं त पण्हावागरणाणि ? ,, ,, १४५
,, ,, ५६–से किं त विवागसुय ? ,, ,, १४६
,, ५७–से किं त दिट्ठिवाए ? ,, १४८
,, ,, ,, ५८–एत्थण दुवालसगे गणिपिडगे अणता भावा ,, ,, १४८
,, ,, ,, ५९–इच्चेइय दुवालसग गणिपिडग अतीतकाले ,, ,, १४८
,, ,, ५९–से समासओ चउव्विहे पन्नत्त त दव्वओ । दव्वओण सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइ जाणति पासति एव खेत्तओवि कालओवि, भावओण
म श ८ उ २ सू १०३
,, ,, ६३–अक्खरसण्णी सम्म साइय खलु सपज्जवसिअ च । भग श २५ उ ३
सूत्र ६३ आ नि गा १९
,, ,, ,, ६४–आगम सत्थग्गहण ज बुद्धिगुणेहि अट्ठहि दिट्ठ बेंति भग श २५ उ ३
सूत्र ६३
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, आ नि गा २१
,, ,, ,, ६५–सुस्सूसइ पडिपुच्छइ सुणइ गिण्हइय ईहए यावि । भग श २५ उ ३
सूत्र ६३
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, आ नि गा २२
,, ६६–मूअ हुकार वा, बाढक्कार पडिपुच्छ वीमसा । भग श २५ उ ३
सूत्र ६३
,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, आ नि गा २३
,, ,, ६७ सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्ति मीसओ भणिओ भग श २५ उ ३ सू ६३
एस विही भणिअ अणुओगे -- आ नि गा २४

चतुर्थ परिशिष्टम् ।

# श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायोंकी दृष्टिसे ज्ञानकी प्ररूपणा ।

१ श्वेताम्बर दृष्टिमें पांच ज्ञानमें प्राथमिक तीन ज्ञान मिथ्यादृष्टिके लिये मिथ्यारूप होते हैं, अतः पांच ज्ञान और तीन अज्ञान माने गये हैं। लेकिन दिगम्बर इन आठ भेदोंके अलावा मिश्रप्रकृतिके उदयसे होनेवाला एक मिश्रज्ञान मानते हैं, देखें-गोम्मटसार, जीव० गा. ३०१।

२ श्वेताम्बर मतिज्ञानके मूल २८ भेद मानते हैं। प्रथम कर्मग्रन्थमें ३४० भेद भी मतिज्ञानके मिलते हैं, लेकिन दिगम्बर मूल २८ भेदोंकिही बहु, अल्प, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निसृत, अनिसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, और अध्रुव, इन बारह विषयोंके भेदसे गुणन करनेपर ३३६ भेद मानते हैं, देखें-गोम्मटसार गा० ३०९। अश्रुतानिश्रितके चार भेद गोम्मटसारमें नहीं मिलते हैं।

३ सैद्धान्तिक मतसे श्रुतज्ञानके अक्षर, अनक्षर-श्रुत आदि १४ भेद हैं, और कर्मग्रन्थके मतसे पर्यायश्रुत, अक्षरश्रुत आदि २० भेद भी होते हैं, संक्षेपसे अक्षरात्मक श्रुत अङ्गप्रविष्ट और अनङ्गप्रविष्ट (अङ्गबाह्य) ऐसे दो प्रकारका है। अङ्गबाह्यमें दशवैकालिक आदि उत्कालिक और उत्तराध्ययन आदि कालिक शास्त्रोंका समावेश होता है। अङ्गप्रविष्ट आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग आदि बारह प्रकारका हैं। श्वेताम्बरदृष्टिसे उपलब्ध शास्त्रोंमें अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य सब मिलकर ४१ या ४५ आगम पूर्ण प्रामाणिक माने गये हैं। गुरुशिष्यपरम्परासे ये शास्त्र मूल परम्पराको नहीं छोड़कर अविच्छिन्न चले आरहे हैं। वाचनाओंके समय भी मूल भावके संरक्षणका पूर्ण ध्यान रक्खा गया है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायकी तरह दिगम्बर भी श्रुतके अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट ऐसे दो प्रकार मानते हैं। अङ्गबाह्यमें उनकी दृष्टिसे १४ प्रकीर्णक संमिलित हैं, जो इसप्रकार हैं—१ सामायिक, २ संस्तव, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५ विनय, ६ कृतिकर्म, ७ दशवैकालिक, ८ उत्तराध्ययन, ९ कल्पव्यवहार, १० कल्पाकल्प, ११ महाकल्प, १२ पुण्डरीक, १३ महापुण्डरीक और १४ निषीधिका। अङ्गप्रविष्ट आचार, सूत्रकृत आदि बारह भेदयुक्त हैं। तत्त्वसङ्ग्रहमें प्रत्येकके पीछे 'अङ्ग' शब्द जोड़कर आचाराङ्ग आदि नाम लिखे हैं, छट्ठे अङ्गको ज्ञातृधर्मकथा और नाथधर्मकथा भी लिखा है, शेष सब समान है। दिगम्बर उपरोक्त अङ्ग एवं अङ्गबाह्यादि श्रुत दुर्भिक्ष आदि कारणसे विच्छिन्नप्राय

मानते हैं, अतएव वर्तमानमें उपलब्ध आचाराङ्गादि शास्त्र उनकी दृष्टिसे प्रामाणिक नहीं हैं।

४ श्रुतके इन २० भेदोंमें एक पद-श्रुत भी आता है। पदका परिमाण श्वेताम्बर सम्प्रदायमें निश्चितरूपसे नहीं मिलता। कहीं कहीं ५१०८८६ (८४० श्लोकोंका) प्रायः पदपरिमाण लिखा है। द्वादशाङ्गीका पदमान उपरोक्त पदसे करना या अर्थबोधक पदसे इसमें भी मतभेद है। टीकाकारने 'सूत्रालापकपदग्रेण संख्यातान्येव पदसहस्राणि भवन्ति' इन शब्दोंमें सूत्रालापकरूप पदको भी माना है। पदप्रतिपत्ति, अनुयोग, अक्षर, पर्याय, प्राभृत, प्राभृत-प्राभृत, वस्तु और पूर्व, इनको नन्दीसूत्रमें अङ्गोंके अवयवरूपसे कहा है, उ० देखें—आचाराङ्ग व दृष्टिवादका परिचय-सूत्र।

गोम्मटसारमें पदपरिमाणका स्पष्ट उल्लेख है, वहाँ १६३४ क्रोड, ८३ लक्ष, ७ हजार, ८८८ अक्षरोंका एक पद माना है। इसीसे द्वादशाङ्गका पदपरिमाण माना गया है। इसके सिवाय पदके अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद ऐसे तीन भेद हैं। *उपरोक्त मान्यतामें १००० श्लोक करीबका परस्पर दोनों सम्प्रदायोंमें फर्क पडता है।*

अङ्गोंकी पदगणना

| श्वेताम्बर | | दिगाम्बर | |
|---|---|---|---|
| १ | १८००० | १ | १८००० |
| २ | ३६००० | २ | ३६००० |
| ३ | ७२००० | ३ | ४२००० |
| ४ | १७४००० | ४ | १६४००० |
| ५ | २२८००० | ५ | २२८००० |
| ६ | ५७६००० | ६ | ५५६००० |
| ७ | ११५२००० | ७ | ११७०००० |
| ८ | २३४०००० | ८ | २३२८००० |
| ९ | ४६८०००० | ९ | ९२४४००० |
| १० | ९२१६००० | १० | ९३१६००० |
| ११ | १८४३२००० | ११ | १८४०००००० |
| १२ | ८३२६८०००५ (पूर्वस्थ पदसंख्या) | १२ | १०८६८५६००५ |

५ प्रथमके पांच पूर्वोंके सिवाय अन्य पूर्वोंके वस्तु दिगम्बर सम्प्रदायमें विषमरूपसे हैं।

६ दृष्टिवादके परिकर्म, सूत्र, पूर्व, अनुयोग और चूलिका ऐसे पांच प्रकार श्वेताम्बर मानते हैं। परिकर्मके सिद्धश्रेणिका आदि मूल सात प्रकार हैं। सूत्र बाईस प्रकारका है, पूर्व चौदह प्रकारके होते हैं और अनुयोग मूलप्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग ऐसा दो प्रकारका है। चौदहमेंसे सिर्फ चार पूर्वोंपर चूलाएँ हैं।

दिगम्बर भी दृष्टिवादके पांचही प्रकार मानते हैं, लेकिन वे श्वेताम्बरोंसे भिन्न हैं, जैसे-परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत एवं चूलिका। परिकर्मके चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, और व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि भेद वे मानते हैं। सूत्र एकही प्रकारका है, एवं प्रथमानुयोग भी एक प्रकारका है। पूर्वगतके चौदह प्रकार माने गये हैं, जैसे-१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीयं, ३ वीर्यानुप्रवाद, ४ अस्तिनास्तिप्रवाद, ५ ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद, ७ आत्मप्रवाद, ८ कर्मप्रवाद, ९ प्रत्याख्यान, १० विद्यानुप्रवाद, ११ कल्याणानुवाद, १२ प्राणानुवाद, १३ क्रियाविशाल और १४ त्रिलोकबिन्दुसार। दिगम्बर दृष्टिसे चूलिकाएँ पांच तरहकी हैं—१ जलगता, स्थलगता, ३ रूपगता, ४ मायागता और ५ आकाशगता। गोम्मट० जीव० गा. ३६१।

७ श्वेताम्बर अवधिज्ञानके भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक ऐसे दो भेद और गुणप्रत्ययिकके १ अनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ वर्द्धमान, ४ हीयमान, ५ प्रतिपाति और ६ अप्रतिपाति, ऐसे छह प्रकार मानते हैं। उनकी दृष्टिसे परमावधि भी वर्द्धमान अवधिके वर्णनमें आता है।

लेकिन दिगम्बर भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक ऐसे अवधिके दो मुख्य भेद मानकर गुणप्रत्ययिक अवधिके १ देशावधि, २ परमावधि और ३ सर्वावधि ऐसे तीन प्रकार मानते है। अनुगामिक आदि छ प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदायकी तरहही हैं।

८ श्वेताम्बर आम्नायमें मनःपर्ययज्ञान मनुष्योंके मनमें सोचे हुए भाव (अर्थ)को प्रकट करता अर्थात् जानता है। ऋजुमति एवं विपुलमति ये उसके दो भेद हैं। यह ज्ञान ऋद्धिप्राप्त साधुओंकोही होता है ऐसा ये मानते हैं।

लेकिन मनःपर्ययज्ञानसे चिन्तित, अर्द्धचिन्तित एवं अचिन्तित भी मनके विचार जाने जाते हैं ऐसा दिगम्बर मानते हैं। ऋजुमति वर्तमानके मनोगत विचारोंको जानता है और विपुलमति भूत-भविष्यको भी जानता है। मन, वचन, कायकी ऋजुता व सरलतासे प्रत्येकके तीन भेद ऐसे मनःपर्ययके छह भेद वे मानते हैं।

---

# ॥ सूत्रपठनमें अनध्याय ॥

| अनध्याय | समय |
|---|---|
| १ बडा तारापात हो तो | १ प्रहर |
| २ दिशा रक्तवर्णवाली हो तो | जबतक दिशा रक्तवर्ण हो तबतक |
| ३ { अकाल बादलके गर्जनेपर | १ प्रहर |
| „ बिजलीके चमकनेपर | १ „ |
| „ बिजलीके कडकडाट हो तो } | २ „ |
| ४ शुक्लपक्षकी प्रतिपद्, द्वितीया, तृतीया | प्रहर रात्रिपर्यन्त |
| ५ आकाशमें यक्षाकार हो तो | आकार रहनेतक |
| ६ सफेद धूंअर होनेपर | धूंअर रहनेतक |
| ७ कृष्ण धूंअर होनेपर | „ „ |
| ८ धूलिसे आकाशके ढकनेपर | ढका रहे तबतक |
| ९ हड्डीके दिखनेपर | |
| १० मांसके नजदीक होनेपर | |
| ११ रक्तके पास रहनेपर | |
| १२ विष्ठा आदिके नजदीक | |
| १३ श्मशानके पास | |
| १४ चन्द्रग्रहण होनेपर | ८।१२।१६ प्रहरपर्यन्त |
| १५ सूर्यग्रहण होनेपर | „ „ |
| १६ राजा आदि किसी बडे आदमीके मरनेपर | शव-संस्कार होनेतक |
| १७ राजाओंके युद्धस्थानमें | युद्ध रहनेतक |
| १८ उपाश्रयके भीतर पञ्चेन्द्रिय जीव मरा हो तो | रहे तबतक |
| १९ पशुका कलेवर ६० हाथके भीतर हो तो | „ |
| २० मनुष्यका कलेवर १०० हाथके | „ |
| २१ आषाढ शुक्ल पूर्णिमा | पूर्ण दिन रात |
| २२ श्रावण कृष्ण प्रतिपद् | „ |
| २३ भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा | „ |
| २४ अश्विन शुक्ल पूर्णिमा | „ |
| २५ अश्विन कृष्ण प्रतिपद् | „ |
| २६ कार्तिक कृष्ण प्रतिपद् | „ |
| २७ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा | „ |
| २८ मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपद् | „ |
| २९ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा | „ |
| ३० वैशाख कृष्ण प्रतिपद् | „ |
| ३१ सूर्योदयके समय | दो घडीपर्यन्त |
| ३२ सूर्यास्तके समय | „ |
| ३३ मध्याह्नके समय | „ |
| ३४ मध्यरात्रिके समय | „ |

# स्पष्टीकरण और सूचना

(१) हमने नन्दीसूत्रका अनुवाद अधिकांश वृत्तिके आधारसे किया है, अतएव स्थविरावलीके अनुवादमें टीकाकारके मतानुसारही गुरु-शिष्य क्रम रक्खा है। वस्तुतः यह युगप्रधान स्थविरावली है, गुरुशिष्यक्रमवाली नहीं। प्रस्तावनामें इस विषयपर हमने विचार किया है, देखें।

(२) अश्रुतनिश्रित मतिज्ञानकी औत्पत्तिकी आदि ४ बुद्धिओंके कथा-भागमें कहीं २ परिवर्तन भी किया है, जैसे-तिल-रोहकके दृष्टान्तमें चतुर्थ उदाहरण, औत्पत्तिकी बुद्धिका १० वाँ, ११ वाँ और १८ वाँ मधुसिक्थका उदाहरण।

(३) मुद्रित पुस्तकोंमें अधिकांश ' भरहसिल पणिय ' इस गाथाको प्रथम रखकर फिर ' भरहसिल मिंठ' आदि गाथाको दूसरे नम्बरपर रक्खा है, किन्तु यहां दृष्टान्तके क्रमसे ' भरहसिल मिंठ ' इस गाथाको प्रथम रक्खा है।

(४) कुछ उदाहरण अतिशय संक्षिप्त होनेसे अस्पष्ट रहजाते हैं, उनका यहां स्पष्टीकरण किया जाता है।

(अ) वैनयिकी बुद्धिका ११ वाँ १२ वाँ उदाहरण 'रथिक और गणिका'— पाटलीपुत्रमें कोशा नामकी एक वेश्या रहती थी। उसके यहां स्थूलभद्र मुनिने चर्पावास किया। और हावभावसे विचलित न होकर उसको उपदेशसे श्राविका बनावी, जिससे राजनियोगके सिवाय उसनेभी मैथुनके त्याग कर दिये। किसी समय एक रथिकने राजाको प्रसन्नकर कोशाकी मांगनी। की राजाने भी उसके मांगनेपर कोशाको हुकुम दे दिया, किन्तु जब रथिक उसके पास पहुंचा तो यह वारंवार स्थूलभद्र मुनिकी स्तुति करती, परन्तु उसको नहीं चाहती। रथिक अपने विज्ञानसे उसको प्रसन्न करनेके लिये अशोक वनिकामें ले गया, और जमीनपर खडा २ आम्रवृक्षसे आम्रकी लुम्बीको तोडकर अर्धचन्द्रके आकारसे काटली। फिर भी कोशा सन्तुष्ट नहीं हुई और बोली कि शिक्षितको क्या दुष्कर है, देखो-मैं सर्षपकी राशिपर सूईमें पोए हुए कनेरके फूलोंपर नाचती हूं, ऐसा कहके उसने सर्षपराशिपर नृत्य कर दिखाया। रथिक खुलस उसकी बहुत प्रशंसा करने लगा, तब वेश्याने कहा—" आम्रकी लुम्बी तोडना और सर्षपकी ढेरीपर नाचना दुष्कर नहीं, किन्तु प्रमदा-समूहमें रहकर मुनि बना रहना यह दुष्कर है "। इसपर स्थूलभद्र मुनिका वृत्तान्त कह सुनाया जिससे रथिकको भी वैराग्य आया। यह रथिक और गणिकाकी विनयजा बुद्धि हुई।

( व ) पारिणामिकी बुद्धिका प्रथम उदाहरण—

चण्डप्रद्योत राजाको बांधके ले आनेमें अभयकुमारने जो बुद्धिमत्ता उसका विस्तार देखनेके लिये आवश्यककी बृहद्वृत्ति देखें।

( क ) पारिणामिकी बुद्धिका चतुर्थ उदाहरण–देवी।

पुष्पभद्र नगरके पुष्पसेन राजाको १ पुत्र और १ पुत्री ऐसे दो सन्त थी। संयोगवश साथ रहते हुए दोनोंमें वैषयिक प्रेम जग गया और वे परस्पर भोग भोगने लगे। राणी पुष्पवतीको यह देखकर बडी ग्लानी हुई। उसी दिनसे यह संसार छोडकर दीक्षित बन गई। कुछ समयसे संयम–जीवनमें [illegible] पूर्णकर यह देवी बनी और अपने पूर्वजन्मके पुत्रपुत्रिओंका अनुचित सम्बन्ध देखकर सोचने लगी कि ये दोनों विषयमें मूर्छित होकर इसप्रकार रमते हैं इनको नरक आदि दुर्गतिमें उत्पन्न होना पडेगा, मेरा कर्तव्य है कि मैं इनको सन्मार्गपर लाऊं। ऐसा सोचकर देवीने उनको स्वप्नमें नरक गतिके दुःख बता जिससे उन दोनोंको चिन्ता होने लगी कि इन दुःखोंसे कैसे छूटना फिर [illegible] दिन स्वप्नमें देवलोकके सुख दिखाये। प्रातःकाल आचार्यके पास आ दोनोंने नरकगतिसे बचने और देवलोकमें जानेका उपाय पूछा। आचार्य स्वर्गप्राप्तिका मार्ग बताते हुए धर्मका उपदेश दिया, उससे दोनोंने दीक्षा ले दुःखोंसे मुक्ति मिलाली। यह देवीकी पारिणामिकी बुद्धिका उदाहरण है।

सब कथायें बुद्धिओंके उदाहरणरूप हैं, अतः इनपरसे विधिवाद ऐतिहासिक निर्णय करनेका प्रयत्न नहीं करें।

संशोधन—

संशोधनकी पूर्ण सावधानी रखते हुए भी परिस्थितिकी विषमता प्रकाशनकी शीघ्रता तथा पूज्यश्रीका विहारमें होना आदि कारणोंसे कु चूकें रह गई हैं, जिनका इस परिशिष्टसे संशोधन कर लें।

७ वें सूत्रके अन्तमें 'से त्तं भवपच्चइयं' यह पाठ भी मिलता है।

७१ वीं गाथाकी छायामें ज्ञायकके स्थानपर 'नाणक' पढ़ें।

७१ वीं गाथाकी टीकामें 'घृतमाण्ड' के स्थानपर भाण्ड पढ़ें।

पृ. ६७ के १० वें उदाहरणमें—'मण्डन (अकीर्ति)' के स्थानपर 'भाण्ड-चेष्टा करनेवाले पुरुष' पढ़ें।

पृ० ७१ व ७२ में उदाहरणोंकी संख्यामें चूक हुई है, उसको इसप्रका पढ़ें—१८ मधुसित्थ–, १९ मुद्दिय–, २० अंक–, २१ नाणय–, २२ भिक्खु– २ चेडगणिहाणे–, २४ सिक्खा य–, २५ अत्थसत्थे–, २६ इच्छा य महं–, २७ सय सहस्से–, गाथायमें भी यह संशोधन करलेवें। ८० वीं गाथाके अन्तिम पद 'बुद्धीए' के स्थानमें 'बुद्धी'।

## स्पष्टीकरण और सूचना

पृ. १११ के आदिमें 'तेसट्ठाणं'के पहले 'बत्तीसाए वेणइयवाईणं तिण्हं'– ऐसा पढ़ें।

पृ. १४६ में 'आसा–'की जगह 'मासा'।

पृ. १४७ में 'मशिष्यके' स्थान 'मशास्य'।

पृ. १५७ में 'कधाइ' के स्थान 'कयाइ' पढ़ें।

गाथा ९५ वेंमें 'सुस्सुसइ'के स्थान 'सुस्सूसइ' और 'वा धारेइ के स्थान' 'धारेइ' ऐसा पढ़ें।

इसके सिवाय मात्रा, बिन्दु और चिन्हकी चूकसे या विपर्याससे जो अशुद्धियां रह गई हैं, उनको पाठक सावधानीसे पढ़ें और संशोधन करलें। अल विद्वत्सु।

प्रार्थी—

प्रबन्धक—

# श्रीमन्नन्दीसूत्रका शब्दकोश

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| अइय | औत्पत्तिकी बुद्धिका ११ वाँ दृष्टान्त | १६ |
| अईयम् | अतीत-भूतकाल | १८ |
| अकम्मभूमिसु | अकर्मभूमिक्षेत्रोंमें | ० |
| अकिरियराहुमुहदुद्धरिस | अक्रियावादी रूप राहुके मुखसे नहीं पकड़ने योग्य | ९ |
| अकंपिय | अकम्पित नामके ८ वें गणधर | २१ |
| अकिरियावाईण | अक्रियावादियोंका | ० |
| अंक | औत्पत्तिकी बुद्धिका १० वाँ दृष्टान्त | ७२ |
| अक्खरा | अक्षर ( वर्ण ) | ४४।४५ |
| अक्खर | वर्ण ज्ञान | । |
| अक्खय | अक्षत-क्षयरहित | ५७ |
| अक्खरसुय | श्रुतोंका १ भेद अक्षरश्रुत | १८ |
| अक्खरलद्धिस्स | अक्षरलब्धिवालेका | ३९ |
| अक्खोह | क्षोभरहित, | ११ |
| अक्खुभिय समुद्द गंभीर | सागररहित समुद्रकी तरह गंभीर | २९ |
| अखंड चारित्त पागारा | परिपूर्ण चारित्ररूप कोटवाला | ४ |
| अंगुलसेढिमित्ते | अंगुल श्रेणिमात्र क्षेत्रमें | ६२ |
| अंगुल पुहुत्त | अंगुल पृथक्त्व २ से ९ अंगुल प्रमाणवाला | ५७ |
| अगमिय | श्रुतज्ञानका १२ वाँ भेद | ४४ |
| अगए | अगद विनयजा बुद्धिका १० वाँ दृष्टान्त | ७४ |
| अगड | औत्पत्तिकी बुद्धिका ७ वाँ दृष्टांत | ७१ |
| अगणिजीव | वन्हिकायके जीव | ५६ |
| अग्गिभूइ | अग्निभूतिनामके दूसरे गणधर | २१ |
| अग्गिवेस | अग्निवैश्यायन गोत्र विशेष | २५ |
| अंगुल | अंगुल नामका १ प्रमाण | १४।१५।५७ |
| अंगपविट्ठ | श्रुतज्ञानका १३ वाँ भेद | ४४ |
| अंगबाहिर | ,, ,, १४ ,, ,, | ,, |
| अंगचूलिया | अंगचूलिका नामका एक कालिक शास्त्र | ४४ |
| अंगट्ठयाए | अंगकी अपेक्षासे | ,, |
| अंगे | अंगशास्त्र | ,, |
| अंगुट्ठपसिणाइं | अङ्गुष्ठप्रश्न-विद्याविशेष | ५५ |
| अंगुलेहिं | अङ्गुलोंसे | १८ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| अग्घाइज्जा | सूंघे | ३६ |
| अचूलियाइ | विना चूलिकाके पूर्व | ५७ |
| अचरमसमय | अन्तिमसमयसे भिन्नसमयके सिद्ध | ११ |
| अज्ज | आर्य | २३ |
| अज्जजीयधर | आर्यजीतधर नामके स्थविर | २८ |
| अज्जधम्म | आर्यधर्म नामके स्थविर | ३१ |
| अज्जनागहत्थि | आर्यनागहस्ती नामके स्थविर | ३३ |
| अज्जमगु | आर्यमङ्गु | ३० |
| अज्जसमुद्द | आर्यसमुद्र | २९ |
| अज्जपवत्तिणीओ | आर्याओंमें मुख्य | ५७ |
| अज्जावि | आजभी | ३७ |
| अज्जवइर | आर्यवज्र नामके स्थविर | ३१ |
| अजाणिया | अज्ञोंकी सभा | ५० |
| अजोगिभवत्थकेवलनाण | अयोगिभवस्थकेवलज्ञान | ११ |
| अजीवा | अजीव | ४७ |
| अज्झयणा | अध्ययन | ४४ |
| अज्झवसाणट्ठाणेहिं | अध्यवसायस्थानोंसे | ० |
| अजिय | अजितनाथजी दूसरे तीर्थङ्कर | |
| अट्ठ | आठ | ५३ |
| अट्ठमे | आठवाँ | |
| अट्ठपयाइ | अर्थपद नामका परिकर्मका अवान्तर २।१।६ वा भेद | ५७ |
| अट्ठारसेव | अठारहही | ” |
| अट्ठावीसइ विहस्स | अट्ठाईस तरहके | ३६ |
| अट्ठारस | अट्ठारह | ४४ |
| अट्ठासीइ | अट्ठासी | ५० |
| अट्ठुत्तर | अष्टोत्तर एकसौ आठ | ५५ |
| अट्ठहिं | आठसे ( बुद्धिगुण ) | ९४ |
| अड्ढभरहे | अर्द्धभरत दक्षिणभरतमें | ३७ |
| अड्ढभरहप्पहाणे | अर्द्धभरतमें प्रधान | ४४ |
| अड्ढाइज्जेसु | अढाई ( द्वीपसमुद्र ) में | १८ |
| अड्ढाइज्जेहिं | अढाई ( अंगुल ) से | ” |
| अणसणाए | अनशन–आहारत्यागसे | ५७ |
| अणगार | साधु | १ |
| अणाणुगामिय | अनानुगामिक अवधिज्ञानका दूसरा भेद | ९ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| अणागए ( य ) | अनागत—भविष्यकाल | ५७ |
| अणाइय | आदिरहित | ४३ |
| अण्णाणिय वाईण | अज्ञानवादिओंका | ४७ |
| अणत | अनन्तनाथजी १४ वें तीर्थङ्कर | |
| अणते | अनन्त | १६ |
| अणताइ | अनन्त | ११ |
| अणतभाग | अनन्तवाँ भाग | १८ |
| अणतर सिद्ध | एकसमयान्तरसे सिद्ध | २१ |
| अणतपएसिए | अनन्त प्रादेशिक | ४४ |
| अण्णमण्णमणुगयाइ | एक दूसरेसे मिले हुए | २४ |
| अणुओगियवरवसभे | यतिओंको अनुयोगोंमें लगानेवाले | ४४ |
| अणुओगजुगप्पहाणाण | अनुयोगमें युगप्रधान | ४८ |
| अणुदिण्णाण | अनुदीर्ण—उदयमें नहीं आए हुए | ८ |
| अणुओगो ( गे ) | अनुयोग | १७।४१।३२ |
| अणुप्पवायम्मि | अनुप्रवादनामक पूर्व अर्थात् विद्यानुप्रवादपूर्व | ५७ |
| अणुत्तरगई | अनुत्तर—श्रेष्ठ ५ विमानोंकी गतिसे | १ |
| अणुपरियट्टंति | भटकते हैं | " |
| अणुपरियट्टिंसु | भटक चुके | " |
| अणुपरियट्टिस्संति | भटकते रहेंगे | " |
| अणुयोगद्दारा ( इ ) | अनुयोगद्वार सूत्र | ४४ |
| अणिड्ढिपत्त | अनृद्धिप्राप्त अर्थात् लब्धिरहित | १७ |
| अणेगविह | अनेक तरहके | ४४।२२ |
| अणगय | अवधिज्ञानका भेद | १० |
| अंतर दीवग | अन्तर्द्वीपवर्ती | १७ |
| अंतो मणुस्सखित्ते | मनुष्यक्षेत्रके भीतर | १८ |
| अंतर दीवगेसु | अन्तर्द्वीपोंके भीतर | १८ |
| अतीयं | बीताहुआ—भूतकाल | १ |
| अतित्थसिद्धा | अतीर्थसिद्ध अर्थात् १५ सिद्धोंमें दूसरा भेद | २१ |
| अतित्थयर सिद्ध | अतीर्थङ्करसिद्ध | " |
| अंतो मुहुत्तिया ( ए ) | अन्तर्मुहूर्तकी | ३५ |
| अंतकिरियाओ | अन्तक्रिया | ५२ |
| अंतगडाण | अन्तकरनेवालोंका | " |
| अंतगडदसाओ | अन्तकृद्दशाङ्ग आठवाँ अङ्ग | ५३ |
| अंतोमणुस्स खित्ते | मनुष्यक्षेत्रके भीतर | १८ |
| अंतगडे | अन्तकरनेवाले | ५७ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| अत्थाणं ... ... | अर्थोंके ... ... | ६७ |
| अत्थसत्थे ... ... | अर्थशास्त्रविषयक वैनयिकीबुद्धिका २ ॥ दृष्टान्त | ७२ |
| अत्थुग्गहे ... ... | अर्थावग्रह अवग्रहका प्रथमभेद ... | २८ |
| अदिट्ठ ... ... | अदृष्ट-बिना देखा ... ... | ६१ |
| अत्थमहत्थखाणिं ... | अर्थ महार्थोंका खजाना ... | ४७ |
| अद्दाग पसिणाइं ... ... | दर्पणके आभाससे पूछे हुए प्रश्न ... | ५५ |
| अद्धमास ... ... | अर्द्धमास ... ... | ५७ |
| अन्नलिंगसिद्धा ... ... | दूसरे भेषोंसे होनेवाले सिद्ध ... | २१ |
| अनंतसमयसिद्धा ... ... | अनन्तसमयोंमें सिद्ध ... ... | २२ |
| अन्नत्थ ... ... | अन्यत्र-दूसरे स्थानमें ... | ११ |
| अनेगसिद्ध ... ... | एक समयमें एकसे अधिक सिद्ध होनेवाले | २१ |
| अन्ने ... ... | दूसरे ... ... ... | ५० |
| अनिप्फन्ने ... ... | असिद्ध हुए ... ... | ४२ |
| अन्नाणिएहिं ... ... | मिथ्या ज्ञानवालोंसे ... ... | ४२ |
| अन्नेवि ... ... | दूसरे भी ... ... | ३६ |
| अपच्छिमो ... ... | सबसे अन्तिम ... ... | २ |
| अप्पडिचक्कस्स ... ... | प्रतिपक्षरहित ... ... | ५ |
| अपज्जवसिए ... ... | अन्तरहित ... ... | ३८।४३ |
| अपसिणसयं ... ... | सैकड़ों बिना पूछे ... ... | ५५ |
| अप्पसत्थेहिं ... ... | अप्रशस्त ... ... | ३३ |
| अप्पमत्तसंजय ... ... | प्रमादरहित साधु ... ... | १७ |
| अपडिवाइ ( य ) ... | नहीं पड़नेवाले ... ... | ६।१५ |
| अपढम समयसिद्ध ... | दूसरे समयके सिद्ध ... ... | ३६ |
| अपोहए ... ... | निश्चय करता है ... ... | ६५ |
| अपुट्ठं ... ... | विनास्पर्श किए ... ... | ८२ |
| अपोह ... ... | निश्चय करना अनिश्चितको हटाना ... | ८७ |
| अभए ... ... | पारिणामिकी बुद्धिका पहला उदाहरण | ७६ |
| अब्भहियतराए ... ... | अधिक बुद्धिसे ... ... | १८ |
| अब्भहियतरं ... ... | विशेषतासे अधिक ... ... | ,, |
| अब्भहियतरागं ... ... | बहुलतायुक्त ... ... | ,, |
| अभिनिबुज्झइ ... ... | जानता है ... ... | २४ |
| अभिसेसा ... ... | अभिषेक ... ... | ५७ |
| अभासा ... ... | नहीं बोलने योग्य बात ... | ४४ |
| अभिसंधारणपुव्विया ... | पर्यालोचनाके साथ ... ... | ४० |
| अभिन्नदसपुव्विस्स ... | पूरे दश पूर्वोंको जाननेवालोंका ... | ४१ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| अभवसिद्धियस्स | अभवसिद्धिक–मुक्तिके अयोग्य | ४१ |
| अभिनन्दन | वर्तमान अवसर्पिणीके चतुर्थ तीर्थङ्कर | २० |
| अभये | अभय–प्रधान–पारिणामिकी बुद्धिका ९ वाँ उदाहरण | ७९ |
| अभयपुत्ते | अमात्यपुत्र–प्रधानका लड़का–पारिणामिकी बुद्धिका ११ वाँ उदाहरण | ८० |
| अमर | देव | ५७ |
| अम्मापियरो | माता पिता | ५१ |
| अमुक्क | अज्ञाननामक टा | ३६ |
| अमणुस्साण | मनुष्यसे भिन्न | १७ |
| अयलभाया | अचलभ्राता स्थविर | २३ |
| अयलपुर | अचलपुर नामका ग्राम | ३६ |
| अर | १८ वें तीर्थङ्कर | २१ |
| अरिहंतर्हि | अरिहन्तदेवोंसे | ४१ |
| अरहंताण | अर्हन्त देवोंका | ५७ |
| अरइओ | अर्हन्तदेव | ४४ |
| अरुणोववाए | अरुणोपपात ग्रन्थविशेष | |
| अलाय | जलती हुई लकड़ी | १० |
| अलोगस्स | अलोकका | १५ |
| अवसव्वय | वामभागसे | ७५ |
| अविसेसिया | विशेषता रहित | २५ |
| अव्वाहय फलजोगा | निर्बाध फलोंसे युक्त | ६९ |
| अवद्दय | अज्ञात | |
| अवट्ठिए | स्थिर रहनेवाला | ५७ |
| अवए | नाशरहित | |
| अवाओ | अपाय मतिज्ञानका भेद | २७ |
| अवलंबणया | अवलम्बनता ज्ञानका अवान्तरभेद | ३१ |
| अवाए | अपाय | ३३ |
| अवाय | अपायमें | ३६ |
| अव्वत्त | अव्यक्त अस्फट | ३६ |
| अवोही | मतिज्ञानका भेद | ४० |
| अवसप्पिणीओ | अवसर्पिणी कालका भेद | १६ |
| असण्णिसुय | असंज्ञी श्रुत | ३८ |
| असिद्धा | सिद्धोंसे भिन्न | ५७ |
| असुय | अश्रुत | ६९ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| अस्सुय निस्सिय ... ... | अश्रुतके आश्रितरहनेवाला ... | ६८ |
| असंठविय ... ... | अच्छीतरह नहीं रखाहुआ ... | ५३ |
| असंखेज्जाणि ... ... | असंख्येय-संख्यासेबाहर ... | १० |
| असंखिज्जा ... ... | असंख्य ... ... | ६२ |
| असंखिज्जभागं ... ... | असंख्यातवां भाग ... ... | १८ |
| असंखिज्जसमयसिद्धा ... | असंख्यातसमयोंमें सिद्धहोनेवाले ... | २२ |
| असंजम सम्मद्दिट्ठि ... | असंयमी सम्यग्दृष्टि ... ... | १७ |
| अस्से ... ... | वैनयिकी बुद्धिका छट्ठा उदाहरण ... | ६७ |
| असंखिज्जसमय पविट्ठा ... | असंख्यसमयमें प्रविष्ट हुए ... | ३६ |
| असीवस्स ... ... | अस्सीसंख्यावाला ... ... | ० |
| अहवा ... ... | अथवा ... ... | ९ |
| अहे ... ... | नीचे ... ... | १८ |
| अहेउ ... ... | कारणसे हीन ... ... | ५७ |
| | **आ** | |
| आइ तित्थयरस्स ... ... | आदितीर्थङ्कर ... ... | ४४ |
| आइल्लाणं ... ... | आदिवाले ... ... | ५७ |
| आउट्टणया ... ... | आवर्तनता- ... ... | ३३ |
| आउरपच्चक्खाणं ... ... | रोगीका प्रत्याख्यान ... ... | ४४ |
| आभिणिबोहिय नाण ... | आभिनिबोधिकज्ञान ... ... | १ |
| आभीरी ... ... | शुद्र जातिकी स्त्री श्रोताका १४ वाँ उदाहरण | ५१ |
| आणुगामिय ... ... | आनुगामिक श्रुतका भेद ... | ९ |
| आगासपएसं ... ... | आकाशका प्रदेश ... ... | १५ |
| आवलियाए ... ... | पंक्ति-श्रेणिसे ... ... | १६ |
| आयरिया ... ... | आचार्य ... ... | २४ |
| आमंडे ... ... | बनावटी आँवलाका फल पारिणामिकी बुद्धिका १७ वाँ उदाहरण ... | ६१ |
| आभोगणया ... ... | आभोगनता ... ... | ३२ |
| आगच्छंति ... ... | आते हैं ... ... | १७ |
| आसाइज्जा ... ... | आस्वादलेवे ... ... | ३६ |
| आभिणिबोहियनाणी ... | आभिनिबोधिक ज्ञानवाला ... | ३७ |
| आएसेणं ... ... | आदेशसे ... ... | ,, |
| आयारो ... ... | आचाराङ्गसूत्र-प्रथम अङ्ग ... | ४४ |
| आघविज्जंति ... ... | कहे जाते हैं ... ... | ४१ |
| आसीविसभावणाणं ... | सर्पविषयका ज्ञानवाला ग्रन्थ ... | ४४ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| आयविसोही | आत्मविशुद्धि | ४४ |
| आराहित्ता | आराधना करके | ५७ |
| आगरा | आकर-खान | ४८ |
| आगम | सूत्र ग्रन्थ | ९४ |
| आणाए | आज्ञासे | ५७ |
| आया | आत्मा | ४६ |
| आउ | जीवनमर्यादा | ५४ |
| आयारे | आचाराङ्गमें | |
| आविरिज्जा | छूट जाय | ४३ |
| आवस्सय | छह आवश्यक | ४४ |
| आवस्सयवइरित्त | आवश्यकव्यतिरिक्त | |
| आणुपुव्विवायगत्तण | आनुपूर्वीक वक्ता | ४० |
| | **इ** | |
| इंदभूई | इन्द्रभूति एक गणधर | २२ |
| इमो | यह | १७ |
| इव | समान | ५२ |
| इंदिय-पच्चक्ख | इन्द्रियप्रत्यक्ष | ३ |
| इड्ढीपत्त | ऋद्धिमान-लब्धिसम्पन्न | १७ |
| इमस्स | इसके | १८ |
| इत्थीलिंगसिद्ध | स्त्रीलिङ्गसे सिद्धहोनेवाली | ० |
| इत्थी | स्त्री | ७२ |
| इमे | ये सब | ३२ |
| इक्कसमइए | एक समयमें | ३५ |
| इक्क | एक | ८४ |
| इणमेव | यह | ४१ |
| इसिभासिय | ऋषिभाषित | ४४ |
| इहलोइयपरलोइया | इहलोक व परलोक सम्बन्धी | ५१ |
| इड्ढिविसेसा | ऋद्धिविशेष | ५१ |
| इक्कारसमे | ग्यारहवें | ५६ |
| इक्कारसविहे | ग्यारहप्रकारके | ५७ |
| | **ई** | |
| ईहा | ईहा—मतिज्ञानका भेद | ८१ |
| ईहावाया | ईहा अवाय ज्ञानके भेद | ८४ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| ईहएयावि | अथवा ईहा करता है | १५ |

उ

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| उज्जुत्त | उद्यमी प्रयत्नशील | ३३ |
| उर्फं | उसका | १० |
| उक्कोसेण | अधिकतासे | १४ |
| उच्चारे | औत्पत्तिकी बुद्धिका ८ वाँ उदाहरण | ७० |
| उग्गहे | अवग्रह ज्ञान | १७ |
| उग्गहिए | ग्रहण किया हुआ | २६ |
| उग्गहणम्मि | ग्रहणकरनेमें | ८३ |
| उज्जुमई | ऋजुमति | १८ |
| उत्तम | उत्तम | ३६ |
| उदिण्ण | उदयमें आया हुआ | ८ |
| उज्जलपविरायमाणहार | हारकेसमानसरमासे शोभायमान | १५ |
| उड्ढं | ऊपर | १८ |
| उप्पज्जइ | उत्पन्न होता है | १७ |
| उप्पत्तिया | औत्पत्तिकी बुद्धि | ६८ |
| उवरिमहेट्ठिल्ले | ऊपर नीचेके भाग | १८ |
| उवरिमतले | ऊपर का भाग | ,, |
| उदगबिंदू | जलकी बूंद | ३६ |
| उदाहरणा | उदाहरण–दृष्टान्त | ८१ |
| उदिओदए | उदितोदय पारिणामिकी बुद्धिका ५ वाँ उदाहरण | ७६ |
| उवगयं | पाया हुआ | ३६ |
| उवसम | उपशम | ८ |
| उवधारणया | उपधारणता ज्ञानका भेद | ३१ |
| उवओगदिट्ठसारा | उपयोगसे सफल होनेवाली | ७६ |
| उसभ | ऋषभदेव भगवान् प्रथम तीर्थङ्कर | २० |
| उभओलोग फलवई | दोनों लोकमें सफलता देनेवाली | ७३ |
| उस्सप्पिणीओ | उत्सर्पिणी कालभेद | १६ |
| उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं | उत्पन्न हुए ज्ञानदर्शनको धरनेवाले | ४१ |
| उवासगदसाओ | उपासकदशानामका सूत्र | ,, |
| उवदंसिज्जंति | उपदर्शन कराते हैं | ,, |
| उक्कालियं | उत्कालिक सूत्रोंका अवान्तर भेद | ४४ |
| उववाई | औपपातिक सूत्र | ,, |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| उत्तरज्झयणाइं | उत्तराध्ययनसूत्र | ४४ |
| उट्ठाणसुए | उत्थानश्रुत | |
| उप्पत्तियाए | औत्पत्तिकी बुद्धिसे | |
| उववेया | युक्त हुए | |
| उद्देसनकाला | उद्देशनका काल | |
| उद्देसणसहस्साइं | हजारों उद्देशन | ५० |
| उज्जाणाइं | उद्यान–बगीचा | ५१ |
| उवसग्गा | उपसर्ग विघ्नबाधा | ५२ |
| उपासगदसाण | उपासकोंके दश अध्ययनोंका | |
| उवसंपज्जसेणिया | उपसम्पद्–श्रेणिका नामक परिकर्म | ५७ |
| उवसंपज्जणावत्त | उपसम्पादनावर्त परिकर्मका भेद | |
| उग्गा | उग्र भयङ्कर उत्कट | |
| उत्तरवेउव्विणो | उत्तर विकुर्वणावाले | |
| उस्सप्पिणी गंडियाओ | उत्सर्पिणी गण्डिका | |
| उवउत्ते | उपयुक्त–तल्लीन हुआ | |
| उववत्ती | उपपत्ति–प्राप्ति अथवा उत्पत्ति | ५४ |

## ए

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| एग | एक | ११ |
| एगमवि | एकभी | १५ |
| एगसिद्ध | एकसमयमें अकेले सिद्ध होनेवाले | २१ |
| एगविह | एक प्रकारका | ६६ |
| एयाइं | येही | ४२ |
| एवमाई | इसतरहके अन्य भी | |
| एगुत्तरियाए | एक एक वृद्धिसे | ४८ |
| एगवीसं | इक्कीस | " |
| एक्कवीस | | ४६ |
| एगाइयाण | एक आदि | " |
| एगुत्तरियाण | एक उत्तरवाली | ५७ |
| एगट्ठियपयाइं | एकार्थक पद | |
| एगगुण | एक गुण | " |
| एवमन्ने | इसी तरह दूसरे | " |
| एवमाइयाओ | इसतरहके | ६३ |
| एए | ये सब | ६७ |
| एस | यह | |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| एलावच्चसगोत्त ... ... | एलापत्य गोत्रवाले ... ... | २७ |

ओ

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| ओगाहणा ... ... | अवगाहना ... ... | १२ |
| ओगाढावत्तं ... ... | अवगाढावर्त परिकर्मकाभेद ... | ५७ |
| ओगाढसेणिया ... ... | अवगाढश्रेणिका परिकर्मका चौथा भेद | ,, |
| ओसप्पिणीओ ... ... | अवसर्पिणी ... ... | ६२ |
| ओसप्पिणीगंडियाओ ... | अवसर्पिणीगण्डिका ... ... | ८७ |
| ओहसुय ... ... | ओघश्रुत ... ... | ४० |
| ओहिनाण ... ... | अवधिज्ञान ... ... | १० |
| ओहिक्खित्त ... ... | अवधिक्षेत्र ... ... | १२ |
| ओहिस्सऽबाहिरा ... ... | सदा अवधिज्ञानवाले ... ... | ६४ |
| ओगिण्हणया ... ... | अवग्रहणता–मनके विषयमें लाना ... | ३१ |

क

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| कहिया ... ... | कहे गए हैं ... ... | ५७ |
| कम्मावि ... ... | कर्मभी ... ... | ,, |
| कारणा ... ... | कारण–हेतु ... ... | ,, |
| कच्चायण ... ... | कात्यायनगोत्र ... ... | २५ |
| कड ... ... | कियाहुआ ... ... | ४६ |
| कणगसत्तरी ... ... | कनकसप्तति–ग्रन्थविशेष ... | ४२ |
| कप्प ... ... | कल्पसूत्र ... ... | ४४ |
| कप्पवडंसियाओ ... ... | कल्पावतंसिका ... ... | ,, |
| कप्पासियं ... ... | कार्पासिकग्रन्थविशेष ... ... | ४२ |
| कप्परुक्खग ... ... | कल्पवृक्ष ... ... | १६ |
| कंत ... ... | सुन्दर ... ... | १७ |
| कंदरुद्दरिय ... ... | कन्दरामें दर्पयुक्त ... ... | ७ |
| कप्पियाओ ... ... | कल्पिका एक उपाङ्गग्रन्थ ... | ४४ |
| कप्पियाकप्पिय ... ... | कल्पिकाकल्पिक ग्रन्थविशेष ... | ,, |
| कत्थइ ... ... | कहींभी ... ... | ५४ |
| कम्म ... ... | अष्टप्रकृतिका कर्म ... ... | ८ |
| कम्मभूमिसु ... ... | कर्मभूमिओंमें ... ... | १८ |
| कम्मियाए ... ... | कर्मजाबुद्धिसे ... ... | ४४ |
| कम्मपसंग परिघोलणा ... | पुनः पुनः कर्मोंके प्रसङ्गसे ... | ७६ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| कोडिय | कर्मजाबुद्धिका ३ रा उदाहरण | ७७ |
| | ख | |
| खओवसएण | क्षयोपशमसे | ४० |
| खुड्डिआ | छोटा | ४४ |
| खाओवसमिय | क्षायोपशमिक | ४१ |
| खएण | क्षय होनेसे | ८ |
| खमए | परिणामिकी बुद्धिका १० वां उदाहरण | ८० |
| खग्गि | पारिणामिकी बुद्धिका २० वां उदाहरण | ८१ |
| खंदिलायरिए | स्कन्दिलाचार्य स्थविर | ,७ |
| खमिदयाण | क्षमादयाक | ४१ |
| खडाइ | टुकड़े | १६ |
| खित्त | क्षेत्र | ६२ |
| खित्तकाल | क्षेत्रकाल | ६१ |
| खित्तबुड्ढा | क्षेत्रकी वृद्धिसे | |
| खाडहिला | औत्पत्तिकी बुद्धिका १२ वां उदाहरण | ७० |
| खुड्डुग | औत्पत्तिकीबुद्धिका १३ वां उदाहरण | ८१ |
| खध | स्कन्ध | १८ |
| खंभे | औत्पत्तिकी बुद्धिका १२ वां उदाहरण | ७० |
| खार | क्षार | ५२ |
| खासिअ | खांसना-अनक्षरश्रुतका भेद | ८८ |
| खोड | पाटकमुख नामक प्रभाविशेष | ४२ |
| | ग | |
| गए | गएहुए | ११ |
| गय | औत्पत्तिकीबुद्धिका ९ वां उदाहरण | ७० |
| गठा | विनयजाबुद्धिका ९ वां उदाहरण | ७४ |
| गणिए | विनयजाबुद्धिका ४ था उदाहरण | , |
| गच्छिज्जा | जाय | १० |
| गणहर | गणधर | २३ |
| गहियत्था | अर्थग्रहण करनेवाले | ६९ |
| गहियपेयाला | प्रमाणको प्राप्त करनेवाले | २९ |
| गब्भवक्कंतिय | गर्भसे पैदा होनेवाले | १७ |
| गिहिलिंगसिद्धा | गृहस्थके वेषसे सिद्ध होनेवाले | २१ |
| गुणकेसराल | गुणोंसे पूर्ण | ७ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| गुणरयणुज्जल | गुणरूपरत्नसे चमकनेवाले | ७ |
| गुणपडिवन्न | गुणोंसे युक्त | " |
| गुणपच्चइओ | गुणोंसे विश्वासपात्र–प्रख्यात | ६३ |
| गुरुगुणसमिद्ध | विशालगुणसे दीप्तिमान | ५२ |
| गुरु | लोगोंके गुरु | २ |
| गाउयम्मि | प्रमाणविशेष | ५८ |
| गामिल्लिय | ग्रामीण | ५४ |
| गोयम ! | गौतम ! | १७ |
| गोविंदाणंपि | गोविंदनामक स्थविरको | ४१ |
| गोल | औत्पत्तिकीबुद्धिका ११ वां उदाहरण | ६१ |
| गणिया | विनयजाबुद्धिका १२ वां उदाहरण | ६६ |
| गोणे | विनयजाबुद्धिका १५ वां उदाहरण | " |
| गहण | विनयजाबुद्धिका ७ वां उदाहरण | " |
| गहण | ग्रहणकरना या वन | ३६ |
| गहाय | ग्रहणकरके | " |
| गमियं | गमिक श्रुतका भेद | ३८ |
| गणिपिडगं | गणिओंकी आगमरूपपेटी | ४१ |
| गणिय | गणित | ४२ |
| गवेसणया | गवेषणता ईहाके पांचनामोंमें तीसरा | ३२ |
| गवेसणा | गवेषणा आभिनिबोधिकज्ञानकाभेद | ८७ |
| गणिविज्जा | गणिविद्या | ४४ |
| गमा | अर्थज्ञान | ४७ |
| गरुलोववाए | गरुडोपपात कालिकश्रुतकाभेद | ४३ |
| गंडियाणुओगे | गंडिकानुयोग | ८७ |
| गणा | चतुर्विधसंघ | " |
| गणहरा | गणधर | " |
| गणहरगंडियाओ | गणधरगंडिका | " |
| गइ | गति | " |
| गमण | जाना | " |
| गंडियाओ | गंडिका | " |
| गंधं | गन्धको | ३६ |
| गिण्हइ | ग्रहण करता है | ३५ |
| गुण | द्रव्य आदि | ५२ |
| गुहाओ | कन्दराएं | ४८ |
| गंधोत्ति | गन्धसामान्य | ३६ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| | **घ** | |
| घय ... ... | कर्मजाबुद्धिका ६ ठा उदाहरण ... | ६७ |
| घयण ... ... | औत्पत्तिकीबुद्धिका १० वां उदाहरण | |
| घड ... ... | कर्मजाबुद्धिका ११ वां उदाहरण ... | ७७ |
| घोडगमरणं ... ... | विनयजाबुद्धिका १५ वां उदाहरण | ६६ |
| घाणिंदिय ... ... | घ्राणेन्द्रिय ... ... | २९ |
| घुट्टंति ... ... | घोंटे हैं ... ... | ५२ |
| घन ... ... | श्रोताका प्रथम उदाहरण ... | ५१ |
| घोडक ... ... | घोटकमुख ... ... | ४२ |
| | **च** | |
| चउण्ह ... ... | चारोंका ... ... | ६१ |
| चउविहं ... ... | चार प्रकारका ... ... | १६ |
| चउसमयसिद्धा ... | चार समयोंमें सिद्ध होनेवाले ... | २२ |
| चउवीसत्थओ ... ... | चतुर्विंशतिस्तव ... ... | ४४ |
| चउरासीइं ... ... | चौरासी संख्यावालोंका ... | ४४ |
| चउत्थे ... ... | चतुर्थमें ... ... | ४९ |
| चउद्दसविहे ... ... | चौदह प्रकारके ... ... | ५७ |
| चक्खिंदिय ... ... | चक्षुरिन्द्रिय ... ... | ३३ |
| चक्कवट्टिगंडियाओ ... | चक्रवर्ति-गंडिका ... ... | ५७ |
| चरणविही ... ... | चरणविधि ... ... | ४४ |
| चयंति ... ... | त्यागते हैं ... ... | ४२ |
| चंदाविज्झयं ... ... | चन्द्रवेध ग्रन्थविशेष ... ... | ,, |
| चरित्तायारे ... ... | चारित्ररूप आचारमें ... ... | ४४ |
| चरणकरणपरूवणा ... | चरणकरणकी प्ररूपणा ... | ४६ |
| चवणाई ... ... | देवलोकसे च्यवन नाम्नवमें आना | ५७ |
| चलणाहण ... ... | पारिणामिकाबुद्धिका १६ वां उदाहरण | ७२ |
| चरमसमय ... ... | अन्तिमसमय ... ... | ११ |
| चत्तारि ... ... | चार ... ... | ४२ |
| चंदसूराणं ... ... | चन्द्रसूर्यकी ... ... | ४३ |
| चरित्तवओ ... ... | चारित्रवालेका ... ... | ६५ |
| चामीयर मेहलागस्स ... | सुवर्णके कन्दोरावाले ... ... | १२ |
| चालनी ... ... | श्रोताका ३ रा उदाहरण ... | ५१ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| चाणक्क | चाणक्य पारिणामिकी बुद्धिका १२ वां उदाहरण | ७१ |
| चित्तकार | चित्रकार कर्मजा बुद्धिका १२ वां उदाहरण | १० |
| चडुलिय | जलती हुई लकडी | ३२ |
| चिंता | मतिज्ञानका भेद | ५७ |
| चुयाचुय सेणिया | च्युताच्युत-श्रेणिकापरिकर्म | |
| चुयाचुयावत्त | च्युताच्युतावर्त | ४४ |
| चुल्लकप्पसुय | छोटा कल्पसूत्र | ५६ |
| चूलवत्थु | चूलिकावस्तु | |
| चाउरंत | चार प्रकार की गतिरूप अंतवाला | |
| चेइअ निहाणे | चेल्क निधान औत्पत्तिका बुद्धिका-२२ वां उदाहरण | ६३ |
| चेइयाइं | चैत्य-व्यन्तरगृह | ५१ |
| चोयग | प्रेरणा करनेवाला | ३६ |
| चोद्दसपुव्विस्स | चौद.पूर्वों के जानकार | ४८ |
| चोयाले | चौआलीस | |

छ

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| छव्विय | छठो | ६ |
| छप्पन्नाए | छप्पन्नतरह के अन्तर्द्वीपोंसे | १८ |
| छव्विहे | छहतरहके | ३० |
| छ चउक्क | षट्चतुष्क | ५६ |
| छेयवा | छेदकर | ७७ |
| छत्तीस | छत्तीस | ८८ |
| छेलियाइं | क्ष्वेलित अनक्षर श्रुतों का भेद | ८८ |
| छीय | छींकना | |

ज

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| जगजीव | जगत के जीव | |
| जगगुरू | जगत के गुरु | |
| जगाणंदो | जगतके आनन्द दाता | |
| जगणाहो | जगतकेनाथ | |
| जगबंधू | जगतके बन्धु | |
| जगप्पियामहो | जगतका पिता धर्म और उसके भी पिता अतः पितामह | |
| जयइ | जयवन्त हैं | |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| जत्तिय | जितने | ५६ |
| जयं | जयको | १४ |
| जन्नानामए | अज्ञात नामवाला | ३७ |
| जम्हा | जिसलिये | ४२ |
| जया | जय | ,, |
| जत्तिया | जितने | ४४ |
| जस्स | जिनके | ,, |
| जम्मणाणी | जन्म | ५७ |
| जच्चिरं | जितनी देर | ,, |
| जहिं | जहाँ | ,, |
| जत्तियाइं | जितने | ,, |
| जह | जहाँ | ,, |
| जओ | जय | ५ |
| जहा | जैसे | ५२ |
| जहन्न | छोटा | १२ |
| जलंत | जलता हुआ | १३ |
| जणमण | जनों के मनमें | १८ |
| जंबुद्दीवपन्नत्ती | जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति | ४४ |
| जसवंस | यशोवंश | ३४ |
| जसभद्द | यशोभद्र | ३६ |
| जलूग | छोटा जलजन्तु | ५१ |
| जंबूनाम | जम्बुस्वामी | ३५ |
| जच्चंजण | जातिमंत अंजन | ३५ |
| जाया | पैदा हुए | ५१ |
| जाहग | मूषिकजातिका जीव | ५१ |
| जाणिया | जाननेवाली | ,, |
| जाणग | जाननेवाले | ५५ |
| जाणिय | जानकर | ,, |
| जिण | रागद्वेषविजयी जिन | ३ |
| जिणस्स | जिनदेवका | १ |
| जिणसूरतेयबुद्ध | जिनरूपसूर्यकीप्रभासे प्रबुद्ध | ५ |
| जिणवर | जिनदेवोंमें श्रेष्ठ | २४ |
| जिब्भिदियपच्चक्ख | जिह्वाइन्द्रियसे प्रत्यक्ष | ४ |
| जिब्भिदियवंजणुग्गहे | जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह | २९ |
| जिब्भिदिय अत्थुग्गहे | जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह | ३० |

| शब्द | अर्थ | सूत्र ङ्क |
|---|---|---|
| जिब्भिंदिय ईहा | जिह्वाइंद्रियसम्बन्धी ईहा | ३२ |
| जिब्भिंदिय अवाए | जिह्वेंद्रिय अवाय | ३३ |
| जिणपण्णत्ता | जिनदेवोंसे कहेगए | ४२ |
| जिणवराण | जिनेन्द्रदेवोंके | ४४ |
| जीवदया | जीवोंकि ऊपर दया | ४७ |
| जीवाजीवा | जीव अजीव | |
| जीवाभिगमो | जीवाभिगमसूत्र | ४४ |
| जे | जो | ५८ |
| जेहिं | जिन्होंने | ३२ |
| जेसिं | जिनके | ३८ |
| जूय | यूका एक परिमाण | ३४ |
| जूयपुहुत्त | यूका पृथकृत्व २ से ९ तक | |
| जोइसस्स | ज्योतिष विमानवासोंका | १८ |
| जोइट्ठाण | ज्योति स्थान | ११ |
| जोयणाइ | योजन प्रमाण | १० |
| जोइ | ज्योति | |
| जोणीविमाणओ | योनिओंको जाननेवाले | १ |
| | **झ** | |
| झाण | ध्यानकरनेवाला | ३० |
| झाणविभत्ती | ध्यानविभक्ति | ४४ |
| | **ट** | |
| टंका | पर्वतोंका ऊपरीभाग | ४६ |
| | **ठ** | |
| ठवणा | स्थापना | ३४ |
| ठाण | स्थानस्थानाङ्गसूत्र | ४१ |
| ठाविज्जइ | स्थापन किया जाता | ४८ |
| ठाणे | स्थानाङ्गसूत्रमें | |
| ठाविज्जंति | स्थापन करते हैं | |
| ठाणसयविवड्डियाण | सैकडों स्थानोंसे बढे हुए | |
| ठाइंति | ठहरता है | ३५ |
| | **ढ** | |
| ढोवे | कर्मजाबुद्धिका ४ था दृष्टान्त | ७७ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| | **ण** | |
| णाणदंसणगुण | ज्ञानदर्शनगुण | ३० |
| णागज्जुणायरिए | नागार्जुनाचार्य नामक स्थविर | ३९ |
| णिक्खंते | निष्क्रान्त-निकलेहुए | ६ |
| णिच्च | नित्य-सदा | ४१ |
| | **त** | |
| तइए | तृतीय-तीसरे | २२ |
| तओ | उसके बाद | ३६ |
| तह | वैसे | ३१ |
| तहा | उसीतरह | २५ |
| तत्तो | तदनन्तर | २७ |
| तहवि | तो भी ( तथापि ) | ३४ |
| तच्च | सत्य | १५ |
| तण | तृण वैनयिकी बुद्धिका १३ वाँ दृष्टान्त | ७५ |
| तत्थेव | वहींपर | ३६ |
| तत्थ | वहां | |
| तक्खण | तत्काल उपासक | ६९ |
| तत्थेग | वहांपर एक | ३६ |
| तवनियम | तप नियम | ३१ |
| तवविणए | तप विनयमें | ३३ |
| तवसंजमे | तप संयममें | ४६ |
| तवा | तपस्यायें | ५६ |
| तमेव | उसीको | ११ |
| तस्स य | उसके | ६३ |
| तस्सेव | उसीके | ११ |
| तयावरणिज्ज | अवधिज्ञानके आवरण करनेवाले | ५ |
| त | वह | २ |
| तंदुलवेयालिय | तंदुल वैकालिक | ४४ |
| तं जहा | जैसे कि | १ |
| तसा | त्रसकायिक जीव | ४४ |
| तवायारे | तप आचारमें | |
| ताहे | उससमय | ३६ |
| त्ति | इति | २२ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| दोसु | दोनोंमें | ५७ |
| देसेण | एकदेशसे | |
| दिवसतो | एक दिनके भातर | ५८ |
| धम्मवर | श्रेष्ठ धर्म | १२ |
| धरणाववाए | धरणापपात श्रुतभेद | ४४ |
| धरणा | मतिज्ञानका नाम | २७ |
| धणदत्ते | धनदत्त॰ पारिणा॰ बुद्धिका ७ वां उदाहरण | ७० |
| धम्मायरिया | धमाच य | ५१ |
| धम्मकहाओ | धर्मकथाएँ | |
| धारणा | मतिज्ञान का भेद | २७ |
| धणु वा | ४ हाथ का एक प्रमाण | १४ |
| धणुपुहुत्त | २ से ९ धनुपतक | |
| धारइ | धारण करता है | ३६ |
| धारए | धारण करनेवाले | ३९ |
| धिइपरक्कम | धैर्यरूप पराक्रम | ३५ |
| धीरा | धार | ९४ |
| धुयरय | पापरूपमलको दूर करनेवाले | ३ |
| धिइवेलापरिगय | धैर्यरूप तप्से युक्त | ११ |
| धुवे | ध्रुव | ५७ |

न

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| नमो | नमस्कार हो | ४१ |
| नमि | नमिनाथ २१ वें तीर्थङ्कर | १९ |
| नेमि | नेमिनाथ २२ वें तीर्थङ्कर | ३ |
| नपुंसगलिङ्गसिद्ध | नपुंसकलिङ्गी सिद्ध | २१ |
| नर | मनुष्य | ५७ |
| न भवइ | नहीं होता है | |
| न भविस्सइ | नहीं होगा | |
| नत्थि | नहीं है | ७ |
| नगराइ | नगर | ७ |
| नयमे | नयमें | ४१ |
| [redacted] | नहीं | ५१ |
| नदृणवणमणहर | [illegible] | ५० |
| नगर रइ | नगररूपरथ | ३३ |
| | | ३९ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| तवोकम्मगंडियाओ | तप कर्मगण्डिका | ५७ |
| | **थ** | |
| थावरा | स्थावर जीव | ४६ |
| थूभिंदे | पारिणामिकी बुद्धि का २१ वाँ उदाहरण | ७२ |
| थूलभद्द | स्थूलभद्र पारि० बुद्धिका १३ वाँ उदाहरण | ७१ |
| | **द** | |
| दढ रूढ | दृढतासे पैदा हुआ | १२ |
| दमसंघसूर | उपशमप्रधान संघ सूर्यका | १० |
| दव्वे | द्रव्यमें | ६३ |
| दव्वाइं | द्रव्य | ३७ |
| दसवेयालिय | दशवैकालिकसूत्र | ४४ |
| दसाओ | दशाश्रुतस्कन्ध | ४४ |
| दसट्ठाणगविप्पमुक्काण | दशस्थानकोंसे मुक्त हुए | ४५ |
| दहा | ह्रद-जलाशयविशेष | |
| दसारगंडियाओ | गण्डिकानुयोगका चौथा भेद | ५७ |
| दव्वपज्जव | द्रव्यपर्यव | ६१ |
| दससमय सिद्ध | दशसमयोंमें सिद्ध | ३२ |
| दयागुणविसारद | दयागुणोंमें निपुण | ४३ |
| दंसण | दर्शन | ३३ |
| दंसिज्जंति | दिखाए जाते हैं | ४३ |
| दंसणायारे | दर्शनाचारमें | ४४ |
| दस | दशसंख्यामें | १० |
| दिट्ठिवाओ | दृष्टिवाद बारहवाँ अङ्ग | ४४ |
| दिव्वा | दैवसम्बन्धी | ५५ |
| दिट्ठ | देखा गया | ६४ |
| दिट्ठिवायस्स | दृष्टिवादका | ५७ |
| दिट्ठिविसभावणाणं | दृष्टिविषभावन श्रुतोंका भेद | ४४ |
| दिट्ठिवाओवएसेणं | दृष्टिवादोपदेशसे | ४० |
| दीवसमुद्द | द्वीपसमुद्र | २६ |
| दूसगणि | दूष्यगणी स्थविर | २७ |
| दुव्वियड्ढा | दुर्विदग्ध-अल्पज्ञानी | ५२ |
| दुण्ण | दो नौका | ७ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| निबद्ध | बंधा गया | १ |
| निकाइया | विशेष रीतिसे बांधिए | १ |
| निज्जुत्तीओ | निर्युक्तिएँ | |
| निग्गंथाण | साधुओंके | ४४ |
| निसीह | निशीथ सूत्र | ४१ |
| निच्चुग्घाडिओ | सदा खुला हुआ | |
| निप्फज्जइ | निष्पन्न होता है | ५५ |
| निस्सिंघिय | अनक्षर श्रुत का भेद | १ |
| निच्छूढ | श्रुतका भेद | ५६ |
| नियमा | नियम | ३९ |
| नीससिय | सुना हुआ | |
| निव्वोदए | छप्परसे गिरा हुआ पानी-विनयजा बुद्धिका १४ वां उदाहरण | ७५ |
| निमित्ते | निमित्तशास्त्र-विनयजा बुद्धिका पहला उदाहरण | ७४ |
| | | ५५ |
| निरंतर | लगातार | ५६ |
| निद्दिट्ठ | कहा हुआ | ५४ |
| निम्माओ | मायारहित-मायावी | ५४ |
| निच्च | सदा | ११ |
| निप्पूसिय | हठात् लिया हुआ | ९ |
| निम्मल | निर्मल | २४ |
| निव्वुइ | निवृत्ति-शान्तिसुख | ७ |
| नेरइयाण | नारकिओंका | १४ |
| नेरइय | नारकी जीव | ३ |
| नोइंदियपच्चक्ख | मानस प्रत्यक्ष | ५ |
| नोइंदियाण | नोइन्द्रिय | ३० |
| नो इंदिय अवग्गहे | नो इन्द्रिय का अर्थावग्रह | ३२ |
| नो इंदिय ईहा | नो इन्द्रियसम्बन्धी ईहा | ३३ |
| नो इंदिय अवाए | नो इन्द्रियसम्बन्धी अवाय | ३४ |
| नो इंदिय धारणा | नो इन्द्रियसम्बन्धी धारणा | ३५ |
| नो | नहीं | ० |
| नो चेव | पक्षान्तरमें नहीं | |

प

| | | |
|---|---|---|
| पभवो | उत्पत्तिस्थान | ९ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| परतिथियगह ... ... | परमतावलम्बी रूप ग्रहोंके ... | १ |
| पहनासग ... ... | मार्गोंको रोकनेवाले ... ... | ,, |
| पंचमहव्वय थिरकण्णिय ... | पांच महाव्रतरूप स्थिर कर्णिकावाले ... | ७ |
| पढमित्थ ... ... | यहांपर पहले ... ... | २२ |
| पहाते ... ... | श्रीमहावीर के १० वें गणधर प्रभासस्वामी | २१ |
| पभावग ... ... | प्रभावशाली ... ... | १० |
| पसन्नमण ... ... | प्रसन्नचित्त ... ... | ११ |
| पत्ते ... ... | पत्र-औत्पत्तिकी बुद्धिका ११ वां उदाहरण | ६२ |
| पत्ते ... ... | प्राप्तकरनेवाले ... ... | १६ |
| पयाइ ... ... | फैलरहा है ... ... | १७ |
| पयओ ... ... | पवित्र होकर ... ... | ४७ |
| पणमामि ... ... | प्रणाम करताहूं ... ... | ,, |
| पाए ... ... | चरणोंको ... ... | ४९ |
| पावयणीणं ... ... | प्रवचनकर्ताके ... ... | ,, |
| पडिच्छयसएहिं ... ... | सैकड़ों विनीतशिष्योंसे ... | ,, |
| पणिवइए ... ... | प्रणतहुए ... ... | ,, |
| पणिमिऊण ... ... | प्रणामकरके ... ... | ५० |
| परूवणं ... ... | प्ररूपण ... ... | ५० |
| पण्णत्ता ... ... | कहे गए हैं ... ... | ५१ |
| परिसं ... ... | सभाको ... ... | ५२ |
| पास ... ... | श्रीपार्श्वनाथस्वामी २३ वें तीर्थङ्कर ... | २१ |
| पुप्फदंत ... ... | पुष्पदन्तस्वामी ९ में तीर्थङ्कर ... | २० |
| पुव्वाणं ... ... | पूर्वोका ... ... | ३९ |
| पंडियजणसम्मणं | पण्डितोंके संमाननीय | ४२ |
| पइण्ण ... ... | प्रकीर्ण ... ... | २६ |
| पयईए ... ... | स्वभावसे ही ... ... | ४७ |
| पुराण ... ... | अष्टादश पुराण ... ... | ४२ |
| पायंजली ... ... | पतञ्जलिकृत ग्रन्थ ... | ,, |
| पुस्सदेवय ... ... | पुष्पदैवत ग्रन्थविशेष ... | ,, |
| पुरिसं ... ... | पुरुषको ... ... | ४३ |
| पडुच्च ... ... | उद्देश करके ... ... | ,, |
| पण्णविज्जंति ... ... | प्रज्ञापन किये जाते हैं ... | ,, |
| परूविज्जंति ... ... | प्ररूपण किए जाते हैं ... ... | ,, |
| पज्जवक्खरं ... ... | पर्यवाक्षर ... ... | ,, |
| पाविज्जा ... ... | प्राप्त करे ... ... | ,, |

# श्रीमन्नन्दीसूत्रका शब्दकोश

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
| --- | --- | --- |
| पभा | प्रभा | ४३ |
| पडिक्कमणं | प्रतिक्रमण चतुर्थ अध्याय | ४४ |
| पच्चक्खाण | प्रत्याख्यान | " |
| पण्णवणा | प्रज्ञापनासूत्र | " |
| पमायप्पमाय | प्रमादाप्रमादश्रुत | " |
| पोरिसिमंडलं | पौरुषीमण्डलश्रुत | " |
| पुप्फियाओ | पुष्पिकाश्रुत | " |
| पुप्फचूलियाओ | पुष्पचूलिका | " |
| पइन्नगसहस्साइं | प्रकीर्णक सहस्र | " |
| पारिणामियाए | पारिणामिकी बुद्धिसे | " |
| पत्तेयबुद्धावि | प्रत्येक बुद्ध भी | " |
| परिपुण्णग | श्रोताके उदाहरणमें चतुर्थ दृष्टान्त | ५१ |
| पण्हावागरणाइं | प्रश्नव्याकरण १० वां अङ्ग | ४४ |
| पंचविहे | पांच प्रकारके | " |
| परित्ता | परिमित | " |
| पडिवत्तीओ | प्रतिपत्ति | " |
| पढमे | प्रथम | " |
| पणवीसं | पचीस | " |
| पंचासीइ | पचासी | " |
| पयसहस्साइं | हजारों पद | " |
| पयग्गेणं | पदपरिमाणसे | " |
| परसमए | अन्यमत | ४७ |
| पासंडिय | अन्यतीर्थी | " |
| पब्भारा | झुके हुए शिखर | ४८ |
| परूवणा | प्ररूपणा | " |
| पडुप्पन्ने | वर्तमान–संक्षिप्त परिचय | ४९ |
| पंचमे | पांचवें | ५० |
| पव्वज्जाओ | दीक्षाएँ | ५२ |
| परियागा | दीक्षासमय | " |
| पोसहोववास | पौषध उपवास | " |
| पडिवज्जणया | स्वीकार करना | " |
| पडिमाओ | श्रमण और श्रावकोंका व्रतविशेष | " |
| पाओवगमणाइं | पादपोपगमन–संथारा | " |
| पुणबोहिलाभा | फिर सम्यग्–ज्ञानका लाभ | " |
| पसिणसयं | सैकड़ों प्रश्न | ५५ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| पसिणापसिणसयं ... ... | पूछे विनपूछे सैकडों प्रश्न ... | ५५ |
| पणयालीसं ... ... | पैंतालीस ... ... | ,, |
| पंचविहे ... ... | पांच प्रकारके ... ... | ५७ |
| परिकम्मे ... ... | परिकर्म दृष्टिवादका १ प्रकार ... | ,, |
| पत्तेयबुद्धसिद्ध ... ... | प्रत्येकबुद्ध होकर सिद्ध हुए ... | २१ |
| पुरिस लिंगसिद्ध ... ... | पुरुषलिङ्गी सिद्ध ... ... | ,, |
| परंपरसिद्ध ... ... | परम्परा–लगातार सिद्ध ... | २२ |
| पण्णवणजोग ... ... | प्रज्ञापनयोग्य कहने योग्य ... | ६७ |
| पच्चक्खनाण ... ... | प्रत्यक्षज्ञान ... ... | २३ |
| परोक्खनाण ... ... | परोक्षज्ञान ... ... | २४ |
| पण्णवयंति ... ... | प्रज्ञापन करते हैं ... ... | ,, |
| पुव्व ... ... | १४ पूर्व ज्ञानविशेष ... ... | ६६ |
| पणिय ... ... | औत्पत्तिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण ... | ७० |
| पूयइ ... ... | कर्मजा बुद्धिका १० वां उदाहरण ... | ,, |
| पवए ... ... | कर्मजा बुद्धिका ७ वां उदाहरण ... | ,, |
| पड ... ... | औत्पत्तिकी बुद्धिका ५ वां उदाहरण ... | ,, |
| पइ ... ... | पति औत्प. बुद्धिका १५ वां उदाहरण | ,, |
| पुत्ते ... ... | पुत्र औत्प. बुद्धिका १६ वां उदाहरण | ,, |
| पत्ते ... ... | पत्र औत्प. बुद्धिका ११ वां उदा० ... | ,, |
| पायस ... ... | खीर ,, ,, ९ वां उदा० ... | ,, |
| पंचपियरो ... ... | ,, ,, १३ वां उदा० ... | ,, |
| पंच ... ... | पांच ... ... ... | ३२ |
| पच्चाउट्टणया ... ... | प्रत्यावर्तनता–वारंवार आवृत्ति, अवायके पांच नामोंमें दूसरा नाम. ... | ३३ |
| पंचनामधिज्जा ... ... | पांच नाम हैं ... ... | ३४ |
| पइट्ठा ... ... | प्रतिष्ठा–धारणाका चतुर्थ भेद ... | ,, |
| परूवणं ... ... | प्ररूपणा ... ... | ३६ |
| पडिबोहगदिट्ठंतेण ... ... | प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे ... | ,, |
| पुरिसे ... ... | पुरुष ... ... | ,, |
| पडिबोहिज्जा ... ... | जगावे या समझावे ... ... | ,, |
| पन्नवग ... ... | प्रज्ञापक बोलनेवाला ... ... | ,, |
| पुग्गल ... ... | पुद्गल ... ... | ,, |
| पन्नाए ... ... | प्रज्ञापनकरनेवाले ... ... | ३६ |
| पक्खिवेज्जा ... ... | प्रक्षेप करे ... ... | ,, |
| पक्खिप्पमाण ... ... | प्रक्षेप कियाजाताहुआ ... | ,, |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| पवाहेहिंति ... ... | प्रवाहयुक्त करेगा ... ... | ३६ |
| पूरियं ... ... | पूर्ण ... ... | " |
| पविसइ ... ... | प्रवेश करता है ... ... | " |
| पासिज्जा ... ... | देखे ... ... | " |
| पडिसंवेइज्जा ... ... | अनुभव करे ... ... | " |
| पुट्टं ... ... | स्पृष्ट–स्पर्श किये ... ... | ८४ |
| परायाए ... ... | प्रत्याघात होनेपर– पीछे टकरानेपर ... | ८६ |
| पन्ना ... ... | प्रज्ञा–आभिनिबोधिक ज्ञानका ९ वां नाम | ८७ |
| पूइएहिं ... ... | पूजित हुए तीर्थंकरोंने ... | ४१ |
| पणीयं ... ... | प्रणीत ... ... | " |
| पुव्वगए ... ... | पूर्वगत दृष्टिवादका ३ रा भेद ... | " |
| पुट्ठसेणिया ... ... | पृष्टश्रेणिका परिकर्मका ३ रा भेद ... | " |
| पाढो आगासपयाई ... ... | सिद्धश्रेणिका परिकर्मका चतुर्थ भेद | " |
| पडिग्गहो ... ... | परिग्रह मनुष्यश्रेणिका परिकर्मका ११ वां भेद | " |
| पुट्ठावत्तं ... ... | पृष्टावर्त–पृष्टश्रेणिकापरिकर्मका ११ वां भेद | " |
| पणवीसा ... ... | पचीस ... ... | " |
| पन्नरस ... ... | पन्द्रह–पञ्चदश ... ... | " |
| पाणाउपुव्वं ... ... | प्राणायुःपूर्व–पूर्वगतका १२ वां भेद ... | " |
| पच्चक्खाणप्पवाय ... ... | प्रत्याख्यानप्रवाद–" ९ वां भेद ... | " |
| पुव्वभवा ... ... | पूर्वभव ... ... | " |
| परिमाणं ... ... | परिमाण–संख्या ... ... | " |
| परियट्टण ... ... | पर्यटन ... ... | " |
| पाहुडा ... ... | प्राभृत–दृष्टिवादका प्रकरण विशेष ... | " |
| पाहुड पाहुडा ... ... | प्राभृत प्राभृत ... ... | " |
| पाहुडियाओ ... ... | प्राभृतिका ... ... | " |
| पाहुड पाहुडियाओ ... | प्राभृत प्राभृतिका ... ... | " |
| पडुप्पण्णकाले ... ... | प्रत्युत्पन्न–वर्तमानकालमें ... | " |
| पंचत्थिकाए ... ... | पञ्चास्तिकाय ... ... | " |
| पुव्वविसारया ... ... | १४ पूर्वोंमें निपुण ... ... | " |
| पडिपुच्छइ ... ... | पीछे शास्त्रार्थको पूछना है ... | " |
| पसंग पारायणं ... ... | अवसरमें निपुण होना ... ... | " |
| परिनिट्ठि ... ... | परिनिष्ठित–पूर्ण ... ... | " |
| पढमो ... ... | प्रथम ... ... | " |
| पडिणयपडिणियं ... ... | अनेक प्रकारके सूत्रोंमें २ रा भेद ... | ११ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|

फ

| | | |
|---|---|---|
| फुरंत | चमकता हुआ | १६ |
| फलभर | फलसमूहका भार | १६ |
| फुट्टइ | फूटता है | ५४ |
| फासिंदियपच्चक्ख | स्पर्शेन्द्रियप्रत्यक्ष | ४ |
| फासिंदिय वंजणुग्गहे | स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह | २९ |
| फासं | स्पर्शको | ३६ |
| फासेत्ति | यह स्पर्श है ऐसा | ,, |
| फासे | स्पर्शको | ,, |
| फासिंदियलद्धिअक्खरं | स्पर्शेन्द्रिय लब्धि अक्षर | ३९ |
| फलविवागे | फलविपाकोंको | ५६ |

ब

| | | |
|---|---|---|
| बहुविहसज्झाय | अनेक प्रकारके स्वाध्यायोंसे | ४४ |
| बहुनयर | अनेक नगरोंमें | १७ |
| वड्ढमाणय | वर्द्धमानक अवधिज्ञान | ९ |
| बहू | अनेक तरहके | ६३ |
| बद्धपुट्ठं | बद्ध और स्पृष्ट | ८५ |
| बहवे | अनेकों | ४३ |
| वद्धमाणसामिस्स | वर्द्धमानस्वामीके | ४४ |
| बत्तीसाए | बत्तीस प्रकारकी | ४७ |
| बाहुपसिणाइं | बाहुप्रश्न | ५५ |
| बलदेव गंडियाओ | बलदेव गण्डिका | ५७ |
| बारसमे | बारहमें | [illegible] |
| बालग्गं | बालाग्र–प्रमाणविशेष | १४ |
| बालग्ग पुहुत्तं | बालाग्र पृथक्त्व–२ से ९ तक | ,, |
| बालुय | औत्पत्तिकी बुद्धिका ५ वाँ उदाहरण | ७० |
| बिंति | कहते हैं | ७८ |
| बहुल | बहुलनामक स्थविर | २७ |
| बंभद्दीवगसिंहे | ब्रह्मद्वीपिक शाखावाले | ३६ |
| बावत्तरि | बहत्तर | ४८ |
| बिईए | दूसरे | २२ |
| बिगाली | श्रोताका 10 वाँ उदाहरण | ५१ |
| बीए | दूसरे | ४७ |
| बीसा | बीस | ५७ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| बुद्धबोहिय | बुद्धबोधित | २१ |
| बुद्धवयण | बुद्धवचन–बौद्धग्रन्थ | ४२ |
| बुद्धी | बुद्धि | ६८ |
| बुद्धीए | बुद्धिका | ४४ |
| बोद्धव्वो | समझना चाहिए | ५८ |
| बोहिलाभ | सम्यग्ज्ञानका लाभ | ५२ |
| बीओ | दूसरा | १७ |
| बुक्कार | अट्टहाससूचक ध्वनि | १६ |
| बुद्धिगुणेहिं | बुद्धिगुणोंसे | १४ |
| वोच्छिंदिंसु | अन्त करगए | ५७ |
| वोच्छिंदंति | अन्त करते हैं | |
| वोच्छिंदिस्संति | अन्त करेंगे | ,, |
| | **भ** | |
| भयवं | भगवान् | १ |
| भद्द | भद्र–कल्याण | ३ |
| भगवओ | भगवान्‌का | ११ |
| भद्दबाहु | भद्रबाहु स्वामी स्थविर | २६ |
| भणग | कथन करनेवाले | ३० |
| भद्दगुत्त | स्थविर भद्रगुप्त | ३१ |
| भवियजण | भव्यजन | ४१ |
| भवभय | संसारकी भीति | ४५ |
| भगवंते | भगवन्तोंको | ५० |
| भवे | संसारमें | ५३ |
| भवपच्चइय | भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान | ६ |
| भज्जियव्व | भजना–पूर्ण क्रिया | ५६ |
| भाग | भाग हिस्सा | ५७ |
| भरहम्मि | भरतमें | ५९ |
| भइयव्वा | चाहिए | ६० |
| भंते ! | भगवन् ! | १७ |
| भावे | भावोंको | १८ |
| भावओ | भावसे | १८ |
| भवत्थकेवलनाण | भवस्थ केवलज्ञान | ,, |
| भासइ | बोलता है | ६७ |
| भूयहियप्पगब्भे | जीवोंके हितमें निर्भय | ४५ |
| भूयदिन्न | भूतदिन्न नामके स्थविर | ,, |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| भेरी | वाद्यविशेष, श्रोताका ११ वाँ उदाहरण | ५१ |
| भूया | समान होते हैं ... | ५१ |
| भरहसिल | औत्पत्तिकी बुद्धिका प्रथम उदाहरण | ७० |
| भरह | औत्पत्तिकी बुद्धिका अठण उदाहरण | „ |
| भरनित्थरणसमत्था | कठिन कार्यको पार लगानेमें समर्थ | ७१ |
| भवति | होते हैं .. .. | ३१ |
| भरहिति | मर जायगा | |
| भगवंतेहिं | भगवन्तोंसे | ४१ |
| भावओ | भावसे | १७ |
| भयणा | भजना–अनियतपन | ४१ |
| भत्तपच्चक्खाणाई | आहारत्याग | ५२ |
| भगवताणं | भगवन्तोंके | ५७ |
| भवसिद्धिया | भवसिद्धिक | „ |
| भद्दबाहुगंडिया | भद्रबाहुगण्डिका | „ |
| भवियमभविया | भव्य अभव्य | „ |
| भवइ | होता है | „ |
| भविस्सइ | होगा | „ |
| भणिओ | कहा गया | ६७ |
| भत्ताइ | भक्त | ५७ |
| भासासमसेढीओ | भाषाकी समश्रेणिसे | ८६ |
| भारहं | भारतनामक ग्रन्थ | ४२ |
| भागवयं | भागवत ग्रन्थ | „ |
| भासा | भाषा | ४४ |
| भिक्खु | भिक्षु | ७२ |
| भेदवत्थु | भेदवस्तु | ८२ |
| भिन्नेसु | अपूर्ण पूर्वधारियोंमें | ४१ |
| भीमासुरक्खं | भीमासुरोक्त ग्रन्थ | ४२ |
| भुविं | हुआ | ५७ |
| भावाणं | भावोंके | ४८ |

म

| | | |
|---|---|---|
| महप्पा | महात्मा | १ |
| महावीरो | भगवान् महावीर | „ |
| मल्ली | मल्लिनाथस्वामी १९ वें तीर्थंकर | २१ |
| महिंद | महेन्द्रपुर नामक नगर | २१ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| रयणकरंडगभूय | रत्नोंकी पटाके समान | ३२ |
| रक्खिओ | रक्षित रक्खा | " |
| रेवइनक्खत्तनाम | रेवतीनक्षत्र नामवाले | ३८ |
| रयणमिव | रत्नके समान | ५२ |
| रुययम्मि | रुचकद्वीपमें | ५९ |
| रयणि | रत्निप्रमाण-१ हाथ | १४ |
| रूविदव्वाइ | रूपी द्रव्योंका | १६ |
| रयणप्पभाए | रत्नप्रभानामकपृथ्वीके | १८ |
| रुक्ख | वृक्ष | ७० |
| रडिए | रटित-विनयजा बुद्धिका ११ वाँ उदाहरण | ७४ |
| रुक्खाओ | वृक्षसे | ७५ |
| राया | राजा | ७६ |
| रायाहिति | आर्द्र ( गीला ) करेगा | ३६ |
| रूव | रूप | ■ |
| रूवत्ति | कोई रूप है ऐसा | |
| रस | रसको | " |
| रसोत्ति | यह रस है | " |
| रस | रस | |
| रसणिंदिय-लद्धिअक्खर | रसनेन्द्रिय-लब्ध्यक्षर | ३९ |
| रायपसेणिय | राजप्रश्नीयसूत्र | ४४ |
| रामायण | रामायण-रामचरित्र | ४२ |
| रायाणो | राजा | १ |
| रासियइ | ? रकर्मका अवान्तर भेद | ५७ |
| रायवर सिरीओ | श्रेष्ठ राजलक्ष्मी | " |

ल

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| लक्खण | लक्षण | ७४ |
| लक्खणपसत्थे | लक्षणोंसे प्रशस्त-उत्तम | ४९ |
| लद्धिअक्खर | | १४ |
| लिक्ख | लिक्षा प्रमाणविशेष | ■ |
| लिक्खपुहुत्त | लिक्षा पृथक्त्व-२ से ९ तक | ४२ |
| लेह | लेख | ५७ |
| लोगबिंदुसारपुव्व | लोकबिन्दुसार-पूर्वोंका एक भेद | १४ |
| लोग | लोक | ४२ |
| लोयालोय | लोकालोक | |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| मई... | बड़ी (इच्छा)–औत्प० बुद्धिका २५ वां उदाहरण | ७२ |
| माउयापयाइं | मातृकापद–परिकर्मका भेद | ५७ |
| माया | मात्रानिर्वाह | ४४ |
| माणुसखित्तनिबद्ध | मनुष्यक्षेत्रमें होनेवाला | १८ |
| मिच्छदिट्ठि | मिथ्यादृष्टि | „ |
| मिच्छादिट्ठिएहिं | मिथ्यादृष्टिओंसे | „ |
| मिच्छासुयं | मिथ्याश्रुत | „ |
| मिच्छत्तपरिग्गहियाइं | मिथ्यात्वसे परिगृहीत | „ |
| मियछावय | मृगका बच्चा | ४६ |
| मिउमद्दवसंपन्ने | मृदु मार्दवसे, युक्त | ४० |
| मुणिवरमइंद इन्न | मुनिवररूप मृगेन्द्रसे पूर्ण | १४ |
| मुद्दियकुवलयनिहाण | द्राक्षा व कुवलयसमान कान्तिवाले | ३५ |
| मुहुत्तंतो | मुहूर्तके भीतर | ५८ |
| मोत्ति | कर्मजा बुद्धिका ५ वां उदाहरण | ७७ |
| मुद्दिय | औत्प. बुद्धिका १९ वां उदाहरण | ७२ |
| मुहुत्तमद्धं | आधा मुहूर्त | ८४ |
| मुहं | मुख–पोटकमुख ग्रन्थविशेष | ४२ |
| मूलपढमाणुओगे | मूलप्रथमानुयोग | ५७ |
| मुणिणो | साधु ... | ५७ |
| मुणिवरुत्तमे | मुनिओंमें श्रेष्ठ | „ |
| मुक्खसुहं | मोक्षसुख | „ |
| मूअं | चुप रहना–अनुयोगविधि | ९६ |
| मेहा | मेधा–मतिज्ञानका एक नाम | ३१ |
| मेहसमुदए | बादलोंके छाजानेपर | ४३ |
| मोरनचंत | नाचते हुए मोर | १५ |
| मोरियपुत्ते | मौर्यपुत्र–गणधर | २३ |
| मेयज्जे | मेतार्य नामक गणधर | २३ |

य

| | | |
|---|---|---|
| य ... | और | २१ |

र

| | | |
|---|---|---|
| रयणदित्तोसहिगुह | रत्नोंसे प्रदीप्त औषधीयुक्त कन्दरावाला | १४ |
| रवंत | शब्द करता हुआ | १५ |
| रुंदस्स | विस्तीर्ण | ५१ |
| रविखयचरित्तसव्वस्स | चारित्रसर्वस्वके रक्षक | ३२ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
| --- | --- | --- |
| लोहिच्चणाम | लौहित्य नामक स्थविर | ४६ |
| लोगाययं | लौकायतिक–मतका ग्रन्थ | ४२ |

व

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
| --- | --- | --- |
| वइसेसियं | वैशेषिक–नैयायिक दर्शन | ४१ |
| वग्गचूलिया | वर्गचूलिका | ४४ |
| वरुणोववाए | वरुणोपपात–ग्रन्थविशेष | ,, |
| वणसंडाइं | वनखण्ड | ५१ |
| वत्थूणि | वस्तु–दृष्टिवादका एक अङ्ग | ५७ |
| वट्टमाण | वर्तमान | १३ |
| वड्ढमाणचरित्त | वर्धमान चारित्रवाला | १२ |
| वड्ढइ | बढ़ता है | ,, |
| ववसायंमि | व्यवसाय निश्चयमें | ८३ |
| वंजणं | व्यञ्जन–वर्णभेद या इन्द्रिय | ३६ |
| वयंतं | बोलते हुएको | ,, |
| वयासी | बोला | ,, |
| वंजणुग्गहे | व्यञ्जनावग्रह | २८ |
| वड्ढइ | वर्धकि–कर्मजा बुद्धिका ९ वीं उदाहरण | ७७ |
| वइरे | पारिणामिकी बुद्धिका १५ वीं उदाहरण | ७० |
| वयविवाग | व्रतोंका परिणाम | ७८ |
| वइजोगसुयं | वाग्योगवाला श्रुत | ६७ |
| वण्णिओ | वर्णन किया | ६३ |
| ववहारो | व्यवहार | ४४ |
| वंदणयं | वन्दना अध्ययन | ,, |
| वाई | वादी | ५७ |
| वागरण | व्याकरण | ४२ |
| वावत्तरिकलाओ | बहत्तर कलाएँ | ,, |
| वायणा | वाचना–पाठ | ४४ |
| वागरण–सहस्साइं | हजारों व्याख्यान | ५० |
| वासं | वर्ष | ५६ |
| वासपुहुत्तं | वर्षपृथक्त्व २ से ९ वर्षतक | ,, |
| वासुदेवगंडियाओ | वासुदेवगण्डिका | ५७ |
| विगप्पा | विकल्प–भेद | ६३ |
| विउलमई | विपुलमति | १८ |
| विउलतरं | बहुत अधिक विस्तारवाला | ,, |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| वितिमिरतराए ... ... | अन्धकाररहित ... ... | १८ |
| विसुद्धतर ... ... | अतिशय शुद्ध ... ... | ,, |
| विण्णत्ति ... ... | विज्ञप्ति-विज्ञापना ... ... | ६६ |
| विणयसमुत्था ... ... | विनयसे होनेवाली ... ... | ७३ |
| विसेसिया ... ... | विशेषतायुक्त ... ... | २५ |
| वियागरे ... ... | कथनकरे ... ... | ८५ |
| विसुज्झमाण ... ... | विशेषतासे शुद्ध होता हुआ ... | १२ |
| विन्नाणे ... ... | विशेषज्ञान ... ... | ३३ |
| विवागसुयं ... ... | विपाकसूत्र ... ... | ४३ |
| विवाहपन्नत्ति ... ... | व्याख्याप्रज्ञप्ति ( भगवतीसूत्र ) ... | ,, |
| विज्जाचरण विणिच्छओ ... | विद्याचरण-विनिश्चय ग्रन्थ ... | ४४ |
| विहारकप्पो ... ... | विहारकल्प ... ... | ,, |
| विमाण पविभत्ती ... ... | विमान प्रविभक्ति ... ... | ,, |
| वित्तीओ ... ... | वृत्ति-व्यवहार ... ... | ,, |
| विण्णाया ... ... | विज्ञाता-विशेषज्ञ ... ... | ,, |
| वियाहे ... ... | भगवती सूत्रमें ... ... | ५० |
| विआहिज्जंति ... ... | व्याख्यात किये जाते हैं ... | ,, |
| विआहिज्जति ... ... | व्याख्यात किया जाता ... | ,, |
| विचित्ता ... ... | विचित्र-विविधतायुक्त ... ... | ५३ |
| विज्जाइसया ... ... | अतिशययुक्त विद्याएँ ... ... | ,, |
| विवागसुयं ... ... | विपाक सूत्र ... ... | ५६ |
| विप्पजहणसेणिया ... ... | विप्रजहच्छ्रेणिका-परिकर्मका भेद ... | ५७ |
| विप्पजहणावत्तं ... ... | विप्रजहदावर्त ... ... | ,, |
| विविह ... ... | विविध ... ... | ,, |
| विराहित्ता ... ... | विराधना करके ... ... | ,, |
| विही ... ... | अनुयोग-विधि ... ... | ६७ |
| वीयरागसुय ... ... | वीतराग श्रुत ... ... | ४४ |
| विवाहचूलिया ... ... | व्याख्या चूलिका ... ... | ,, |
| वीरियायारे ... ... | वीर्याचार ... ... | ,, |
| वीमंसा ... ... | विमर्श-मतिज्ञानका ३ रा भेद ... | ७८ |
| वियालणे ... ... | ईहाका स्थानविचालन ... | ८३ |
| वियावत्तं ... ... | सूत्रका १५ वाँ भेद ... ... | ५६ |
| वीसेढी ... ... | विषम श्रेणि ... ... | ८६ |
| वुच्छित्ति ... ... | विच्छेद होना ... ... | ४३ |
| [illegible] ... ... | समूह ... ... | ४७ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| वुड्ढीए | वृद्धिसे | ६१ |
| वुड्ढी | वृद्धि | ,, |
| वुत्ता | कहे गए | ६८ |
| वेया | वेद | ४२ |
| वेणइया | विनयजा बुद्धि | ४४ |
| वेसमणोववाए | वैश्रवणोपपात | ,, |
| वेलंधरोववाए | वेलन्धरोपपात | ,, |
| वेणइयवाईणं | वैनयिक वादियोंका | ४७ |
| वेढा | वृत्ति–छन्दविशेष | ४४ |
| **स** | | |
| सउणरुयं | पक्षिओंका शब्द–निमित्तशास्त्र | ४२ |
| सगडभद्दियाओ | शकटभद्रिका–ग्रन्थविशेष | ,, |
| सच्छंद | स्व–इच्छा | ,, |
| सट्ठितंतं | षष्टितन्त्र ग्रन्थविशेष | ,, |
| संगोवंगा | साङ्गोपाङ्ग–अङ्ग उपाङ्गोंके साथ | ,, |
| संखिज्जा | संख्येय–संख्या करने योग्य | ४४ |
| संकिलिस्समाण | दुःखी या मलिन होता हुआ | १३ |
| संखिज्जसमयसिद्ध | संख्यात समयके सिद्ध | २२ |
| संखिज्जभाग | संख्येयवां भाग | १४ |
| संखिज्जवासाउय | संख्येय वर्षकी आयुवाले | १७ |
| संगहणीओ | संग्रहणियाँ | ४४ |
| संघमहामंदर | संघरूप महामेरु पर्वत | १८ |
| संघ | साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारूप संघ | १६ |
| संजमविहिण्णु | संयमविधिज्ञ | ४२ |
| संडिल्ल | शाण्डिल्य आचार्य | २८ |
| संमुच्छिम | बिना गर्भके उत्पन्न होनेवाले जीव | १७ |
| संलेहणा | संलेखना | ४४ |
| संजयासंजय | संयतासंयत–श्रावक | १७ |
| संजयसम्मदिट्ठि | संयतसम्यग्दृष्टि–साधु | ,, |
| सम्मामिच्छादिट्ठि | सम्यङ्मिथ्यादृष्टि–मिश्रदृष्टि | ,, |
| सम्मदिट्ठि | सम्यग्दृष्टि | ,, |
| संति | शान्तिनाथजी १६ वें तीर्थङ्कर | २१ |
| संभव | सम्भवनाथजी ३ रे तीर्थङ्कर | ,, |
| ससि | शशि–चन्द्रप्रभजी ८ वें तीर्थङ्कर | ,, |

# श्रीमन्नन्दीसूत्रका शब्दकोश

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| सभूय | सम्भूत नामक स्थविर | २६ |
| सज्झायमणतधरे | अपरिमित स्वाध्यायोंको धरनेवाले | ३८ |
| समुप्पज्जइ | उत्पन्न होता है | ८ |
| समुव्वहमाणे | अच्छीतरह वहन करता हुआ | १० |
| सव्वओ समंता | चारों तरफसे | १३ |
| समासओ | संक्षेपसे | १६ |
| सव्वओ | सब ओरसे | १२ |
| सव्वदरिसीहिं | सर्वदर्शीओंने | ४१ |
| सव्वदिसाग | सर्वदिशा सम्बन्धी | ५६ |
| सव्वपहु | सबसे अधिक | १३ |
| सव्वभावाण | सब भावोंके | १८ |
| सव्वदव्वाइं | सब द्रव्योंको | २२ |
| सव्वजीवाणं पि | सभी जीवोंका | ४३ |
| सव्वदव्व परिणाम | सब द्रव्योंके परिणामको | २२ |
| समएहिं | सिद्धान्तोंसे | ४२ |
| समाणा | होते हुए | ,, |
| सम्मत्त परिग्गहियाइं | सम्यक् रूपसे ग्रहण किये गए | ,, |
| सम्मत्तहेउत्तणओ | सम्यक्त्वके हेतु होनेसे | ,, |
| सपक्ख दिट्ठिओ | अपने पक्षकी दृष्टिओंको | ,, |
| सपज्जवसिय | अन्तवाला या श्रुतका एकभेद | ४३ |
| सव्वागासपएसग्ग | सर्व आकाशके प्रदेशाग्रको | ४३ |
| सव्वागासपएसेहिं | सर्वाकाश-प्रदेशोंसे | ,, |
| समवाओ | समवायाङ्गसूत्र | ४१ |
| ससमए | स्वसिद्धान्त | ४७ |
| ससमयपरसमए | स्वपर दोनों सिद्धान्त | ,, |
| सत्तट्ठीए | सडसठ | ,, |
| सब्भावुब्भावणया | सद्भावोंका विस्तार करना | ४६ |
| समुद्देसणकाला | समुद्देशनकाल | ० |
| सव्वभावदेसणम | सर्व भावोंका उपदेशक | २४ |
| सयय | सदा | ११ |
| सरिव्वय | समान वयवाले | २७ |
| समणाण | साधुओंका | ४४ |
| समुट्ठाणसुए | समुत्थान श्रुत | ,, |
| सजोगिभवत्थ० | सयोगिभवस्थ० | १९ |
| सयबुद्धसिद्ध | स्वयम्बुद्धसिद्ध-सिद्धोंका भेद | ३१ |

| शब्द | अर्थ | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|
| सलिंगसिद्ध | स्वलिङ्गसिद्ध-सिद्धोंका भेद | २१ |
| समुद्द | समुद्र | १६ |
| सन्निपंचिंदियाणं | समनस्क पञ्चेन्द्रिय जीव | १७ |
| सरड | औत्पत्तिकी बुद्धिका ६ ठा उदाहरण | ७० |
| सयसहस्स | औत्पत्तिकी बुद्धिका २६ वाँ उदाहरण | ७२ |
| सा | वह | ० |
| सासय | शाश्वत | ० |
| साइरेग | साधिक | ५१ |
| सामज्ज | श्यामार्य नामक स्थविर | २८ |
| साइ | स्वाति आचार्य | २८ |
| साइयं | सादिक श्रुतका १ भेद | ४३ |
| सीया साडी | ठंडी साडी—वैनयिकी बुद्धिका १३ वाँ उदाहरण | ७५ |
| साहुकार | साधुकार—नागरिक | ७६ |
| साहू | साधु—पारिणामिकी बुद्धिका ७ वाँ उदा० | ७९ |
| सावग | श्रावक—पारिणामिकी बुद्धिका ८ वाँ उदा० | ८१ |
| सवणया | श्रवणता—अवग्रहका नाम | ११ |
| सद्दाइ | शब्द आदि | ३६ |
| सद्दे | शब्दको | ,, |
| सण्णा | संज्ञा—मतिज्ञानका नाम | ६७ |
| सई | स्मृति | ,, |
| सम्मसुयं | सम्यक् श्रुत—श्रुतज्ञानका १ भेद | ३८ |
| [illegible] | [illegible] | ३९ |
| संठाणाणि | आकारके अवयवोंकी आकृति | ,, |
| [illegible] | सर्वतोने | ४१ |
| समत्थ | समर्थको | ८ |
| सत्ते | पारिणामिकी बुद्धिका ११ वाँ उदाहरण | ८१ |
| [illegible] | [illegible] | ५ |
| [illegible] | [illegible] | ,, |
| [illegible] | सर्वजगत्को प्रकाशित करनेवाले | ३ |
| [illegible] | [illegible] | ० |
| संघरह | [illegible] | ६ |
| संघपउम | संघरूप पद्म | ८ |
| संघ | संघ | ५ |
| [illegible] | [illegible] | १५ |
| संघचंद | संघरूप चन्द्र | ६ |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| समणगणसहस्सपत्त ... ... | साधुसमूहरूप विशाल कमल ... | ८ |
| संघचक्क ... ... | संघरूपचक्र .. ... | ५ |
| संघसमुद्द ... ... | संघरूप समुद्र ... ... | ११ |
| संघमहामंदर ... ... | संघरूप मन्दराचल ... ... | १७ |
| सावगजणमहुअरि ... ... | श्रावकरूप भ्रमर ... ... | ८ |
| संघनगर ... ... | संघरूप नगर ... ... | ४ |
| सिद्धि ... ... | पारिणामिकी बुद्धिका २१ उदाहरण... | ७९ |
| सिल ... ... | औत्पत्तिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण... | ० |
| सिक्खा ... ... | ,, ,, २३ वाँ उदाहरण... | ■ |
| सिज्जंस ... ... | श्रेयांसनाथजी, ११ वें तीर्थङ्कर ... | १९ |
| सिज्जंभव ... ... | शय्यम्भवस्थविर ... ... | २५ |
| सीयल ... ... | शीतलनाथजी, १० वें तीर्थङ्कर ... | २० |
| सिलायलुज्जल ... ... | शिलातल उज्ज्वल ... ... | १३ |
| सीलपडागूसिय ... ... | शीलरूप पताकासे उच्च ... | ६ |
| सिलोगा ... ... | श्लोक ... ... ... | ० |
| सीसा ... ... | शिष्य ... ... ... | ० |
| सुयरयण ... ... | श्रुतरूप रत्न ... ... | ७ |
| सुय ... ... | श्रुत ... ... ... | २ |
| सुंदर कंदर ... ... | सुन्दर कन्दरा ... ... | १४ |
| सुरासुरनमंसिय ... ... | देवदानवोंसे वन्दित ... | ३ |
| सुरभिसील ... ... | शीलरूप सुगन्धियुक्त ... | १३ |
| सुयनाणपरोक्खं ... ... | श्रुतज्ञानपरोक्ष ... ... | ३८ |
| सुणेइ ... ... | सुनता है ... ... | ८५ |
| सुमिणे ... ... | स्वप्न ... ... | ३६ |
| सुमिणोत्ति ... ... | स्वप्न है ... ... | " |
| सुणिज्जा ... ... | सुने ... ... ... | " |
| सुत्तं ... ... | सूत्र ... ... | " |
| सुयनिस्सियं ... ... | श्रुतनिश्रित मतिज्ञानका भेद ... | ८१ |
| सुत्तत्थ ... ... | सूत्रार्थ ... ... | ७३ |
| सुयअन्नाणं ... ... | श्रुत अज्ञान ... ... | २५ |
| सुयनाणं ... ... | श्रुतज्ञान ... ... | " |
| सुहुमयर ... ... | अधिक सूक्ष्म ... ... | ६२ |
| सुहुमो ... ... | सूक्ष्म ... ... | ६३ |
| सूइज्जइ ... ... | सूचित किए जाते हैं ... | ४७ |
| सूयगडे ... ... | सूत्रकृताङ्ग ... .. ... | " |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| सुयक्खंधा | श्रुतस्कन्ध | ४४ |
| सुविणभावणं | स्वप्नभावन नामक ग्रन्थविशेष | ,, |
| सूरपन्नत्ती | सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र | ,, |
| सुट्ठु | अच्छीतरह भी | ४३ |
| [illegible] | सोरेम | १८ |
| [illegible] | द्वादशाङ्ग श्रुतरूप शिखरवाला | ,, |
| सूर | सूर्य | १६ |
| सुमइ | सुमतिनाथजी, ५ वें तीर्थङ्कर | २० |
| सुप्पभ | सुप्रभनाथजी, ६ वें तीर्थङ्कर | ,, |
| सुपास | सुपार्श्वनाथजी, ७ वें तीर्थङ्कर | ,, |
| सुहम्म | सुधर्मास्वामी, ५ वें गणधर | २५ |
| [illegible] | सुहस्ति स्थविर | २७ |
| [illegible] | नित्य अनित्यके ज्ञाता... | ४६ |
| [illegible] | अच्छे साधु | ४७ |
| [illegible] | श्रुतसागरके पारगामी ... | ३० |
| [illegible] | अतिशय मृदु | ४९ |
| [illegible] | सुज्ञात सूत्रार्थके धारक | ४६ |
| से | श्रोताका प्रथम उदाहरण | ५१ |
| सेसा | वह | ३ |
| सोइंदिय | बाकी बचे | ० |
| | श्रोत्रेन्द्रिय | ३० |

ह

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| हंदि | | |
| हत्थमि | औत्पत्तिकी बुद्धिका ६ ठा उदाहरण ... | ५१ |
| हरिवंसगंडियाओ | इसमें ... | ५८ |
| हवइ | हरिवंशगण्डिका | ५७ |
| हंस | होता है | |
| हारिय | पक्षीविशेष | |
| हारियगुत्त | हारित गोत्र | |
| हिमवंत खमासमणे... | हारितगोत्र | |
| हिमवंतमहंतविक्कमे | हिमवन्तनामक क्षमाश्रमण | |
| हियनिस्सेयसकरत्थं | हिमाचलके तुल्य महापराक्रमी | |
| हीयमाण | हित व निर्वाणफलको देनेवाला | |
| हीयमाणय | घटता हुआ | |
| | हीयमानक–अवधिज्ञान | |

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| हुंति ... ... | होते हैं ... ... | ३६ |
| हुंकार ... ... | स्वीकारसूचक ध्वनि ... ... | १६ |
| हेउ ... ... | हेतु ... ... ... | ३८ |
| हेतुसत ... ... | सैकड़ों हेतु ... ... | १४ |
| हेऊ ... ... | हेतु ... ... ... | ५७ |
| हेऊवएसेण ... ... | हेतूपदेशसे ... ... | ४० |
| हेरण्णिए ... | कर्मजा बुद्धिका प्रथम उदाहरण ... | ७७ |
| होइ .. .. | होता है... ... . | ५१ |



| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| सुयक्खंधा ... ... | श्रुतस्कन्ध ... ... | ४४ |
| सुमिणभावणाणं .. ... | स्वप्नभावन नामक ग्रन्थविशेष ... | ,, |
| सूरपण्णत्ती ... ... | सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र ... ... | ,, |
| सुट्ठुवि ... ... | अच्छीतरह भी ... ... | ४३ |
| सुगंधि ... ... | सौरभ ... ... | १८ |
| सुयधारसंगसिहर ... ... | द्वादशाङ्ग श्रुतरूप शिखरवाला ... | ,, |
| सूर ... ... | सूर्य ... ... | १९ |
| सुमइ ... ... | सुमतिनाथजी, ५ वें तीर्थङ्कर ... | २० |
| सुप्पभ ... ... | सुप्रभनाथजी, ६ वें तीर्थङ्कर ... | ,, |
| सुपास ... .. | सुपार्श्वनाथजी, ७ वें तीर्थङ्कर .. | ,, |
| सुहम्म ... ... | सुधर्मास्वामी, ५ वें गणधर ... | २५ |
| सुहत्थि ... ... | सुहस्ति स्थविर ... ... | २७ |
| सुमुणियनिच्चानिच्चं ... | नित्य अनित्यके ज्ञाता... ... | ४६ |
| सुसमण ... ... | अच्छे साधु ... ... | ४७ |
| सुयसागरपारग ... .. | श्रुतसागरके पारगामी ... ... | ३० |
| सुकुमाल ... .. | अतिशय मृदु ... ... | ४९ |
| सुमुणिय सुत्तत्थ धारयं ... | सुज्ञात सूत्रार्थके धारक ... | ४६ |
| सेलघण .. . | श्रोताका प्रथम उदाहरण ... | ५१ |
| से .. ... | वह ... ... | ३ |
| सेसा ... ... | बाकी बचे ... ... | ० |
| सोइंदिय ... ... | श्रोत्रेन्द्रिय ... ... | ३० |

ह

| शब्द | अर्थ | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| हत्थि ... ... | औत्पत्तिकी बुद्धिका ६ ट्ठा उदाहरण ... | ७१ |
| हत्थम्मि ... ... | हस्तमें ... ... ... | ५८ |
| हरिवसगंडियाओ ... ... | हरिवंशगण्डिका ... ... | ५७ |
| हवइ ... ... | होता है ... ... | ६२ |
| हंस ... ... | पक्षीविशेष ... ... | ५१ |
| हारिय ... .. | हारित गोत्र ... ... | २८ |
| हारियगुत्त ... ... | हारितगोत्र ... | ,, |
| हिमवंत खमासमणे... ... | हिमवन्तनामक क्षमाश्रमण | ३१ |
| हिमवंतमहंतविक्कमे .. | हिमाचलके तुल्य महापराक्रमी | ३८ |
| हियनिस्सेयसफलयई ... | हित व निर्वाणफलको देनेवा | १८ |
| हीयमाण ... ... | घटता हुआ ... | ११ |
| हीयमाणक ... ... | हीयमानक–अवधिज्ञान | ९ |

**सूचना**—विहारमें होनेसे शब्दकोष पूज्यश्रीजीके दृष्टिगोचर नहीं कराया गया, अतः उसमें कुछ अशुद्धियाँ रहगई हैं। शीघ्रताके कारण विशेषनाम व पारिभाषिक शब्दोंका पृथक्करण भी उसमें नहीं किया गया। सुज्ञ पाठक उनको सुधारके पढ़ें। विशेषः—

| पृष्ठ | पङ्क्ति | शुद्धपाठ |
|---|---|---|
| ३ | १२ | योग्य शिष्योंको अनुयोगमें लगानेवाले |
| ४ | १० | अनन्त समयके |
| ,, | १४ | अनिर्विण्णं......उद्वेगरहित |
| ६ | ७ | असंख्यात समयके |
| ,, | २४ | आवलिकारूप काल |
| ,, | १२ | सामान्यरूपसे |
| ७ | २४ | एक समयकी स्थितिवाले |
| ८ | १८ | ऊपरके नीचेका भाग |
| ९ | २६ | एक २ से बढनेवालीसे |
| ,, | ३५ | कल्पवृक्षण |
| ११ | १० | कुडग–घडा |
| ,, | ३५ | केवलज्ञानका उत्पाद |
| १२ | २३ | सोडगुह–सोल्कगुप्त नामक ग्रन्थ |
| ,, | ३५ | गुणमय परागसे पूर्ण |
| १३ | ५ | गुणप्रत्ययिक अवधिज्ञान |
| १४ | १५ | चौथे समयमें सिद्ध होनेवाले |
| ,, | १६ के बाद | चउक्कनइयाणि......चार नयवाले–स्वसमयसे |
| १५ | २५ | सेण्टितादिक अनक्षरश्रुतका भेद |
| १६ | ५ | यथानामक |
| ,, | ६ | जिसके |
| ,, | १४ | जैसे |
| ,, | १७ | छोटा या कमसे कम |
| ,, | २३ | जलौका |
| १७ | ३२ | ठहरेगा |
| १९ | ६ | तीसरे समयमें सिद्ध होनेवाले |
| ,, | ११ | धर्म, अर्थ, कामरूप–त्रिवर्ग |
| ,, | ३१ | तेवीस |
| २० | २० | दशवें समयके सिद्ध |
| २२ | १५ | नानात्व |

शब्दकोषमें केवल सूत्राङ्कही दिया गया है, वहां पाठक गाथा या सूत्रके अङ्कको ध्यानसे समझलें। सुज्ञेषु किं बहुना।

---